मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य

विभिन्न आयामों से शोध, ज्ञान एवं अनुभव का अद्वितीय समन्वय

कार्बनिक आहार : वैज्ञानिक प्रयोग

तीस हजार से भी अधिक रोगियों पर शोधात्मक चिकित्सा के पश्चात
लिखी गई लेखक की दोनों पुस्तकों की शृंखला में यह
क्रान्तिकारी कृति : एक आन्दोलन है..... आपके आहार
सम्बन्धी मान्यताओं व भ्रान्तियों को झकझोरती सहजता
से जीवनदायी तत्व तथा स्वास्थ्य सौंपती

तीनसौ से अधिक स्वाद्य वनस्पतियों की आयुर्वैज्ञानिक उपयोगिता

डॉ. नागेन्द्र कुमार "नीरज"

भाग-1

मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य

(कार्बनिक आहार : वैज्ञानिक प्रयोग)

भाग 1

लेखक :

डॉ. नागेन्द्र कुमार 'नीरज'

पू. मंत्री अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद, दिल्ली

संचालक व चिकित्सा प्रभारी

एस. एम. लोढ़ा नेचुरोपैथी रिसर्च इन्स्टीट्यूट

पृथ्वीराज मार्ग, अजमेर. (राज.) फोन नं 24906

प्रथम संस्करण : मई, 1988

2,000 प्रतियाँ

मूल्य : 15-00

कहाँ तुझे ढूढूँ रे.........मैं हूँ आपके हाथ में (अनुक्रमणिका)

मुद्रक : राजकमल प्रेस, अजन्ता सिनेमा के पास, अजमेर—305 001

सुप्रसिद्ध व्यवसायी, समाज सेवी, युवा उमंग व उत्साह एवं आत्म विश्वास से परिपूर्ण, कर्मठ, सृजक कल्पनाशील अनेक संस्थाओं तथा इस संस्थान के अध्यक्ष सेठ श्री सम्पत मल लोढ़ा के वक्तव्य

सेठ श्री सम्पतमल लोढ़ा

मनुष्य सृष्टि का एक अद्वितीय सृजन है। वह अपने विवेक एवं ज्ञान से नित्य नूतन रहस्यों को उद्घाटित कर रहा है। प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का पता लगा कर मानव अपने जीवन को समृद्ध करने में लगा है। जीवन की श्रेष्ठ-तम सम्पदा है स्वास्थ्य। स्वास्थ्य को समुन्नत एवं समृद्ध बनाने के लिए सारे विश्व में नित्य नई-नई खोजें हो रही हैं। उन खोजों से यह ज्ञात हो चुका है कि स्वास्थ्य का सीधा सम्बन्ध आहार से है। अर्थात् आहार और स्वास्थ्य का सम्बन्ध शाश्वत एवं सनातन है। समस्त प्राणियों का केन्द्रबिन्दु "आहार" ही है, क्योंकि आहार से ही प्राणियों को जीवन मिलता है। स्वास्थ्य, सौन्दर्य, जीवन, प्रतिभा, सुख, बल, बुद्धि इन प्रत्येक दृष्टि से प्राणी आहार पर ही अवलम्बित है। शरीर, मन एवं इन्द्रियों के सम्यक् विकास एवं स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेद में आहार, निद्रा तथा ब्रह्मचर्य को मौलिक आधार माना गया गया है। यह मनुष्य की आदिम नैसर्गिक माँग हैं। इसमें भी आहार का स्थान प्रथम है। आहार के सम्बन्ध में आयुर्वेद, गीता आदि प्राचीन ग्रन्थों में सविस्तार चर्चा की गई है। आज के आधुनिक अनुसंधानों के आधार पर आहारशास्त्र की नई व्याख्या की आवश्यकता है। आहारशास्त्र पर विदेशी भाषाओं में अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं, परन्तु हिन्दी में प्रामाणिक पुस्तकों

का सर्वथा अभाव रहा है। विगत 5-6 दशाब्दियों में आहार के क्षेत्र में इतने चमत्कारी शोध-कार्य हुए हैं तथा इतनी आरोग्यकारी बातों का पता चला है कि उनका जनसामान्य तक पहुँचना अति आवश्यक है।

प्रत्येक प्राणी का आहार देश, जाति, वातावरण, अवस्था एवं प्रकृति के अनुरूप निर्धारित होते हैं। इसमें किसी प्रकार की अव्यवस्था आने पर प्राणी बीमार हो जाता है। इसीलिए कहा गया है कि सम्यक् आहार (पथ्य) ही जीवन है तथा गलत आहार (कुपथ्य) मृत्यु है। औषधि जगत के पितामह हिप्पोक्रेट्स ने भी कहा है "Let the food be thy Medicine and let thy Medicine be thy food." आदिकालीन मानव, प्रकृति के ज्यादा समीप था। उसका आहार नैसर्गिक था इसलिए वह स्वास्थ्य, सुख एवं शान्ति का स्वामी था, जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ, मनुष्य प्रकृति से दूर होता गया। कृत्रिम एवं आडम्बरपूर्ण जीवन के कारण वह अपने स्वाभाविक आहारविहार एवं चिन्तन से च्युत हो गया है, फलतः वह अशान्त एवं रोगी है। कुछ विकसित देशों में "पुनः प्रकृति की ओर लौटने" के जन, आन्दोलन चलाये जा रहे हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार आहार को नैसर्गिक ढंग से उपजाने पर ही आहार की औषधि एवं पोषण क्षमता निर्भर रहती है। प्रस्तुत पुस्तक में इन सभी तथ्यों पर वैज्ञानिक जानकारी दी गई है। करीब तीन सौ से अधिक आहार वनस्पतियों का इतिहास, वैज्ञानिक शोध, उपचारात्मक उपयोग प्रस्तुत पुस्तक में दिया है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक विगत पन्द्रह साल से आहार के क्षेत्र में अनुसंधानरत हैं। उन्होंने अनेक रोगों पर आहार के व्यापक प्रयोग किये हैं उन सभी अनुभवों का सारांश प्रस्तुत पुस्तक में देने का प्रयास किया गया है।

स्वास्थ्य-संरक्षण एवं लोक-शिक्षण की दृष्टि से विगत आठ वर्ष में हमने इस संस्थान द्वारा आठ पुस्तकों का प्रकाशन किया है। पाठकों एवं विभिन्न संस्थानों द्वारा इन प्रकाशनों का उत्साहवर्द्धक स्वागत किया गया, उसी से उत्साहित होकर आहारविज्ञान पर "मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य" शृंखला में तीन पुस्तकों का सैट जन-स्वास्थ्य-चेतना हेतु समर्पित है। आशा है कि इस प्रकाशन का भी मुक्त हृदय से स्वागत होगा। सबका मंगल हो।

आमुख

श्री सुन्दरलाल बहुगुना

अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त चिपको आन्दोलन के प्रणेता तथा विश्व विख्यात पर्यावरण विद्

कहावत है कि "जैसा अन्न, वैसा मन"। लेकिन यह अधूरी बात है। वास्तव में तो जैसा अन्न, वैसा मन और तन। आज जिस दुनिया में हम रहते हैं, उसमें तो हमारे शरीर में विषाक्त अन्न ही नहीं, रासायनिक खाद व कीटनाशक दवाओं से युक्त अन्न ही विष नहीं बन गया है बल्कि पानी और प्राणवायु भी विषाक्त हो गये हैं।

भोगवादी सभ्यता ने मनुष्य को भोग की अधिक से अधिक वस्तु प्राप्त करने के लिए प्रकृति का कसाई बना दिया है। केवल इतना ही नहीं, वह इन वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रिया में वायुमण्डल में विषाक्त गैसें फैला रहा है और नदियों में विषाक्त पानी के नाले बहा रहा है। कहा तो यह जाता है कि वायु-प्रदूषण एवं जल-प्रदूषण की रोकथाम के तकनीकी तरीके निकल गये हैं। लेकिन औद्योगिक रूप से विकसित देशों में केवल मनुष्यों पर ही नहीं पेड़ पौधों पर भी वायु-प्रदूषण का कुप्रभाव पड़ा है। यूरोप के जंगल अम्लीय वर्षा के कारण मर रहे हैं। इनको बचाने का कोई उपाय नहीं हैं। वहाँ के वन-वैज्ञानिक, निराश होकर कहने लगे हैं कि हमारा भविष्य अंधकारमय है क्योंकि जब वन ही न रहेगें तो पहले से ही वायुमण्डल में बढ़ने वाला कार्बन डाइ-ऑक्साइड और बढ़ जायेगा, तापमान ऊँचा हो जायेगा और मौसम बदल जायेंगे।

भोगवादी सभ्यता ने हमें प्रकृति से दूर हटा कर हमारा सारा जीवन कृत्रिम बना दिया है। अब तो घर में पकीपकाई ताजी रोटी के बजाए बेकरी की डबल रोटी और डिब्बाबन्द खाने का रिवाज चल पड़ा है। जो खाना घर में बनता भी है उसे तल कर और तेज मसाले डाल कर उसको सत्वहीन बनाया जाता है। यह खाना तामसिक हो जाता है। हमारी अधिकांश बीमारियाँ तो रसोईघर से पनपती हैं।

पाश्चात्य जगत में विकसित हुए ऐलोपेथिक चिकित्सा विज्ञान ने बीमारियों को दबाने के लिए औषधियों के व्यापार और बाजार को ही बढ़ावा दिया है। उपभोगतावादी सभ्यता का यह एक मुख्य लक्षण है। दिन पर दिन नई दवाइयों के अविष्कार हो रहे हैं लेकिन उसके साथ-साथ नई बीमारियाँ भी उत्पन्न हो रही है। यदि यह कहा जाए कि आज अधिकांश बीमारियों का जन्म दवाइयों तथा गलत खान पान से होरहा है तो अतिशयोक्ति न होगी।

इस सारी परिस्थिति ने दवाई के द्वारा आरोग्य-लाभ करने की प्रचलित पद्धति पर एक प्रश्नचिन्ह लगा दिया है इससे मुक्ति का मार्ग ढूँढने के लिए आज मानव जीवन छटपटा रहा है। भोगवादी सभ्यता का पोषक विज्ञान इसमें असफल हो गया है, अतः आज आवश्यकता है ऐसे मानवतावादी वैज्ञानिकों की, जो अपने प्रयोगों द्वारा एक नई राह बता सके। एक नई दिशा दे सकें। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक डा. नागेन्द्र नीरज इसी प्रकार के एक प्रयोगधर्मी मानवतावादी वैज्ञानिक हैं और उन्होंने "मेरा आहार, मेरा स्वास्थय" पुस्तक लिख कर चिकित्सा के क्षेत्र में एक नई क्रांति की है।

जहाँ तक प्राणी मात्र के जिन्दा और स्वस्थ रहने का सवाल है, आवश्यक यह है कि हर एक प्राणी को अपने आसपास के क्षेत्र से शुद्ध प्राणवायु स्वच्छ और जिन्दा पानी तथा पौष्टिक आहार मिल सके। यह वृक्षखेती के द्वारा संभव है। वृक्षों से हमें प्राणवायु तो मिलती है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन 16 किलो आक्सीजन की जरूरत पड़ती है। इस प्रकार हमें कुओं, चश्मों और नदियों से जीवन्त और स्वच्छ ताजा जल प्राप्त हो सकता है। आँवला, नीम और ओक (बाँझ) आदि कई ऐसी वृक्ष प्रजातियाँ हैं जो पानी की गुणवत्ता को बढ़ाते हैं। सबसे बड़ा सवाल तो मिट्टी के जीवन्त स्वरूप व उपजाऊपन को बढ़ाने का है।

अन्न की खेती के अपेक्षित बार बार जुताई और रासायनिक खादों से मिट्टी का प्राणतत्त्व नष्ट हो रहा है। भूक्षरण बढ़ रहा है। धरती माता घायल है और भारत से 600 करोड टन उपजाऊ मिट्टी के रूप में धरती माँ का लहू माँस बह रहा है। भूक्षरण को रोकने और धरती के घावों को भरने का एकमात्र उपाय ऐसे वृक्षों की खेती प्रारम्भ करना है जो औषधि एवं खाद्य दे सकें। वैज्ञानिक शोध का यह एक नया क्षेत्र है जिसमें खाद्य बीज, काष्ठफल, मेवे, तैलीय बीज, शहद और मौसमी फल देने वाले वृक्ष हों। इससे एक और शुद्ध सात्विक और बेल आँवला जैसे औषधिक गुणों वाले वृक्षों का भोजन मिलेगा और दूसरी ओर एक ऐसे वायुमण्डल का निर्माण होगा जिसमें लोग सुख और शांति का अनुभव करेगें। मैं समझता हूँ कि प्राकृतिक चिकित्सा की नई दिशा यही होनी चाहिए कि आहार के द्वारा किस प्रकार लोगों और धरती माता को स्वस्थ रख सकें।

प्रस्तुत पुस्तक में आहार के सम्बन्ध में कुछ भ्रांतियों का लेखक ने तथ्यपूर्ण निराकरण किया है। प्रत्येक आहार अपने आप में विशिष्ठ एवं अद्वितीय है इस सत्य की ओर लेखक ने अपने शोधपूर्ण अनुभवों को देकर बड़े वैज्ञानिक ढंग से लोगों को आकृष्ट किया है। आयुर्वेज्ञानिक आदर्श निघण्टु के रूप में यह पुस्तक त्रस्त एवं रोगग्रस्त मानवता के लिए अनुपम उपहार है। इस क्रान्तिकारी पुस्तक से जनताजनार्दन नवीन ज्ञान प्राप्त कर तथा निर्देशित

प्रयोगों को अपने जीवन में उतार कर रोगमुक्ति तथा प्रतिषेध में सफल स्वस्थ एवं दीर्घायु बन सकेगी, ऐसी आशा है। इस पुस्तक का व्यापक स्तर पर प्रचार प्रसार होना ही चाहिए ताकि राष्ट्रीय स्वास्थ्य समुन्नत हो सके। लेखक का यह निःस्पृह अथक प्रयास सराहनीय है, इसके लिए वह धन्यवाद का पात्र है।

—सुन्दर लाल बहुगुना

डॉ. नीरज के प्रकाशनों की एक झांकी जिसकी समीक्षा अनेक साप्ताहिक, दैनिक व मासिक पत्र-पत्रिकाओं ने की है। स्वास्थ्य के लिए अवश्य पढ़ें :—

(1) जल चिकित्सा पृष्ठ संख्या 155 अकर्षक लेमिनेटेड तिरंगा कवर मूल्य 10.00 रु० (2) स्वास्थ्य प्रभा पृष्ठ संख्या 212 सादा आकर्षक तिरंगा कवर मूल्य 12.00 रु० (3) अनमोल मिट्टी के बोल संलग्न (4) अप्पदीपोभव पृष्ठ संख्या 285 आकर्षक चौरंगा प्लास्टिक कवर मूल्य 20.00 रु० (5) प्रकृतिक चिकित्सा एवं योग संलग्न (6) महान चिकित्सक आपका शरीर आकर्षक लेमिनेटेड तिरंगा कवर पृष्ठ संख्या 365 मूल्य 22 00 रु० (7) असाध्य रोगों की सफल चिकित्सा संलग्न (8) स्वास्थ्य सौरभ पृष्ठ संख्या 182 आकर्षक लेमिनेटेड तिरंगा कवर मूल्य 12 रु.। मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य सिरिज (9) कार्बनिक आहार वैज्ञानिक प्रयोग 10) आहार का चमत्कार (11) आहार द्वारा रोगोपचार (12) रसाहार द्वारा रोगोपचार (13) भोजनालय में चिकित्सालय (14) रोगोपचार में आहार प्रत्येक आकर्षक लेमिनेटेड तिरंगा कवर में, प्रत्येक का मूल्य 15.00 रु० ।

भावी प्रकाशन :—(1) असाध्य रोगों की सफल चिकित्सा भाग 2 से 5 तक (2) स्वास्थ्य दीप (3) स्वास्थ्य सूर्य (3) सेक्स शिक्षण और स्वास्थ्य (4) ध्यान एक महाविज्ञान (5) धर्म : शाश्वत जीवन की तकनीक (6) प्रकृति से विकृति की ओर (7) सम्प्रदाय व धर्म के सृजक प्रयोग (8) सम्प्रदाय व धर्म : विकृति से विध्वंस की ओर (9) अनन्त सुख (10) योग रोग एवं आरोग्य (11) पत्रों में प्रा. चि. (12) प्रा. चि. विश्व कोष (13) प्रेम, स्वास्थ्य एवं स्वतन्त्रता।

मैं कहता हूँ आँखन की देखी

6 वर्ष पूर्व जे. एल. एन. मेडिकल कॉलेज में बारह-दिवसीय जीवन-विज्ञान प्रदर्शनी लगी हुई थी। मैं भी आमंत्रित था। हमारे संस्थान द्वारा आहार, प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग पर पृथक-पृथक प्रदर्शनी लगाई गयी थी। इस प्रदर्शनी को करीब 4-5 लाख लोगों ने देखा। ज्ञानविज्ञान एवं अनुभव के आदानप्रदान हेतु यदा-कदा प्रदर्शनी के विभिन्न कक्षों में मैं चला जाता था। इसी क्रम में एक दिन मैं जैवरसायन विभाग में चला गया। वहाँ यह देख कर चकित रह गया कि उच्च रक्तचाप के रोगियों को चीनी तथा मधुमेही को आहार चार्ट में बिस्कुट, ब्रेड इत्यादि परिशोधित आहार बताये गये हैं। एक महिला चिकित्सक आम लोगों को तत्संबधित जानकारी भी दे रही थी। उनसे मैंने निवेदन किया कि इस प्रकार का आहार उच्च रक्तचाप एवं मधुमेही रोगियो को देकर क्या आप उनके साथ न्याय कर रही हैं ? मेरी बात पर वे चौंक उठीं, झल्ला कर पूछा ऐसा क्यों ? मैंने कहा ये परिशोधित कार्बोज हैं, इनके प्रयोग से रक्त में बीटा लाइपोप्रोटीन, कॉलेस्टरौल तथा शर्करा का स्तर तेजी से बढ़ता है जो कि ऐसे रोगियों के लिए घातक है। सामान्य आदमी भी यह आहार ले तो वह उक्त रोग का रोगी हो सकता है, फिर रोगियों के लिए तो यह जहर सदृश है। फिर वे पूछ बैठीं-ऊर्जा के लिए ऐसे रोगियों को क्या बताया जाय ? मैंने कहा यह उर्जा कितनी बड़ी कीमत चुकाने पर मिलेगी ? "शक्ति के लिए फल, अंकुरित अनाज, कन्द आदि अनेक स्रोत हैं उनका उपयोग होना चाहिए जो कि आहार के साथ साथ औषधि भी हैं। उसी समय पूर्व परिचित उस विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक भी आ गये। बातों बातों में वे कहने लगे "प्राकृतिक चिकित्सा में कुछ आहारों को निषेध किया जाता है परन्तु हम उसका उपयोग करते हैं।" मैंने उनसे निवेदन किया "अभी प्राकृतिक चिकित्सा को मारें गोली, हम जैवरसायन विभाग में बैठे हैं। उसकी बात करें। विज्ञान एवं प्रकृति का सिद्धान्त सार्वभौम होता है। चीनी, चाय, कॉफी बिस्कुट, शराब, सिगरेट आदि कन्फेक्शनरी, संश्लिष्ट अखाद्य या खाद्य आहार मनुष्य की तरह भाई भतीजावाद नहीं करता है। वह सभी पर अपने गुणधर्म के अनुसार एक जैसा ही प्रभाव डालता है। चाहे उसकी कोई तारीफ करे या बुराई।

ऐसी ही एक घटना उसी प्रदर्शनी की है। एक दिन मैं रेडियोलॉजी विभाग में चला गया। वहाँ अनेक चिकित्सक विभिन्न एक्सरे प्लेट लोगों को दिखा कर समझा रहे थे—"सिगरेट एवं शराब स्वास्थ्य के लिए कितने घातक हैं।" उन्हीं में से एक चिकित्सक महोदय सिगरेट का कश भी ले रहे थे। भीड़ जब कम हुई तो मैंने उन चिकित्सक महोदय से निवेदन

किया कि "क्या सचमुच में सिगरेट इतनी हानिकारक होती है।" "जी हाँ।" सिगरेट का कश लेते हुए उन्होंने जवाब दिया। मैंने कहा "आप कह क्या रहे हैं।" वे नाराज हो गये। बोले "मंद बुद्धि के हो क्या ? समझ नहीं रहे हो। सिगरेट में सैंकड़ों जहर होते हैं जो कैंसर, टी. बी., एम्फिसिमा आदि मारक रोग पैदा करते हैं।" फिर आप कर क्या रहे हैं ? मैंने प्रश्न दागा। उन्हें होश जागा। सम्भले, झल्लाये, नाराज होकर बोले "मैं क्यों पीता हूँ, इस बात को तथ्य को कंवींस करुंगा। मैंने निवेदन किया कि "आप बता रहे हैं कि सिगरेट स्वास्थ्य-घातक है। यह तथ्य तो मान रहे हैं कि गलत है।" उन्होंने कहा "बिल्कुल ठीक" फिर मैंने पूछा कि आप गलत को कैसे सही कन्वींस कीजिएगा।" फिर बताने लगे "हम भी आदमी हैं, दिनभर की आपा धापी से तनाव-दबाव आते ही रहते हैं, उनसे मुक्ति का यही तो सहारा है। हमारी भी कमजोरियाँ हैं। मैंने उनसे कहा कि 'आपने आम आदमी की कमजोरियों से मुक्ति दिलाने के लिए ही तो यह प्रदर्शनी लगा रखी है। आप प्रबुद्ध हैं जब आप अपनी कमजोरियों के प्रति नहीं जाग सकते तो फिर जनसाधारण से कैसे आशा रख सकते है ? फिर यह प्रदर्शनी जानवरों के लिए तो तो लगी नहीं है।" इस चोट से वे तिलमिलायें, झल्लाये। मैं बाहर आ गया।

एक अन्य घटना– मैं गृह विज्ञान की उच्च कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली एक पुस्तक "पोषण एवं आहार विज्ञान" को देख रहा था। इस पुस्तक की लेखिका की अन्य पुस्तकें भी निम्न कक्षा से लेकर उच्चतर कक्षाओं तक में पढ़ायी जाती हैं। पुस्तक क्या है ? अनुभवहीन कोरी बकवास मात्र। जानकारियों का कचरा जिससे विद्यार्थियों का कोई भला होने वाला नही है। पुस्तक में निर्देशित कार्यक्रमों के अनुसार चला जाय तो परेशानियों और पेचीदेगियों के सिवा कुछ हाथ आने वाला नहीं है। एक उदाहरण ही काफी है। उक्त पुस्तक में ज्वर के रोगी को दैनिक आहार में 3 प्याला दूध, 3 प्याला उच्च प्रोटीन या अण्डायुक्त दूध, 2 अण्डे, 25 से 50 ग्राम स्ट्रेण्ड गोश्त, ½ कप खाद्यान्न का तरल पदार्थ, 1 प्याला फल का रस, ½ प्याला सूप या सब्जी का रस, 2 या अधिक बार जेलेटिन, आइसक्रीम, कस्टर्ड, 3 बड़ा चम्मच शर्करा, 1 बड़ा चम्मच कोको बताया गया है। ध्यान रखें बुखार में चयापचय की गति बढ़ने से ग्लाइकोजन, प्रोटीन, पोटाशियम, सोडियम आदि पोषक तत्त्वों की कमी होती है, किन्तु साथ ही पोषक तत्त्वों के पाचन, अवशोषण तथा सात्म्यीकरण की क्रिया शिथिल हो जाती है। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त आहार देने से विषम परिस्थिति पैदा होकर रोगी की बेमौत मौत भी हो सकती है। ऐसा हुआ है, इसका साक्षी हूँ मैं

तो ऐसे चिकित्सक एवं लेखक अपने विषय के महापण्डित हो सकते हैं, स्वास्थ्य एवं आहार के सम्बन्ध में भी वे जानते होंगे, परन्तु यह सारी जान-

कारी इकट्ठी की हुई है, वासी तथा उधार है। बाबा आदम के जमाने से चली आ रही परम्परा आँख बन्द करके वे निभा रहे हैं। जो 50 साल पहले विदेशों में पढ़ाई जाती थी, वही आज हमारे यहाँ पढ़ा व बता रहे हैं। न तो उससे जीवन बदला है और न दूसरों का भला होने वाला है। आहार एवं स्वास्थ्य का विज्ञान बहुत आगे बढ़ गया है। उक्त लेखिका की पुस्तक भी वर्षों पूर्व प्रकाशित विदेशी पुस्तकों की नकल के सिवा कुछ नहीं है। लिखने में अकल का भी सहारा नहीं लिया गया है। न कोई प्रयोग किया, न कोई विवेक का सदुपयोग किया, न अनुभव लिया, न उसे जिया। मूर्च्छित लोग लिख रहे हैं, मूर्च्छित लोग बता एवम् पढ़ा रहे हैं। स्वस्थ जीवन से उसका कोई ताल-मेल नहीं हैं। कैसे होगा राष्ट्रीय-स्वास्थ्य का विकास। आज की अनुभूत, विधायक, सृजनशील एवं स्वास्थ्यदायी नवीनतम खोजों को कैसे सार्वभौम बनाया जाय; इस तरफ आयुर्विज्ञानियों, चिकित्सकों एवं लेखकों का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए।

उपर्युक्त सारी घटनाओं तथा कुछ मित्रों के प्रेमपूर्ण आग्रह ने उद्दीपक का कार्य कर आहार पर लिखने के लिए प्रेरणा दी और मैंने "मेरा आहार: मेरा स्वास्थ्य" शृंखला में पाँच पुस्तकों का प्रणयन किया; जिसके तीन भाग इस पुस्तक के साथ प्रकाशित हो रहे हैं। अन्य भाग आर्थिक आयोजन के बाद निकलते रहेंगे।

पुस्तक के प्रथम भाग में आहार की प्रकृति, संस्कार, संयोग, मात्रा, वातावरण, काल, नियम तथा भोक्ता अर्थात् भोजन करने वाले के सम्बन्ध में पूरी चर्चा की गई है। सम्यक व संतुलित आहार लेने से पेट का भारीपन, पीड़ा, हृदय गति में रुकावट, पसलियों में फूटन, खड़े, बैठे, सोते, श्वास लेते व छोड़ते, हँसने, बोलने आदि विभिन्न क्रियाओं में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती। भोजन का पाचन अच्छी तरह होता है। भूख व प्यास अच्छी, संतुलित, मल-मूत्र निष्कासन नियमित, समस्त इन्द्रियों का निर्विकार सम्यक स्थिति में, बल, बुद्धि तथा वर्ण की वृद्धि वाणी व विवेक ओजपूर्ण होना सम्यक व संतुलित आहार के लक्षण है। ऐसे संतुलित आहार की प्राप्ति का उपाय इस पुस्तक में है।

आज आदमी तथा प्रकृति के मध्य संतुलन एवं हार्मोनी अस्तव्यस्त हो गई है और उसका दुष्परिणाम हम भुगत रहे हैं। हरित क्रान्ति के नाम पर हम जमीन, वनस्पति तथा स्वयं से रिश्ता तोड़ रहे हैं। विकास की जगह विकराल विनाश मुँह बाये खड़ा है। अत्यधिक उत्पादन के नाम पर भूमि का अत्यधिक दोहन एवं शोषण हो रहा है। कृषि कल कारखाने बन जाने से पृथ्वी की उर्वरता तीव्रता से रेगिस्तान में बदलती जा रही है। हमारे स्वास्थ्य की आधारशिला ताजे जीवन्त अन्न, फल एवं शाक सब्जियाँ है,

परन्तु अब वे उपलब्ध नहीं हैं। उनकी जगह डिब्बाबन्द, रासायनिक कीट-नाशी औषध-मिश्रित मृत्यु सदृश हानिकारक खाद्य पदार्थ हमारे सामने हैं। ये खाद्य पदार्थ स्वाद, स्वास्थ्य एवं पोषण की दृष्टि से हीन हो गये हैं, जिन्हें खाकर मानव जाति रुग्ण एवं विक्षिप्त हो रही है। मानव जीवन को समृद्ध एवं स्वस्थ बनाने के लिए प्रकृति की ओर लौटना ही होगा। हमारे आहार का मौलिक आधार खेती को नैसर्गिक एवं जैव बनाना ही होगा। इस प्रकार के प्रयोग चीन, जापान तथा अन्य विकसित देशों में प्रारम्भ हो गये है। सुप्रसिद्ध जैव नैसर्गिक कृषि वैज्ञानिक डॉ मैसनोबु फुकुओका ने एक अद्भुत पुस्तक "द नेचुरल वे आफ फार्मिग द थ्योरी एण्ड प्रेक्टिल ऑफ ग्रीन फिलोसफी" लिख कर विश्व में एक नयी क्रान्ति की शुरुआत की है। अपने यहाँ अन्धा-धुन्ध बढ़ता कीटाणुनाशक एवं रासायनिक खादों के प्रयोग से आहार के मौलिक गुणों तथा संरचना में भी विकृति आ गई हैं और ऐसे आहार शरीर में अनेक जटिलताएँ एवं बीमारियाँ पैदा करते हैं। इस तथ्य की ओर "मेरा आहार मेरा, स्वास्थ्य" में विशेष ध्यान आकृष्ट किया गया है।

आज विश्व में आहार के क्षेत्र में अनेक शोध कार्य चल रहे हैं, उन शोध कार्यों की पर्याप्त जानकारी देने का प्रयास इस ग्रन्थ में किया गया है। आहार के द्वितीय एवं तृतीय भाग में आहार के विभिन्न वर्गों शूक धान्य वर्ग (Cereals) शमी धान्य वर्ग (legumes & pulses) शाक वर्ग (vegetables) में पत्तेवाली, फल व फूल वाली तथा कन्द मूल वाली सब्जियों (green, leafy, Fruits, flowers roots & tubers Vegetables) फल वर्ग (Fruits) में शुष्क काष्ठज मेवे, मीठे मेवे, खट्टे व अर्द्ध खट्टे तथा मीठे फल (Dry nuts, dry sweet Fruits, Citrus, Subcitrus & sweet fruits) गोरस वर्ग (Milk & its products) इक्षु वर्ग में गुड़, राब, आदि शहद, आहार योनि वर्ग (Vegetables, Oils, Seeds, Salts, Condiments) आदि के एक-एक सदस्य की शोधपूर्ण तथ्यों एवं अनुभवों से परिपूर्ण वैज्ञानिक जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

वेद का यह अकाट्य सत्य "अन्नं मृत्युमृत जीवातु माहुः" आहार की वैज्ञानिक उपादेयता को प्रमाणित करता है। प्राचीन आयुर्वेद मनीषियों का आहार पर गवेषणापूर्ण चिन्तन" पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषवणैः। पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषवणैः। अर्थात् विनापि भेषजैर्व्याधि पथ्यादेव निवर्तते। न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि॥ अर्थात् औषधि के बिना सिर्फ पथ्य से रोग दूर हो जाता है, परन्तु पथ्य न होने पर सैकड़ों औषधियों का प्रयोग करने के बावजूद भी रोग का नाश नहीं होता है। बिना पथ्य औषधि का प्रभाव व्यर्थ हो जाता है। आहार के विविध प्राचीन आयुर्वेदिक

गुणों का अर्वाचीन आयुर्विज्ञान की कसौटी पर कस कर उसका सार प्रस्तुत पुस्तक के रूप में मैंने देने का प्रयास किया है। कितना सफल रहा हूँ, इसका निर्णय आप करें।

प्रस्तुत पुस्तक में निरापद वनौषधि, चिरायता, ब्राह्मी, तुलसी आदि का वैज्ञानिक शोध-निष्कर्ष देकर बताया गया है कि इन अमृततुल्य निरापद औषधियों में कुछ ऐसे जैव सक्रीय क्षाराभ होते हैं जो विभिन्न रोगों पर अपने सक्रिय प्रभाव से रोग एवं रोगाणुओं का संहार करते हैं। जैसे चिरायता में स्थित "एमेरोजेन्टिन" औषधीय प्रभाव में "सिनकौना कुनैन" की तरह होता है परन्तु कुनैन को तरह घातक नहीं है। उसी तरह ब्राह्मी में स्थित ब्राह्मीन क्षाराभ कुचला के स्ट्रिकनीन की तरह प्रभावकारी है परन्तु विषाक्त नहीं है। इतना ही नहीं भाँग, धतूरा, अफीम, भिलावा, कुचला आदि हानिकारक वनौषधियों के घातक प्रभाव से आगाह किया गया है। इस तरह हर प्रकार के आहार एवं निरापद वनौषधियों के सम्बन्ध में प्राचीन एवं अर्वाचीन शोधों को अनुभव जन्य बनाकर आपके सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आशा है कि मेरे अन्य प्रकाशनों की तरह इसका भी स्वागत हर वर्ग के लोगों द्वारा होगा। इस पुस्तक लेखन में सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों का संदर्भ ग्रन्थ के रूप में सहारा लिया गया है। इनके लेखकों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

विभिन्न तीव्र, जीर्ण एवं असाध्य रोगग्रस्त उन हजारों हजार रोगियों का मैं विशेष आभारी हूँ जिन पर मैंने पन्द्रह साल तक विभिन्न आहारों का प्रयोग कर आशातीत सफलता प्राप्त की औरजिसका निचोड़ पुस्तक के रूप में आपके सामने प्रस्तुत है

प्रस्तुत पुस्तक की पाण्डुलिपी को संशोधन एवं प्रूफ रीडिग हेतु भाई गजेन्द्रकुमार जैन, मन्त्री राजस्थान गाँधी स्मारक निधि तथा डॉ. प्रकाश चन्द्र भट्ट, प्रवक्ता हिन्दी विभाग क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय अजमेर का मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने अपने व्यस्त समय में से कुछ समय निकाल कर इस पुस्तक को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के योग्य बनाया है।

परोक्ष रूप में इस पुस्तक प्रकाशन में श्रीमती मंजु नीरज का विशेष सहयोग रहा है जो मुझे अनेक पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त रख कर तथा चिकित्सकीय कार्य में सहयोग कर लेखन के लिए प्रोत्साहन देती रही हैं।

मैं संस्थान के संस्थापक-अध्यक्ष श्री सम्पतमल लोढ़ा का हार्दिक आभारी हूँ जो लोक-स्वास्थ्य-चेतना जागरण के लिए ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन हेतु सदैव प्रोत्साहित करते रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पर्यावरणविद् एवं चिपको आन्दोलन के प्रणेता प्रकृति प्रेमी श्री सुन्दरलाल बहुगुणा, चिपको सूचना केन्द्र, नवजीवन आश्रम, सिल्यारा, टिहरी गढ़वाल, उत्तर प्रदेश-249155, जिनकी चिकित्सा करने

का भी सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के दौरान अत्यधिक व्यस्ततम समय में से कुछ समय निकाल कर प्रेरणापूर्ण आमुख लिख कर प्रोत्साहित किया है।

उन सभी विद्वान मित्रों का विशेष हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने पुस्तक को देख कर अपनी प्रेरणापूर्ण सम्मतियाँ भेजने की कृपा की है।

अन्त में विज्ञ पाठकों से निवेदन है कि अत्यन्त सावधानी के बाद भी मुद्रण सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं: उन्हें सुधार कर सही पढ़ने की कृपा करें तथा अपने अमूल्य सुझावों से अवगत करायें।

सबके मंगल दिव्य स्वास्थ्य की शुभ कामना के साथ

—लेखक

आशीष

परम पुज्यास्पद गुरुवर स्वामी आनन्दानन्द जी, संस्थापक अध्यक्ष, योग-साधना आश्रम व योग प्रभारी एवं निदेशक, राजकीय यौगिक चिकित्सा एवं अनुसंधान केन्द्र, बापू नगर, जयपुर का शुभाशिर्वाद "सदा वैज्ञानिक मूल्यांकन के लिए तत्पर प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञ, योग पद्धति के प्रति दत्तचित्त डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज की "मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य" पुस्तक शुद्ध संतुलित आहार के सम्बन्ध में जनमानस को उद्‌बुद्ध करने की अपार क्षमता से युक्त एक अमूल्य कृति है।

बरसों तक किये गये अपने आहार सम्बन्धी प्रयोगों का शोध निष्कर्ष तथा विश्व के गणमान्य चिकित्सा शास्त्रियों के आहार के बारे में वैज्ञानिक विश्लेषणों को वर्षों तक बारीकी से अध्ययन कर जो निष्कर्ष निकालने में समर्थ हुआ है उस नवयुवक उदीयमान लेखक ने उन्हीं बातों को विस्तारपूर्वक पुस्तक में लिपिवद्ध किया है। सब स्तर के लोग विशेषतः कृत्रिम पोषकतत्त्व विहीन आहार विलासियों के लिये यह पुस्तक अतीव सारगभित है।

प्रदूषित वातावरण के युग में तथा कथित विभिन्न खाद्य गुणों से अलंकृत डिब्बा बन्द खाद्य पदार्थ समूह स्वास्थ्य सुधार के विपरीत नाना प्रकार के रोगों के आक्टोपस के समान जकड़ते जा रहे हैं। ऐसा एक युग संधिक्षण में नैसर्गिक अनायास प्राप्त ताजी, हरी सब्जियाँ, अंकुरित दालें, फल, दूध व दुग्ध जात खाद्य सामग्री से शारीरिक, मानसिक व नैतिक स्वास्थ्य में स्वावलम्बी बलिष्ठ व कर्मठ बनाने हेतु उक्त अचूक साधनों के प्रति लेखक ने अपनी इस पुस्तक द्वारा जनमानस को आकृष्ट किया है।

मैं डॉ. नीरज के दीर्घ जीवन की कामना करने के साथ साथ जनसाधारण को भी आह्वान करता हूँ कि "मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य" पुस्तक में निर्देशित संतुलित आहार द्वारा स्वयं को स्वास्थ्य की दिशा में समृद्ध बनावें।"

ॐ तत् सत् !

—स्वामी आनन्दानन्द जी

गुणों का अर्वाचीन आयुर्विज्ञान की कसौटी पर कस कर उसका सार प्रस्तुत पुस्तक के रूप में मैंने देने का प्रयास किया है। कितना सफल रहा हूँ, इसका निर्णय आप करें।

प्रस्तुत पुस्तक में निरापद वनौषधि, चिरायता, ब्राह्मी, तुलसी आदि का वैज्ञानिक शोध-निष्कर्ष देकर बताया गया है कि इन अमृततुल्य निरापद औषधियों में कुछ ऐसे जैव सक्रीय क्षाराभ होते हैं जो विभिन्न रोगों पर अपने सक्रिय प्रभाव से रोग एवं रोगाणुओं का संहार करते हैं। जैसे चिरायता में स्थित "एमेरोजेन्टिन" औषधीय प्रभाव में "सिनकौना कुनैन" की तरह होता है परन्तु कुनैन को तरह घातक नहीं है। उसी तरह ब्राह्मी में स्थित ब्राह्मीन क्षाराभ कुचला के स्ट्रिकनीन की तरह प्रभावकारी है परन्तु विषाक्त नहीं है। इतना ही नहीं भाँग, धतूरा, अफीम, भिलावा, कुचला आदि हानिकारक वनौषधियों के घातक प्रभाव से आगाह किया गया है। इस तरह हर प्रकार के आहार एवं निरापद वनौपधियों के सम्बन्ध में प्राचीन एवं अर्वाचीन शोधों को अनुभव जन्य बनाकर आपके सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आशा है कि मेरे अन्य प्रकाशनों की तरह इसका भी स्वागत हर वर्ग के लोगों द्वारा होगा। इस पुस्तक लेखन में सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों का संदर्भ ग्रन्थ के रूप में सहारा लिया गया है। इनके लेखकों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

विभिन्न तीव्र, जीर्ण एवं असाध्य रोगग्रस्त उन हजारों हजार रोगियों का मैं विशेष आभारी हूँ जिन पर मैंने पन्द्रह साल तक विभिन्न आहारों का प्रयोग कर आशातीत सफलता प्राप्त की औरजिसका निचोड़ पुस्तक के रूप में आपके सामने प्रस्तुत है

प्रस्तुत पुस्तक की पाण्डुलिपी को संशोधन एवं प्रूफ रीडिंग हेतु भाई गजेन्द्रकुमार जैन, मन्त्री राजस्थान गाँधी स्मारक निधि तथा डॉ. प्रकाश चन्द्र भट्ट, प्रवक्ता हिन्दी विभाग क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय अजमेर का मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने अपने व्यस्त समय में से कुछ समय निकाल कर इस पुस्तक को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के योग्य बनाया है।

परोक्ष रूप में इस पुस्तक प्रकाशन में श्रीमती मंजु नीरज का विशेष सहयोग रहा है जो मुझे अनेक पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त रख कर तथा चिकित्सकीय कार्य में सहयोग कर लेखन के लिए प्रोत्साहन देती रही हैं।

मैं संस्थान के संस्थापक-अध्यक्ष श्री सम्पतमल लोढ़ा का हार्दिक आभारी हूँ जो लोक-स्वास्थ्य-चेतना जागरण के लिए ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन हेतु सदैव प्रोत्साहित करते रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पर्यावरणविद् एवं चिपको आन्दोलन के प्रणेता प्रकृति प्रेमी श्री सुन्दरलाल बहुगुणा, चिपको सूचना केन्द्र, नवजीवन आश्रम, सिल्यारा, टिहरी गढ़वाल, उत्तर प्रदेश-249155, जिनकी चिकित्सा करने

का भी सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के दौरान अत्यधिक व्यस्ततम समय में से कुछ समय निकाल कर प्रेरणापूर्ण आमुख लिख कर प्रोत्साहित किया है।

उन सभी विद्वान मित्रों का विशेष हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने पुस्तक की देख कर अपनी प्रेरणापूर्ण सम्मतियाँ भेजने की कृपा की है।

अन्त में विज्ञ पाठकों से निवेदन है कि अत्यन्त सावधानी के बाद भी मुद्रण सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं: उन्हें सुधार कर सही पढ़ने की कृपा करें तथा अपने अमूल्य सुझावों से अवगत करायें।

सबके मंगल दिव्य स्वास्थ्य की शुभ कामना के साथ

—लेखक

आशीष

परम पुज्यास्पद गुरुवर स्वामी आनन्दानन्द जी, संस्थापक अध्यक्ष, योग-साधना आश्रम व योग प्रभारी एवं निदेशक, राजकीय यौगिक चिकित्सा एवं अनुसंधान केन्द्र, बापू नगर, जयपुर का शुभाशिर्वाद "सदा वैज्ञानिक मूल्यांकन के लिए तत्पर प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञ, योग पद्धति के प्रति दत्तचित्त डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज की "मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य" पुस्तक शुद्ध संतुलित आहार के सम्बन्ध में जनमानस को उद्बुद्ध करने की अपार क्षमता से युक्त एक अमूल्य कृति है।

वरसों तक किये गये अपने आहार सम्बन्धी प्रयोगों का शोध निष्कर्ष तथा विश्व के गणमान्य चिकित्सा शास्त्रियों के आहार के वारे में वैज्ञानिक विश्लेषणों को वर्षों तक बारीकी से अध्ययन कर जो निष्कर्ष निकालने में समर्थ हुआ है उस नवयुवक उदीयमान लेखक ने उन्हीं वातों को विस्तारपूर्वक पुस्तक में लिपिवद्ध किया है। सब स्तर के लोग विशेषत: कृत्रिम पोषकतत्त्व विहीन आहार विलासियों के लिये यह पुस्तक अतीव सारगर्भित है।

प्रदूषित वातावरण के युग में तथा कथित विभिन्न खाद्य गुणों से अलंकृत डिब्बा बन्द खाद्य पदार्थ समूह स्वास्थ्य सुधार के विपरीत नाना प्रकार के रोगों के आक्टोपस के समान जकड़ते जा रहे हैं। ऐसा एक युग संधिक्षण में नैसर्गिक अनायास प्राप्त ताजी, हरी सब्जियाँ, अंकुरित दालें, फल, दूध व दुग्ध जात खाद्य सामग्री से शारीरिक, मानसिक व नैतिक स्वास्थ्य में स्वावलम्बी बलिष्ठ व कर्मठ बनाने हेतु उक्त अचूक साधनों के प्रति लेखक ने अपनी इस पुस्तक द्वारा जनमानस को आकृष्ट किया है।

मैं डॉ. नीरज के दीर्घ जीवन की कामना करने के साथ साथ जनसाधारण को भी आह्वान करता हूँ कि "मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य" पुस्तक में निर्देशित संतुलित आहार द्वारा स्वयं को स्वास्थ्य की दिशा में समृद्ध बनावें।"

ॐ तत् सत् !

—स्वामी आनन्दानन्द जी

मुझे भी कुछ कहना है

सम्मतियाँ

आहार द्वारा चिकित्सा के क्षेत्र में अनेक पुस्तकें आयी हैं लेकिन मौलिक एवं प्रायोगिक नहीं, नुस्खें के रूप में इधर-उधर से उधार ली गई बासी। कोई भी आहार क्यों प्रभावी होता है, उसका इतिहास, आयुर्वेदिक एवं आयुर्वैज्ञानिक गुणात्मक विवेचन, स्वास्थ्य को गति तथा रोग को दुर्गति प्रदान कर जीवन में नित्य नूतन प्राण का संचार करने वाली विश्व में की गई अनेक नवीनतम शोध एवं लेखक के पन्द्रह साल से भी उपर निजी अनुसंधानात्मक अनुभवों के आधार पर लिखी गई अपने किस्म की अनूठी पुस्तक प्रथम बार "मेरा आहार, मेरा स्वास्थ्य" पढ़ कर आप स्वयं चमत्कृत एवं झंकृत हो उठेंगे। यह पुस्तक आरोग्य का आन्दोलन है, स्वास्थ्य साधकों का मधुर स्पन्दन है, स्वास्थ्य-संगीत का सरगम एवम् नृत्य की थिरकन है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ विद्वान मित्रों की सम्मतियाँ :

● डॉ. नीरज की "मेरा आहार: मेरा स्वास्थ" पुस्तक का प्रथम भाग देखा, आनन्द हुआ। विद्वान लेखक ने 'आहार' के माध्यम से स्वस्थ जीवन की कुंजी ही सर्वसामान्य के लिए रख दी है।

डॉ व्ही एन. माउस्कर
महामंत्री अ. भा. प्रा. चि. परिषद, दिल्ली

● प्राकृतिक चिकित्सा में आहार का विशेष महत्व है। इस विषय पर काफी साहित्य होने हुए भी एक वैज्ञानिक पुस्तक की कमी प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमियों व चिकित्सकों को अनुभव हो रही थी। डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज द्वारा लिखित पुस्तक "मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य" इस क्षेत्र में एक पूर्ण रचना है। विद्वान लेखक ने आहार के सभी विषयों पर किए गए चिन्तन, शोध व समग्र वैज्ञानिक पहलुओं का समावेश इस कृति में किया है। पुस्तक में जैविक आहार, फल, सब्जियों तथा सभी प्रकार के आहारों के गुण, धर्म व उनमें से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों व प्रयोग विधि इत्यादि सभी विषयों पर विस्तार से आयुर्वैज्ञानिक विवेचन किया गया है।

डॉ. नीरज ने घातक रसायनों के प्रयोग व उनसे होने वाली हानियों से वाकिफ कराया है। उम्मीद है कि जन स्वास्थ्य के लिए आहार विषय पर यह पुस्तक उत्कृष्ठ रचना सिद्ध होगी तथा जनसाधारण द्वारा इसका व्यापक स्वागत एवं प्रचार-प्रसार किया जायेगा।

वैद्य शिवकुमार शर्मा भिषगाचार्य, एन. डी.
प्रभारी : राजकीय प्राकृतिक चिकित्सालय, हनुमानगढ़ टाऊन

डॉ. नागेन्द्रकुमार 'नीरज' की पुस्तक में सरल सुबोध भाषा के द्वारा नैसर्गिक जीवन जीने की कला को ही रखा गया है। आहार-चिकित्सा की यह महत्वपूर्ण पुस्तक है।

डॉ रा. रा. मोटे (थामणगावकर)
प्राचार्य, इंडियन नेचरो मेडिकल कालेज, नागपुर

"मेरा आहार : मेरा स्वास्थ्य" पुस्तक मे शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मन, आत्मा एव ब्रह्माण्ड के स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य की अपूर्व चर्चा की गई है, जो कि अन्य पुस्तकों में देखने को नहीं मिलती है। चाय, कॉफी, शराब जैसे सामाजिक दुर्व्यसनों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक जानकारी तथा इनसे मुक्ति के मनोवैज्ञानिक उपाय भी बताये गये हैं। विश्व के हर क्षेत्र में होने वाले आहार संबंधी आधुनिकतम खोजों की जानकारी प्रस्तुत पुस्तक में देख कर अत्यन्त प्रसन्नता होती है। यह पुस्तक आम आदमी के अतिरिक्त चिकित्सक समुदाय के लिए भी एक अद्वितीय कृति है तथा सर्वोपयोगी है।

डॉ. रूपसिह गुर्जर एम. डी.
जे. एल. एन. अस्पताल, अजमेर

'नीरज' इस नौजवान डॉक्टर से दिल्ली यात्रा के दौरान मुलाकात हुई। "मेरा आहार : मेरा स्वास्थ" यह किताब सरसरी तौर पर पढ़ी, लेकिन शैली और बिषय प्रतिपादन सहज एवं नैसर्गिक है। आहार चिकित्सा की यह पुस्तक हमारे देशवासियों के लिए और यहां के सामाजिक वातावरण के अनुरूप है। है। लेखक को शुभकामना।

प्रो. ओमप्रकाश मिश्रा
मानद सम्पादक दैनिक उद्घोष, नागपुर

प्राकृतिक चिकित्सा का क्षेत्र वड़ा चुनौतीपूर्ण है। यहाँ चुनौती शब्द का प्रयोग इस सन्दर्भ में किया जा रहा है कि आज ऐलोपैथी पद्धति तथा अन्य पद्धतियाँ जो मात्र लक्षण का उपचार करती हैं और शीघ्रातिशीघ्र रोगी के रोग मुक्त होने का फतवा दे देती हैं– ऐसी पद्धतियों की ओर से प्राकृतिक चिकित्सा को भारी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। फिर व्यस्त जीवन की अनिवार्यताओं ने भी आम आदमी को इंजेक्शन, दवाइयाँ और गोलियाँ लेकर आज की तारीख में स्वस्थ घोषित हो जाने की प्रेरणा दी है। दूसरी ओर प्राकृतिक चिकित्सा धैर्य रखने, स्वास्थ्य प्राप्ति में समय की सीमा भूल कर साधनारत होने पर बल देती है।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में अभी अध्ययन और शोध व नए क्षेत्रों की तलाश की अपार सम्भावनाएँ है। ऐलोपैथी की प्रसिद्धि और लोकप्रियता का एक कारण उसका अनुसंधान और सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्थितियों को उजागर

करना है–इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में प्राकृतिक चिकित्सकों का कार्य इस पद्धति को स्थापित करने की दिशा में कितना साहसिक है, अनुमान लगाया जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा को अभी अपने साहित्य को समृद्ध करना होगा और उसे गवेषणापूर्ण बनाना होगा। इस सन्दर्भ में यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि मुझे प्राकृतिक चिकित्सा की कई श्रेष्ठ कृतियाँ पढ़ने का अवसर मिला। लेकिन डॉ. नागेन्द्रकुमार 'नीरज' की सद्य प्रकाशित पुस्तक "मेरा आहार : मेरा स्वास्थ्य" पढ़ कर लगा कि डॉ. नीरज ने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत ही मौलिक और शोधपूर्ण कार्य करके इस दिशा की एक महत्वपूर्ण कमी की पूर्ति करने का सफल प्रयास किया है। डॉ. नीरज ने प्रकृति प्रदत्त खाद्य पदार्थों का महत्व भारत की प्राचीनतम आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के प्रकाश में निरूपित करते हुए फल और सब्जियों के विभिन्न तत्वों का उद्घाटन किया है और रोगमुक्ति की दिशा में उक्त नैसर्गिक खाद्य विशेष की उपादेयता प्रतिपादित की है। डॉ. नीरज ने जिस अधिकारपूर्वक और आत्मविश्वास के साथ "मेरा आहार : मेरा स्वास्थ्य" ग्रन्थ में अपने गम्भीर चिन्तनपूर्ण विचारों को प्रस्तुत किया है, उसे देख कर मन पुलकित हो जाता है क्योंकि इस प्रकार का इस दिशा में यह प्रथम कार्य है। निश्चित ही प्राकृतिक चिकित्सा का ऐसा सत्साहित्य इस पद्धति के सम्मुख आई सभी चुनोतियों का निर्भीकतापूर्वक सामना करने की अपार क्षमता और अपूर्व सम्भावनाऐं अपने में संजोए हुए है।

मैं इस श्रेष्ठ कृति के लिए डॉ. नीरज को साधुवाद देते हुए हार्दिक बधाई देता हूँ और विश्वास करता हूँ कि उनकी लेखनी से और अनेक ग्रन्थों का प्रणयन होगा तथा प्राकृतिक, चिकित्सा—संसार इसे आदर के साथ अपनाएगा।

डॉ. प्रकाशचन्द्र भट्ट, एम.ए., एम.एड., पी.एच.डी.
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, अजमेर

नोट—अनेक विद्वान् मित्रों की सम्मतियाँ प्राप्त हुई है उन्हें अगले भाग में पढ़ें।

1 जैव-कार्बनिक वैज्ञानिक भोजन : भूख, स्वास्थ्य, सौन्दर्य एवं पोषण

मैं एक दिन बच्चों को साथ लेकर स्कूटर से सैर करने गया। कुछ दूर चलने के बाद ही स्कूटर ने चलने से मना कर दिया। एक अन्य घटना में जब मैं एक चिकित्सक मित्र-परिवार के साथ यात्रा पर था; घनघोर अँधेरी रात में जीप एक वियाबान जंगल में रूठ गई। दोनों ही परिस्थितियों में इन मशीनों का भोजन समाप्त हो गया था। किसी प्रकार उनके आहार की व्यवस्था की गई, तभी हमारी शेष यात्रा पूरी हो सकी। एक दिन खाना खाने के बाद भी स्कूटर ने चलने से मना कर दिया क्योंकि उसके भोजन (पेट्रोल) में मिलावट थी। मनुष्य-निर्मित मोबाइल मशीन के सुसंचालन एवं स्वास्थ्य के लिए जिस प्रकार संतुलित ईंधन चाहिए, उसी प्रकार प्रकृति निर्मित सभी प्राणियों को क्रियाशील रखने एवं स्वास्थ्य निर्माण के लिए संतुलित पोषक वैज्ञानिक आहार चाहिए।

शारीरिक क्रियाशीलता के कारण ऊर्जा एवं शक्ति का व्यय, टूट-फूट, सृजन-निर्माण, वृद्धि-विकास आदि कार्य निरंतर चलते रहते हैं। स्वास्थ्य शक्ति, सौन्दर्य, स्नायविक ऊर्जा (नर्वफोर्स) एवं मानसिक कार्यों के लिए आहार की आवश्यकता होती है।

आहार की गुणवत्ता पर ही शरीर का पोषण एवं स्वास्थ्य निर्भर करता है। विगत 4-5 दशाब्दियों में आहार के क्षेत्र में काफी शोध कार्य हुए हैं, जिससे मानव जाति का बड़ा लाभ हुआ है। मनुष्य की औसत उम्र, ऊँचाई, वृद्धि, विकास एवं मानसिक शक्ति-संवर्द्धन में उत्साहजनक चमत्कारिक सफलता मिली है। अतः हमें चाहिए कि गर्भावस्था से लेकर किशोरावस्था तक वैज्ञानिक पोषक आहार पर विशेष ध्यान दें; क्योंकि बाल्यावस्था के समय पोषण की कमी के कारण जीवन भर के लिए शारीरिक मानसिक दोष पैदा हो जाते हैं।

पोषण, स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य का आधार : भूख तथा वैज्ञानिक आहार:-

भूख लगने पर ही भोजन के पोषक तत्त्वों का सात्मीकरण अच्छी तरह हो पाता है । भूख, प्यास तथा सैक्स व्यक्ति की नैसर्गिक आदिम आन्तरिक आवश्यकतायें हैं। कथित आधुनिक सभ्यता ने इन तीनों ही अत:प्रेरणाओं को विकृत कर रखा है। भूख अब आन्तरिक माँग न होकर बाह्य माँग हो गई हैं। आहारों के रंग-रूप स्वाद को देख कर हमें भूख लगती हैं । पेट भरा हुआ है लेकिन सामने रसगुल्ला या अन्य चट-पटे आहार या मिठाइयाँ आने पर खाने के लिए जी मचल जाता है । यह स्थिति झूठी भूख की स्थिति हैं। सच्ची भूख में रूखी रोटी सूखी सब्जी भी अमृतमय लगती है। उबली सब्जी, ताजे फल, सलाद तथा अंकुरित अन्न प्राण से भी प्यारे लगते हैं । यदि आपको स्वादिष्ट व्यंजन व मिठाइयाँ खाने की इच्छा हो तो समझना कि झूठी भूख है । भूख में कुछ भी खाने की इच्छा होती है अतः सच्ची भूख की स्थिति में विवेक का सम्मान करते हुए पौष्टिक जैव-आहार का प्रयोग करें।

भूख का बोध एक जैव-रासायनिक प्रक्रिया है । शरीर एवं मन की विभिन्न अवस्थाओं में आहार लेने की प्रवृत्ति एवं आवश्यकता भी भिन्न-भिन्न होती है । प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि जन्मजात शिशु स्वाद के तल पर बिलकुल कोरा होता है। उसे शरबत तथा शहद ज्यादा भाता है। नमकीन शरबत का वह विरोध करता है। कारण स्पष्ट है। नवजात शिशु के जगत में आते ही उसके आन्तरिक एवं बाह्य अवयव क्रियाशील हो जाते हैं, फलतः उसे अतिरिक्त शक्ति एवं ऊर्जा के लिए शर्करा की आवश्यकता होती है। वह उसी की मांग करता है । यह नैसर्गिक अन्त:प्रेरणा है। बड़े होने पर पेट-भर खाने के बाद अन्दर से तृप्ति की आवाज आती है यह शरीर की मौन भाषा है। इसकी अवहेलना करने पर हम अपना आत्म नियंत्रण एवं विश्वास खो देते हैं। फिर शुरु हो जाता है घातक सिलसिला अधिक खाने का । मिठाई, नमकीन, बिस्कुट, चाय, कॉफी, आइसक्रीम, शर्बत आदि सॉफ्ट कोल्ड ड्रिंक इत्यादि ऐसे आहार हैं जो पेट भरे होने के बावजूद भी खाये जाते हैं और इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति बीमार, मोटा

तथा लम्बोदर हो जाता है। भूख का सीधा सम्बन्ध स्वास्थ्य से है। बिना कड़ी भूख के अच्छा से अच्छा पौष्टिक आहार भी विष का काम करता है। आहार के प्रकार रंग-रूप एवं स्वाद के सम्मोहन में फँस कर खाना झूठी भूख है। इससे पाचन तथा सात्म्यीकरण अच्छी तरह नहीं होता है। भोजन पेट में पड़ा पड़ा सड़ता रहता है। अजीर्ण मंदाग्नि एवं वायुफुल्लता की स्थिति पैदा होती है। आँतों में अनेक पैथोजेनिक बीफिडो कीटाणु पैदा होकर घातक विष पैदा कर सभी शारीरिक संस्थानों को रुग्ण बनाते हैं। भूख के सन्दर्भ में अनेक वैज्ञानिक शोध कार्य हुए हैं जिनका संक्षिप्त निष्कर्ष निम्न हैं :—

(1) **बार बार खाना स्वास्थ्य-घातक :**—मनुष्य के सिवा सभी जानवर पेट भर जाने के बाद भोजन की ओर देखते भी नहीं हैं। बेरियम एक्स-रे द्वारा यह पता लग चुका है कि भूख के अभाव या सामान्य अवस्था में बार-बार खाने से जो भोजन 3½ घंटे में पच कर आमाशय से आँतों में चला जाना चाहिए, उसी भोजन को पचने में 7 से 9 घंटे लग जाते हैं। जैसे रोटी खाने के डेढ़ घंटे बाद मात्र आइसक्रीम खाने से पाचन का समय 3 से बढ़ कर 6 घंटे हो जाता है। इस अन्तराल में भोजन सड़ता रहता है।

(2) **पोषक तत्त्वों की कमी के अनुसार उसकी माँग स्वतः बढ़ जाती है :**—विभिन्न वैज्ञानिक खोजों से यह बात सामने आयी है कि शरीर अपनी आवश्यकतानुसार विशिष्ट खाद्य पदार्थों के प्रति आकृष्ट होता है। जैसे शरीर में कैल्सियम की कमी होने पर बच्चे प्रायः चूना, पत्थर, मिट्टी आदि खाते हैं। गर्मियों में पसीने द्वारा नमक ज्यादा निकलने के कारण नमकीन चीजें खाने की इच्छा होती है। शक्ति की पूर्ति एवं थकान की स्थिति में शर्करायुक्त आहार या पेय, शरीर-निर्माण की किशोरवस्था में दाल वदूध, विटामिन सी की पूर्ति हेतु नीबू, संतरा, आँवला आदि खट्टे फल खाने की इच्छा होती है।

(3) **मानसिक तनाव से भूख की कमी : खूब चबा कर खाने से तनाव से मुक्ति :**—यू. एस. विटरंस एडमिनेस्ट्रेशन मेडिकल सेंटर मिनेपोलिस अमेरिका के डॉ. जानमार्सी तथा एलन लेविन सैकड़ों लोगों पर अध्ययन के

बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि तनाव की स्थिति में 48% लोगों में भूख आवश्यकता से कम हो जाती है। 44% लोग आवश्यकता से अधिक खाते हैं तथा 8% लोगों में भूख के तल पर किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि तनाव से मुक्ति स्वादिष्ट व्यंजन खाने या पेट भरने से नहीं होती है। धीरे-धीरे चबा कर खाने से तनाव से मुक्ति मिलती है। अतः तनाव, क्रोध या संवेगात्मक स्थिति में न खाएं, बल्कि इनसे बचने के लिए ठोस रूखे आहार लेकर खूब चबा-चबा कर निगले। ऐसा करने से व्यक्ति तनाव-मुक्त होता है।

(4) **इन्सुलिन का स्राव भूख बढ़ाये**—येल विश्वविद्यालय के मनोविज्ञानी जूडिथ रोडिन ने अपने प्रयोगों में भूखे व्यक्तियों के सामने अनेक प्रकार के स्वादिष्ट खुशबूदार व्यंजन रखे तथा उनके इन्सुलिन का स्तर मापा। भोजन को देखने मात्र से इन्सुलिन का स्तर काफी बढ़ गया। मिसीसिपी विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक विलियम जी. जानसन ने कुछ मोटे व्यक्तियों पर एक अद्भुत प्रयोग किया। उन्हें आँख बन्द करके मनपसन्द स्वादिष्ट भोजन की कल्पना करने के लिए कहा गया। उस समय रक्त में इन्सुलिन की मात्रा नापने पर वह बढ़ी हुई मिली। इन्सुलिन भूख बढ़ाने तथा रक्त में शर्करा को नियंत्रित करने वाला हार्मोन है। यह क्लोम ग्रंथि के लैंगरहैन्स द्वीप की बीटा कोशिकाओं से निकलता है। उपर्युक्त वैज्ञानिकों का मानना है कि दोनों स्थितियों में इंसुलिन के साथ पाचक रसों की ग्रन्थियाँ भी उत्तेजित होकर पाचक रसों का स्राव बढ़ा देती हैं। टहलने, पानी पीने तथा अन्य प्रतिवर्त शारीरिक क्रियाओं द्वारा भूख को नियंत्रित किया जा सकता है। प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि भूख की इच्छा न होने पर भी इन्सुलिन का इन्जेक्शन देने पर भूख की इच्छा बलवती हो जाती है।

(5) मुख में कौर रखते ही रक्त में इन्सुलिन का स्तर बढ़ जाने से शर्करा का स्तर कम हो जाता है। उसकी पूर्ति के लिए शरीर में शर्करा की माँग बढ़ जाती है और आप ज्यादा चीजें खाने के लिए प्रेरित होते हैं। पेट भरने के बाद भी आइसक्रीम या मिठाई की माँग शरीर में इसी सूत्र के आधार पर होती है। मोटे लोगों में इन्सुलिन का स्तर सामान्य से अधिक होने के कारण

वे ज्यादा शर्करायुक्त आहार लेते हैं और उनके लिए मोटापा एक नियति बन जाती है।

(6) ड्यूक विश्वविद्यालय मेडिकल सेन्टर में सूजन शिफमैन ने वरसों तक शोध कार्य कर भूख और मोटापे के मध्य रिश्ता कायम किया है! उनके अनुसार मोटे लोगों में स्वाद लेने तथा स्वाद पहचानने कीं विलक्षण क्षमता होती है। यदि उन्हें उन स्वादों से वंचित कर दिया जाये तो वे लोग अतृप्त ही रहते हैं और तृप्त होने के लिए खाये चले जाते हैं। मोटापाग्रस्त लोगों को सभी आहार पृथक पृथक खाना चाहिए। जैसे--दाल-रोटी या सब्जी मिला कर न लें। खूब चबा-चबा कर अलग-अलग खाएँ। पृथक पृथक स्वाद एवं सुगन्ध के कारण उन्हें तृप्ति मिलेगी। फलतः वे कम खाएँगे। मोटापा कम करके उससे बचे भी रहेंगे। खाद्य पदार्थों को मिश्रित करके खाने से एक ही जैसा स्वाद एवं सुगन्ध आने पर तृप्ति नहीं होती है और व्यक्ति खाता चला जाता है और मोटापा उसकी प्रकृति बन जाती है।

(7) स्वाद के अनुकूल नहीं होने से अरुचिकर आहार के कारण पाचक रसों तथा इन्सुलिन का स्राव भी कम होता है फलतः ऐसे आहार कम ही खाए जाते हैं।

(8) मासाचुसेटस इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी कैम्ब्रिज की जूडिथ वर्टमैन तथा उनके अन्य सहयोगी अपने शोध कार्यों से इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मोटापाग्रस्त लोगों में कार्बोहाइड्रेट की विशेष भूख होती है, जिसका कारण जैव-रासायनिक है। शरीर में कार्बोहाइड्रेट का नियंत्रण मस्तिष्क द्वारा होता है। कार्बोहाइड्रेट खाते ही मस्तिष्क में एक तंत्रिका रसायन "सेरोटोनिन" का स्राव तीव्रता से होता है। सेरोटोनिन अधिक मात्रा में निकलने से तृप्ति तथा प्रसन्नता महसूस होती हैं।

कार्बोहाइड्रेट की माँग की पूर्ति नहीं होने पर उत्तेजना, तनाव, चिड़-चिड़ापन, एकाग्रता की कमी, मीठी चीज खाने की प्रबल इच्छा आदि अनेक लक्षण दिखते हैं। "सेरोटोनिन" रसायन को नियंत्रित रखने के लिए शहद, मीठे फल तथा अन्य कम कैलोरीयुक्त हानिरहित आहार का प्रयोग करें।

(9) **निरंतर श्रम का अभ्यास भूख तथा मोटापा को प्रतिबंधित करता है—** ह्वीलिंग हॉस्पिटल वेलनेस सेंट, वेस्ट वर्जिनिया में कुछ शोध प्रयोग किये गए हैं, जिसमें देखा गया कि आधे घंटे तक खूब तेजी से दौड़ने या टेनिस खेलने वाली लड़कियों में भूख की कमी क्षणिक ही रही। उन्होंने अगले दो दिन तक सामान्य से भी अधिक आहार ग्रहण किया। इसके विपरित प्रतिदिन एक घंटे तक पाँव चक्की या हाथ चक्की चलाने से भूख की कमी कोई विशेष मालूम नहीं हुई, लेकिन दो दिन में उनके आहार में 700 कैलोरी का भोजन स्वतः कम हो गया।

पेन्सलवेनिया के पिट्सवर्ग विश्वविद्यालय में भी ठीक ऐसा ही प्रयोग मोटे बच्चों पर किया गया है। प्रयोगकर्त्ता लियोनार्ड एच. एपस्टाइन ने देखा कि मोटे बच्चों के एक ग्रुप ने सामान्य चहलकदमी और सीढ़ियाँ चढ़ने के निरंतर अभ्यास से जितना वजन कम किया, उतना दूसरे ग्रुप के बच्चे तेज दौड़ कर या तेज साइकिल चला कर नहीं कर पाए। इसका एकमात्र कारण यह है कि तेजी से कार्य या व्यायाम करने से जिस अनुपात में कैलोरी भस्म होती है, उससे दुगने अनुपात में कैलोरी की माँग बढ़ जाती है और यह माँग अधिक भूख द्वारा निर्देशित होती है। इसी प्रकार के प्रयोग जार्जिया विश्वविद्यालय एथेंस की शोधकर्त्री वारवरा डिक्सन मारले ने भी किया है। उन्होंने देखा कि जो महिलाएँ सप्ताह में तीन बार तीव्र गति से साइकिलि व्यायाम करती है उनकी 600 कैलोरी भस्म हो जाती थी। जिस दिन व्यायाम नहीं करतीं थी, उस दिन कैलोरी खर्च कम होती थी। इसके विपरीत जो महिलाएँ लम्बे समय अर्थात महीनों तक कम रफ्तार से नियमित समय तक साइकिलिंग करती थी, उनमें कैलोरी उपयोग की दर कम रही, लेकिन निरंतर रही और वजन कम हुआ।

कार्बनिक वैज्ञानिक आहार—रुग्ण अथवा स्वास्थ्य की स्थिति में शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की क्षति-पूर्ति करने वाला वैज्ञानिक आहार कहलाता है। वैज्ञानिक आहार से जीवन के लिए आवश्यक कार्बनिक तत्व प्रोटीन, कार्वोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज लवण, जल तथा आक्सीजन पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। साथ ही अतिरिक्त कैलोरी, टॉक्सिक तत्व

वर्ज्य पदार्थ शरीर में इकत्रित नहीं होते हैं। वे बाहर निकल जाते हैं।

वैज्ञानिक आहार की विशेषताऐं—

(1) रक्त, लिम्फ तथा स्नायविक संचार व्यवस्था को नियमित तथा व्यवस्थित रखता है।

(2) आलस्य तथा प्रमाद नहीं आने देता।

(3) जीवनदायी पोषक तत्त्वों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ शरीर की आपातकालीन सुरक्षा हेतु अतिरिक्त पोषण भी देता है।

(4) रक्त जीवन है। इसी के द्वारा सभी कोषाओं को पोषण मिलता है। मस्तिष्क, गुर्दे, यकृत, फेफड़े, हृदय, पाचन-संस्थान, ग्रन्थियाँ सभी को पोषण तथा जीवन रक्त द्वारा ही मिलता है। रक्त का जीवन हमारा आहार है। जैव-वैज्ञानिक आहार रक्त को शुद्ध एवं स्वस्थ बनाता है।

(5) जैव-वैज्ञानिक आहार से सभी वायटल अंग एक लय-ताल (रिद्म) में कार्य करते हैं।

(6) वैज्ञानिक आहार जीवनी शक्ति (Vital Power) को सम्बर्द्धित करता है। जीवनी शक्ति हमारे शरीर के तापमान, रक्तचाप तथा चयापचय क्रिया को नियन्त्रित करती है। आहार का ऊर्जा में परिवर्तन, रक्त द्वारा ऑक्सीजन का संवहन, प्रत्येक कोशिकाओं में पोषण का संचरण, आक्सीकरण, विष (टॉक्सिक) का निष्कासन आदि अनेक कार्य जीवनी शक्ति द्वारा ही सम्पादित होते हैं।

(7) जैव-वैज्ञानिक आहार में अपक्वाहार, फल, सब्जियों तथा अंकुरित अनाज का विशेष स्थान है। फलों में मैलिक, टारटेरिक तथा एसकार्बिक एसिड पाया जाता है जो काफी सशक्त विष-निष्कासक, रोगाणुनाशक तथा सभी प्रकार के टॉक्सिसमिया के सशक्त शत्रु हैं। भोजन का प्रारम्भ तथा अन्त कच्चे आहार से ही करें। अपक्व (कच्चा) आहार जिह्वा की स्वाद संवेदनाओं को जाग्रत करता है जबकि आग के सम्पर्क से बना आहार, तम्बाकू, चाय, कॉफी, चीनी, शीतल पेय, आइसक्रीम, केक्स, केण्डी आदि कन्फेकशनरी तथा संश्लेषित आहार जिह्वा की स्वाद के कलियों को संवेदनहीन करते हैं।

भोजन का अन्त ठोस ... से ... दाँतों में छिपे अन्न-क
साफ हो जाते हैं तथा जिह्वा पुनः संवेदनशील होती है ।

(8) वैज्ञानिक आहार से शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक तृप्ति होती है ।

(9) वैज्ञानिक आहार के उपयोग से शरीर का विकास श्रेष्ठ, ऊँचा तथा भार सामान्य, माँस-पेशियाँ सुदृढ़ एवं विकसित, त्वचा चिकनी-चुपड़ी साफ-सुथरी, अंगविन्यास सर्वोत्तम, सिर सीधा, सीना सामने उठा हुआ पेट अन्दर की ओर, कंधे सपाट, कदम गरिमायुक्त, नेत्र चमकीले, काले धब्बों से रहित सुन्दर गाल, चिकने व रेशम की तरह चमकीले बाल, स्वभाव में जीवन के प्रति अहोभाव, शारीरिक एवं मानसिक कार्यकलाप निरन्तर विधायक एवं सृजनशील, कल्याणकारी मंगलकारी श्रेष्ठ भाव, गहरी नींद शौच नियमित, भूख उत्तम, स्वस्थ सफेद चमकीले दाँत, शारीरिक एवं मानसिक प्रतिरोधक शक्ति प्रबल, मुँह जिह्वा एवं ओठ पर आभायुक्त लालिमा, चेहरे पर निरन्तर खिलती मुस्कान एवं चिन्तन में सहजता एवं प्रफुल्लता चुम्बकीय आकर्षण पैदा करता है । आवाज मीठी तथा सुसंस्कृत होती है । वाणी एवं चिन्तन में सहजता एवं सरलता होती है । किसी प्रकार का कोई साइको-सैक्सुअल कॉम्पलेक्स नहीं होता है वैज्ञानिक आहार से पाचन, श्वसन, रक्तसंचार, विष-निष्कासन, त्वचा अस्थि, ग्रंथि, स्नायु आदि सभी संस्थान सुव्यवस्थित ढंग से कार्य करते हैं स्वस्थ रहते हैं ।

अवैज्ञानिक मृत आहार—इस प्रकार के आहार से उचित मात्रा में शारीरिक एवं मानसिक पोषण नहीं मिलता है । इनमें जीवनदायी तत्वों की कमी होने से हीनताजनित रोग होते हैं । चीनी, कन्फेक्शनरी तथा संश्लेषित आहार के प्रयोग से शरीर में थायमिन, रिबोफ्लेविन आदि बी कॉम्पलेक्स विटामिन, विटामिन सी, कैरोटिन, कैल्सियम, लोहा आदि खनिज लवणों की डिफिशिएन्सी से रोग होते हैं । मृत अवैज्ञानिक आहार पोषक-तत्त्वों से हीन होते हैं । इनके उपयोग से शरीर अविकसित, ठिगना, थुल-थुल, अधिक वजन ढ़ीला-ढ़ाला, मोटापा, माँसपेशियाँ अविकसित ढीली-ढाली, त्वचा खुरदरी

झुर्रीदार, रूक्ष व पीले रंग की, अंग-विन्यास बेढंगा, थका-हारा, कंधे झुके हुए, छाती सपाट तथा सिकुड़ी हुई, उभरा उदर, झुका सिर, चमकरहित खुरदरे रूक्ष बाल, कांतिहीन उदासीन चेहरा, अन्दर धँसी कालिमा-वृत्त-युक्त आँखें, पीले-काले होंठ, नस-नाड़ियाँ उभरी हुई, दाँत पीले और गंदे, स्वभाव में भीरुता, हतोत्साह, उदासीनता, हिंसा, घबराहट, थकान, असहिष्णुता अन्यमनस्क, विक्षुब्ध निद्रा, कोष्ठबद्धता, पाचन क्रिया अव्यवस्थित, अजीर्ण, रोग-प्रतिरोग क्षमता की कमी आदि अनेक रुग्ण एवं विक्षिप्त लक्षण दीखते हैं। व्यक्ति हमेशा सुस्त, चिन्तित, तनाव-पूर्ण तथा उत्तेजित रहता है। अवैज्ञानिक आहार से जीवन भी अवैज्ञानिक हो जाता है। अवैज्ञानिक आहार से सभी संस्थानों के कार्य अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। वे निर्बल हो जाते हैं। वैज्ञानिक जीवन जीवन्त उद्देश्य एवं ज्ञान से परिपूर्ण होता है। Scientific life is systematic and sensefull living.

पोषण:—पोषण के द्वारा ही शरीर के समस्त कार्य सुसंचालित होते हैं। ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी अपनी क्रियाशीलता एवं क्षमता बनाए रखने के लिए, अपने विकास-वृद्धि, पुनर्निर्माण एवं अस्तित्व के लिए आवश्यक भोज्य पदार्थों को विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा ग्रहण करते हैं। इन सम्मिलित प्रक्रियाओं को हम पोषण कहते हैं। इस प्रकार से पोषण का अर्थ बहुत ही व्यापक है। हम यहाँ जीवन के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता होती है, उसकी चर्चा करेंगे। कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज लवण, विटामिन जल तथा आक्सीजन पोषण के आवश्यक तत्त्व हैं। इन्हें पोषक तत्त्व भी कहा जाता है।

स्वास्थ्य :—स्वास्थ्य का संबंध अस्तित्व से है। सिर्फ शरीर का स्वास्थ्य, स्वास्थ्य नहीं है बल्कि स्वास्थ्य में बहुत ही विराट् अर्थ सन्निहित है। शरीर मन एवं आत्मा के मध्य का संतुलन व्यक्तिगत स्वास्थ्य; व्यक्तिगत स्वास्थ्य एवं समाज के मध्य का संतुलन सामाजिक स्वास्थ्य; समाजिक स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय स्वास्थ्य एवं ब्रह्माण्ड के मध्य का संतुलन ब्रह्माण्डीय स्वास्थ्य कहलाता है। प्रारम्भ होता है शरीर के स्वास्थ्य से। मंजिल है ब्रह्माण्ड का स्वास्थ्य। वैज्ञानिक आहार से उपलब्ध पोषण का सीधा सम्बन्ध

शारीरिक स्वास्थ्य से है, । शरीर के स्वास्थ्य का सीधा सम्वन्ध मन से तथा मन के स्वास्थ्य का सीधा सम्वन्ध आत्मा से है। आत्मा केन्द्र है शरीर परिधि है। ये सभी अन्त: सम्वन्धित हैं। जव आदमी आत्मस्थ अर्थात आत्मावान होता है, तभी वह स्वस्थ होता है। जव मन विक्षुब्ध होता है उसमें तरंगें ही तरंगें होती हैं, तव आप शरीर से स्वस्थ होते हुए भी अस्वस्थ होते हैं। जव मन शान्त होता है तरंगे नहीं रह जाती, तभी आत्मबोध होता और स्वास्थ्य की घटना घटित होती है। यह उच्चतम स्वास्थ्य (superme health) की स्थिति होती है। आज के प्रतिस्पर्द्धा एवं तनाव के युग में स्वास्थ्य स्वप्नवत हो गया है। स्वास्थ्य एक आत्मानुभूति है जिसका अहसास हो सकता है। स्वास्थ्य एक मस्ती है जो हमें घेर कर आवृत्त कर लेती है। जिसकी दिव्यता चेहरे पर प्रफुल्लता के रूप में झलकती है। स्वास्थ्य का मापदंड नहीं होता, न इसकी व्याख्या हो सकती है। यह अव्याख्येय अनुभूति है जिसे जाना जा सकता है लेकिन कहा नहीं जा सकता स्वास्थ्यअनुभूति को शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करने पर शब्द ओछे पड़ जाते हैं। फिर भी उस दिव्य अनुभूति को निम्न शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है :—

(1) स्वस्थ व्यक्ति का जीवन कथित समय से अतीत होता है। कलेण्डर के वरसों में नहीं जीता वल्कि जैविक कलेण्डर या वर्ष (Biological years) के अनुसार जीवन जीता है। समय उसे बूढ़ा नहीं वना सकता। वह समय के पार हो जाता है। (2) स्वस्थ व्यक्तियों की रक्तवाहिनियाँ हृदय, गुर्दे, फेफड़े, यकृत आदि वायटल अंग सदैव स्वस्थ एवं सशक्त होते हैं। (3) भूख अच्छी लगती है। जैविक आहार जैसे अंकुरित अनाज, कच्ची फल व सब्जियाँ, विना मिर्च-मसाले वाले आहार अमृत तुल्य लगता है तथा इसे खाने के वाद असीम तृप्ति व आनन्द की अनुभूति होती है। (4) चटपटे या मीठे या कथित स्वादिष्ट आहार देख कर या उसके संवंध में विचार कर भूख लगे तो वह भूख झूठी तथा शरीर को रुग्ण समझें। (5) अच्छा पाचन, अवशोषण, सात्म्यीकरण, विजातीय विषाक्त पदार्थों का अच्छी तरह निष्कासन, आठ घंटा गहरी नींद, हृदय एवं स्वस्थ फेफड़े, सही स्वास्थ्य की निशानी है।

सौन्दर्य :—वैज्ञानिक आहार का सम्बन्ध स्वास्थ्य से तथा स्वास्थ्य का सीधा सम्बन्ध सौन्दर्य से है। सौन्दर्य की अनुभूति भी दो प्रकार से होती है। व्यक्तिगत तथा सार्वभौम सौन्दर्य बोध। व्यक्तिगत सौन्दर्य बोध की स्थिति में एक ही व्यक्ति या वस्तु किसी को सुन्दर लग सकती है तो किसी को कुरूप। व्यक्तिगत सौन्दर्य बोध का विकास व्यक्ति, जाति एवं सामाजिक मान्यताओं पर आधारित है। जैसे किसी समाज या जाति में मोटे होंठ, घुटे बाल, साँवला रंग सुन्दरता का मापदंड है। किसी अन्य समाज में पतले होंठ, लम्बे बाल, गोरा रंग सुन्दरता का मापदंड माना जाता है। सार्वभौम सौन्दर्य नैसर्गिक होता है जो किसी विशेष परिस्थिति या मान्यताओं से परिवर्तित नहीं होता। नैसर्गिक सार्वभौम सौन्दर्य का सीधा सम्बन्ध आत्मा से है। आत्मा चूँकि केन्द्र है इसलिए आत्मसौन्दर्य का बोध चेहरे एवं शरीर के हाव-भावों से प्रकट होता है। वैज्ञानिक आहार के प्रयोग से स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य निर्द्वन्द्व, निर्भय, निर्लिप्त पुष्प की तरह खिलता है। अपने सौरभ से आस-पास एवं सारी सृष्टि को सुरभित कर देता है। वैज्ञानिक आहार के प्रयोग से ही सार्वभौम नैसर्गिक सौन्दर्य प्रस्फुटित होकर खिलता है। लिपस्टिक, पाउडर आदि कृत्रिम साधनों का संबंध सौन्दर्य से नहीं है शृंगार प्रसाधन नैसर्गिक सौन्दर्य को ढँक कर सुन्दरता को विकृत विरूप एवं कुरूप बना देते हैं। ओठ की नैसर्गिक लालिमा होती है। उसे लाल-पीले लिपिस्टिक लगा कर जोकर बनने का क्या तुक है ? उससे नारी आडम्बरी एवं खोखली दिखाई देती है। उसकी गरिमा समाप्त हो जाती है। प्रकृति ने हर अंग का एक विशिष्ट रंग दिया है। यह निष्प्रयोजन नहीं है। प्रायः देखा गया है कि महिलाऐं आत्मा, मन एवं शरीर के तल पर कुरूपता एवं हीनग्रंथियों के कारण बाहर से सजाने की ज्यादा कोशिश करती हैं। निसर्ग ने जैसा दिया उसे धन्यवाद के साथ स्वीकर करने से ही सौन्दर्य निखरता है। नैसर्गिक सौन्दर्य को बनाए रखने के लिए नैसर्गिक जैविक वैज्ञानिक आहार का प्रयोग करें। आहार को तल भून कर एवं मसाले द्वारा जितना कुरूप एवं विकृत करके खायेंगे, उतना हमारा सौन्दर्य भी कुरूप एवं विकृत हो जायेगा। अवैज्ञानिक मृत आहार ही सौन्दर्य का दुश्मन है।

2 | आहार का विज्ञान

आहार से हमें पोषण मिलता है। शरीर, मन एवं आत्मा के स्वास्थ्य एवं विकास के लिए श्रेष्ठ पोषणयुक्त आहार की आवश्यकता होती है। आहार की गुणवत्ता (पोषण-क्षमता) उसमें उपलब्ध पोषक तत्त्वों पर निर्भर है। शरीर की आवश्यकतानुसार आहार का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

(1) **शरीर निर्माणकारक आहारः**—शरीर का सुन्दर, स्वस्थ एवं सुडौल निर्माण, ऊतकों में मेटाबॉलिज्म के कारण हुई टूट-फूट की मरम्मत व सृजन (एनाबॉलिज्म) का कार्य प्रोटीनयुक्त आहार करते हैं। दूध तथा दूध से बने पदार्थ, अण्डा, माँस, मछली, अंकुरित अनाजों में सोयाबीन, मूँगफली, मूँग, तिल, चना, गेहूँ आदि के अंकुरण श्रेष्ठ प्रोटीन के उदाहरण हैं। अण्डा, माँस, मछली का पूरक दूध व अंकुरित अनाज हैं।

(2) **ऊर्जादायक आहारः**—कार्बोहाइड्रेट, स्टार्च तथा वसायुक्त आहार ऊर्जा एवं शक्ति प्रदान करते हैं। अनाज एवं तैल-बीज तथा उनका अंकुरित जैसे—मूंगफली, तिल, राई, गेहूं, मक्का, बाजरा, गुड़, शहद, मीठे फल एवं सब्जियाँ, मक्खन, घी, तेल, दाल इत्यादि।

(3) **रोग प्रतिरोधक शक्तिसम्वर्द्धक आहार :**—विभिन्न विटामिन एवं खनिज लवणों से युक्त आहार विभिन्न रोगों से हमारी रक्षा करते हैं। ये स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्द्धन तथा रोग निवारण में उपयोगी हैं। सब प्रकार के मौसम अनुसार मिलने वाले ताजे फल एवं ताजी सब्जियाँ, अंकुरित अनाज इसके उदाहरण हैं।

(4) **मानसिक शक्ति प्रदान करने वाले आहार :**—दूध, मक्खन, छाछ, दही, अंकुरित मूँग, मोठ, चना, गेहूँ, किशमिश, खजूर, मुनक्का इत्यादि।

(5) **आत्म अनुसंधान हेतु आहार :**—शुद्ध ऑक्सीजन, जल, अंकुरित अनाज, कंद, फल, मूल, दूध, किशमिश, मुनक्का इत्यादि।

रासायनिक मिश्रण के अनुसार आहार का वर्गीकरण जैविक, कार्बनिक वा आर्गेनिक आहार :—इनमें कार्बन सम्मिलित होता है तथा इनका ऑक्सीकरण अच्छी तरह होता है। ये विजातीय पदार्थ का कम निर्माण

करते हैं। ये शरीर के ऊतकों के ज्यादा अनुकूल होते हैं। इनकी रासायनिक संरचना तथा शारीरिक ऊतकों की कोशिकाओं की रासायनिक संरचना में काफी समानता है। शरीर की टूट-फूट एवं मरम्मत (wear & tear) का काम अच्छी तरह करते हैं।

आहार को अग्नि पर बिना पकाये अर्थात् ताजा कच्चा खाने से आर्गनिक रूप में जैविक तत्त्व काफी मात्रा में मिल जाते हैं। आहार को पकाने से रासायनिक प्रतिक्रिया के कारण अनेक अघुलनशील अकार्बनिक तत्त्वों का निर्माण होता है, जिसका सात्म्यीकरण अच्छी तरह नहीं हो पाता है। कार्बनिक आहार सजीव तथा सप्राण होते हैं।

(2) अजैविक, निष्प्राण, अकार्बनिक या इनआर्गेनिक आहार :—ऐसे आहार में कार्बन सम्मिलित नहीं होता है तथा इनका आक्सीकरण भी अच्छी तरह नहीं हो पाता है। अकार्बनिक रूप में कोई भी आहार शरीर की कोशिका एवं तन्तुओं के अनुकूल नहीं पड़ता है। कार्बनिक आहार शरीर के लिए सजातीय है, वहीं अकार्बनिक आहार शरीर के लिए विजातीय सिद्ध होता है। नमक, अकार्बनिक आहार का प्रत्यक्ष उदाहरण है। यह निर्जीव आहार है।

आहार का वर्गीकरण आहार में उपस्थित अम्लीय तथा क्षारीय तत्त्वों की मात्रा पर निर्भर करता है। क्षारीय मूलक तत्त्व (केट आयन्स) हैं—सोडियम, पोटाशियम, लोहा इत्यादि। सल्फर, फॉस्फोरस, क्लोरिन, विभिन्न प्रकार के एसिड अम्लीय-मूलक (अनायन्स) तत्त्व हैं।

स्वास्थ्य संवर्द्धक, स्वास्थ्य संरक्षक तथा रोगनिवारक क्षारीय आहार :—दूध, अंकुरित अनाज (अन्न, दलहन तथा तेलहन ग्रुप के सभी अनाज), ताजी हरी सब्जियाँ तथा ताजे फल, छिलकायुक्त दाल, कणीयुक्त चावल, चोकर समेत आटे की रोटी क्षारमय आहार हैं। क्षारमय आहार में क्षारीय मूलक तत्त्व प्रचुरता से पाए जाते हैं।

क्षारीय आहार का वर्गीकरण

(1) शीघ्र विष-निष्कासक :—यह आहार रुग्णावस्था में दिया जाता है। इन आहारों से शरीर से विष-निष्कासन की क्रिया तीव्र होती है। जीर्ण रोगों में उपवास कराने के पूर्व तथा बाद में इस प्रकार के आहार लेने से कमजोरी महसूस नहीं होती है। प्रायः मरीज को उपवास नहीं

कर सकते हैं, वे शीघ्र विष निष्कासक आहार पर कुछ दिनों तक रह कर स्वस्थ हो सकते हैं। नीबू, संतरा, आँवला आदि खट्टे फल, पूर्णान्न का पानी, चावल का धोवन, रेजुवेलक एन्जाइमेटिक गेहूं का पानी, पेठा, लौकी तथा ककड़ी तथा इन सब्जियों के रस।

(2) **विष-निष्कासक एवं पौष्टिक आहार** :—ऐसे आहार का उपयोग रोगी एवं स्वस्थ दोनों कर सकते हैं। ऐसा आहार शरीर को पोषण देने के साथ-साथ विजातीय पदार्थों के निष्कासन का कार्य भी करता है। छाछ, दही, गाजर, सेव, नाशपाती, अनन्नास, चुकन्दर, शलगम, पपीता आदि आहार इस वर्ग में आते हैं। इन सब्जियों तथा फलों के रस भी इस वर्ग में आते हैं तथा बेहद उपयोगी हैं।

(3) **पूर्ण पौष्टिक क्षारीय आहार**:—इस वर्ग के आहार क्षारीय के साथ-साथ पूर्ण पौष्टिक होते हैं। दूध, केला आम, शकरकन्द, आलू, बिल्व आदि मीठे फल, कन्द, मूल, अंकुरित अनाज तथा इनके दूध इस वर्ग के सदस्य हैं।

मात्र क्षारीय आहार से दोनों तत्त्वों की पूर्ति समानुपात में हो जाती है।

रोग पैदा करने वाले अम्लीय आहार :—इस वर्ग के आहार प्रबल अम्लीय होने के कारण रोग पैदा करते हैं। मांस, मछली, अंडा, मैदा तथा बेसन से बने खाद्य पदार्थ, तले, भुने चट-पटे आहार, फलों में बेर, इमली, इत्यादि, बिस्कुट, ब्रेड, जेम, जेली, रंगीन खाद्य पदार्थ, सॉफ्ट ड्रिंक्स, शराब, तम्बाकू इत्यादि कन्फेक्शनरी, संश्लेषित तथा मादक खाद्य पदार्थ अम्लीय आहार हैं। इन आहारों का प्रयोग न करना ही बुद्धिमानी है। यदि करना आवश्यक ही हो तो वैसी परिस्थिति में कम से कम मात्रा में करें।

हमारे शरीर के स्वस्थ निर्माण एवं विकास के लिए 75 से 80% तक क्षारीय आहार तथा 20 से 25% तक अम्लीय आहार की आवश्यकता होती है। हमारे आहार में क्षार एवं अम्ल तत्त्व समानुपात (80 : 20) रहने से ही हम स्वस्थ रहते हैं। क्षार तत्त्व आहार धनात्मक (Positive) तथा अम्लयुक्त आहार ऋणात्मक कहलाते हैं। इन तत्त्वों के संयोग से शरीर की जैव विद्युत चुम्बकीय जीवनी-शक्ति का निर्माण होता है। आहार का अनुपात सम्यक होने से जैव विद्युत चुम्बकीय जीवनी-शक्ति का संवर्द्धन होता है और हम स्वस्थ रहते हैं।

3 | आहार का वैज्ञानिक विश्लेषण

किसी प्रकार के आहार की उपयोगिता उस आहार से मिलने वाले जीवन संरक्षक तत्त्वों के ऊपर निर्भर करती है। जीवन संरक्षक तत्वों द्वारा ही हमारे शरीर का निर्माण हुआ है। इन तत्त्वों का हमारे शरीर में एक निश्चित् अनुपात होता है जो निम्न प्रकार से हैं—

क्र.	जीवन संरक्षक तत्त्व	प्रतिशत मात्रा	घटक
1.	जल	60 से 70%	(1) हाइड्रोजन (H_2) (2) आक्सीजन (O_2)
2.	प्रोटीन	10%	(1) कार्बन (C) (2) हाइड्रोजन (H_2) (3) आक्सीजन (O_2) (4) नाइट्रोजन (N_2) (5) सल्फर (S)
3.	बसा (Fat)	7.5%	(1) कार्बन (C) (2) हाइड्रोजन (H_2) (3) आक्सीजन (O_2)
4.	कार्बोहाइड्रेट	5%	(1) कार्बन (C) (2) हाइड्रोजन (H_2) (3) आक्सीजन (O_2)
5.	खनिज तत्त्व	3%	(1) कैल्शियम (Ca) (2) क्लोरिन (Cl_2) (3) फ्लोरिन (F_2) (4) आयोडिन (I_2) (5) लोहा (Fe) (6) मैग्नेशियम (Mg) (7) फास्फोरस (P) (8) पोटैशियम (K) (9) सोडियम (Na)
6.	विटामिन	3 से 4%	(1) विटामिन ए (2) विटामिन बी ग्रुप (3) विटामिन सी (4) विटामिन डी (5) विटामिन ई (6) विटामिन के

विटामिन कार्बन, हाइड्रोजन, ग्राक्सीजन, नाइट्रोजन इत्यादि तत्त्वों एवं खनिज लवणों के मिलने से बनता है। 160 पौण्ड वजन वाले व्यक्ति में उपर्युक्त तत्त्वों की मात्रा निम्न होती है—

1. ग्राक्सीजन (O_2) 89 पौण्ड
2. कार्बन (C) 45 पौण्ड
3. हाइड्रोजन (H_2) 15 पौण्ड
4. कैल्शियम (Ca) 6 पौण्ड
5. नाइट्रोजन (N_2) 2 पौण्ड
6. फास्फोरस (P) 2 पौण्ड
7. क्लोरिन (Cl_2) $1\frac{3}{4}$ पौण्ड
8. सल्फर (S) $1\frac{3}{4}$ ग्रौन्स
9. फ्लोरिन (F_2) $3\frac{3}{4}$ ग्रौन्स
10. पोटैशियम (K) $3\frac{3}{4}$ ग्रौन्स
11. सोडियम (Na) 3 ग्रौन्स
12. मैग्नेशियम (Mg) $2\frac{1}{2}$ ग्रौन्स
13. लोहा (Fe) 2 ग्रौन्स
14. सिलिकॉन (Si) $1\frac{1}{2}$ ग्रौन्स
15. मैगनीज (Mn) $\frac{1}{2}$ ग्रौन्स
16. ग्रायोडिन (I_2) तथा ग्रन्य तत्त्व सूक्ष्म मात्रा में।

मानव शरीर दिव्य है क्योंकि उसमें चिन्मय प्रभु विराजमान है। शरीर की उपयोगिता चिन्मय चैतन्य के उद्घाटन में ही है। जब कोई बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, मीरा की तरह ग्रपने को उद्घाटित करता है तब यह शरीर मन्दिर बन जाता है। मूर्छित एवं बेहोश लोगों का शरीर कचरा घर के सिवा है क्या? इस शरीर की मोल कितनी? रसायन शास्त्र की भाषा में हमारा शरीर कार्बन, हाइड्रोजन, ग्रॉक्सीजन खनिज लवण तथा विटामिनों का मात्र समानुपातिक समिश्रण है। एक खोज के अनुसार सत्तर कि. ग्रा. वजन वाले व्यक्ति में दस बार साबुन बनाने योग्य चर्बी, नौ हजार पेंसिल बनाने लायक कार्बन, दो हजार माचिस की तिल्लियाँ बनाने योग्य फॉस्फोरस, पाँच तरणतालों को रोगाणुमुक्त करने लायक क्लोरिन, एक कील बनाने योग्य लोहा, एक मुर्गीघर का पुताई करने योग्य चूना, पाँच ईन्च नेवी गोला विस्फोट करने लायक ग्लिसरिन तथा एक कुत्ते का जूं नष्ट करने लायक सल्फर होता है आत्मा के सौन्दर्य का ग्राकर्षण? ग्रनुभव किया है? वह आता है सम्यक नैतिक आहार से।

4 | श्रेष्ठ आहार : वायु (ऑक्सीजन)

वायु, आहार के साथ-साथ जीवन भी है। अन्य आहार तत्त्वों के बिना कुछ दिनों तक आप जीवित रह सकते हैं लेकिन वायु के बिना एक मिनिट भी जीवित रहना मुश्किल हो जाता है। आज अन्य आहारों की तरह वायु में भी मिलावट होने लगी है। जब कल कारखाने कम थे, उस समय वायु में अशुद्धियाँ नाम मात्र की थीं। कल कारखानों से उठते विभिन्न विषैले धुँओं, बढ़ती जनसंख्या, जैवीय पदार्थों के विघटन, धूलकण, विविध रोगाणुओं, पेट्रोल, कोयला, लकड़ी इत्यादि ईंधनों के जलने से उत्पन्न कार्बन डाय ऑक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड, हाइड्रोकार्बन, सल्फर डाइऑक्साइड इत्यादि विषैली गैसों की मात्रा बढ़ जाती है। औद्योगिक शहरों के वायुमण्डल में सिलका, एल्युमुनियम, सिलीकेट, कार्बन, सोडियम क्लोराइड, मैग्नेशियम, कपास, लिनन, ऊन के कण मिले होते हैं। श्वास के सहारे इनके डस्ट फेफड़ों में प्रवेश कर अनेक रोग उत्पन्न करते हैं। जिस वायुमण्डल में ऑक्सीजन की मात्रा ज्यादा होती है वहाँ की वायु शुद्ध होती है। पहाड़ी जगहों का वायुमण्डल सबसे शुद्ध तथा औद्योगिक शहरों का वायुमण्डल अत्यधिक अशुद्ध होता है।

प्रमुख अन्तर निम्न है :—

गैस		शुद्ध वायु		अशुद्ध वायु
ऑक्सीजन (O_2)	$>$	20.95% से अधिक	$<$	16.52% से भी कम
नाइट्रोजन (N_2)		78.08%		73.08%
कार्बनडाइऑक्साइड(Co_2)		0.03% से भी कम		4.50% से भी अधिक
अन्य गैसें		0.45% से भी कम		0.95% से भी अधिक
जल वाष्प/धूल/कीटाणु		ऋतु अनुसार		ऋतु अनुसार

शुद्ध वायु श्रेष्ठ आहार है। वायु के अभाव में जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। जो कुछ भी हम खाते हैं उसका ऊर्जा में रूपान्तरण

वायु ऑक्सीजन द्वारा ही होता है । प्रत्येक जीवित कोशिका में ऊर्जा का वितरण, स्थानान्तरण तथा निर्माण ऑक्सीजन द्वारा ही होता है । इसकी कमी से कोशिकाएँ निष्प्राण एवं नष्ट होने लगती हैं । विशेषतया स्नायु संस्थान की कोशिकाऐं ऑक्सीजन के प्रति ज्यादा संवेदनशील होती हैं। शुद्ध ऑक्सीजन नहीं मिलने से हमारा चिन्तन, विचार एवं स्वास्थ्य सभी कुछ बुरी तरह दुष्प्रभावित होता है। आयुर्विज्ञान चिकित्सकीय मौत (क्लिनिकल डेथ) तभी मानता है जब मस्तिष्क को ऑक्सीजन मिलना पूर्णरूपेण बन्द हो जाता है। ऊतकों द्वारा गैस का विनिमय अर्थात् अन्तर्कोशीय पदार्थों द्वारा ऑक्सीजन का उपभोग तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का निष्कासन ऊतक श्वसन कहलाता है। यह एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें श्वसन वर्णक तथा श्वसन एन्जाइम भाग लेते हैं।

किसी प्रकार का आहार ऑक्सीजन द्वारा ही हमारे लिए उपयोगी हो पाता है इसीलिए ऑक्सीजन श्रेष्ठतम आहार है। कुछ योगीजन सिर्फ ऑक्सीजन खाकर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। उन्हें उस विज्ञान का पता है कि कैसे ऑक्सीजन को सीधे ऊर्जा में रूपान्तरित किया जाता है। वर्तमान में भी अनेक संत साध्वी हैं जो विगत 30-35 साल से वायु और पानी के सिवा किसी प्रकार का अन्य आहार नहीं लेते हैं। वे सीधे पंच-तत्त्वों से अपना आहार ग्रहण करते हैं। अकस्मात उन्हें वह सूत्र हाथ लग गया है। लेकिन वह सूत्र अभी तक सार्वभौम नहीं बन पाया है। हो सकता है कि आगे आने वाली शताब्दियों में उच्चस्तरीय चेतना के अवतरण के साथ यह सूत्र सार्वजनीन बन जाय। सामान्य स्थिति में भी शरीर में जितनी ऑक्सीजन की खपत बढ़ेगी, उसी अनुपात में आहार से ऊर्जा प्राप्त होगी। एक-एक कोशिका जीवन्त प्राणवान बनेगी। ऑक्सीजन का उपयोग करना लोहार अच्छी तरह जानते हैं। थोड़े से कोयले में धौंकनी द्वारा भरपूर ऑक्सीजन देकर बहुत सारे कार्य निकाल लेते हैं। हम जितना कार्बोज खाते हैं, ऑक्सीजन के अभाव में उसका उपयोग अच्छी तरह नहीं कर पाते हैं। शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा जितनी हम बढ़ायेंगे, उतनी ही शरीर में विषाक्त गैस तथा विजातीय पदार्थों की मात्रा कम होगी। एक-एक कोशिका चैतन्य

ऊर्जावान बनेगी। कोशिकाओं में ऊर्जा की उत्पत्ति एवं संग्रह का कार्य कोशिका की प्रमुख संरचना "माइटोकॉन्ड्रिया" द्वारा होता है। इसे कोशिका का पावर हाउस भी कहते हैं। कोशिका में ऊर्जा की उत्पत्ति दो हिस्सों में होती है। प्रथम ग्लाइकोलिसिस की क्रिया में ग्लूकोस का एक अणु विखंडित होकर पाइरुविक एसिड का दो अणु बनता है। दूसरी क्रिया क्रेब्स चक्र में पाइरुविक एसिड विखंडित होने से कार्बन-डाइ-ऑक्साइड तथा जल बनता है। ऊर्जा की उत्पत्ति होती है। ग्लूकोस के ऑक्सीकरण से भी प्रबल ऊर्जा-युक्त ए. टी. पी. (एडेनोसिन ट्राइफॉस्फेट) बनता है। ए. टी. पी. न्यून ऊर्जा के ए. डी. पी. (एडेनोसिन डाइ फॉस्फेट) में रूपान्तरित होने से जो ऊर्जा मिलती है, वह कोशिकाओं के विभिन्न कार्यों में काम आती है। ए. डी. पी. ए. टी. पी. में रूपान्तरित होकर कोशिकाओं के सूत्र-कणिका (माइटोकाँड्रिया) में जमा रहता है जो आवश्यकतानुसार ऊर्जा प्रदान करता है।

रक्त-संचार में रक्त द्वारा ऊतकों व कोशिकाओं को ऑक्सीजन दी जाती है तथा चयापचय क्रिया से बनी CO_2 ली जाती हैं। यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है। इसके ठीक विपरीत क्रिया फेफड़े में होती है। वहाँ रक्त श्वास-वाहिकाओं से ऑक्सीजन लेता है तथा कार्बन डाइ ऑक्साइड देता है जो प्रश्वास से बाहर फेंक दी जाती है। श्वास-प्रश्वास में विभिन्न गैसों की प्रतिशत मात्रा निम्न होती है :—

श्वास की स्थिति	ऑक्सीजन (O_2)	कार्बन डाइ-ऑक्साइड (CO_2)	नाइट्रोजन तथा अन्य गैसें (N_2)
अन्दर ली गई श्वास	20.94	0.03	79.03
बाहर छोड़ी गई प्रश्वास	16.3	4.0	79.7
श्वास बाहिकाओं में उपस्थित वायु	14.2	5.2	80.6

रक्त की (40 mm Hg) की अपेक्षा श्वास-वाहिकाओं में ऑक्सीजन का दाब (100–110 mm Hg) अधिक होने से फंफड़े के वायु में से ऑक्सीजन रक्त में प्रवेश करता है। रक्त में CO_2 का दाब 47 mm Hg श्वास वाहिकाओं के दाब 40 mm Hg से अधिक होता है, फलतः कार्वनडाइऑक्साइड (CO_2) श्वास वाहिकाओं द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है जो प्रश्वास द्वारा वाहर निकल जाता है। वातावरण के वायु का दाव 760 mm Hg होता है जिसमें सिर्फ ऑक्सीजन का 20.94% अर्थात् 159 mm Hg दाब होता है। फेफड़ों में रक्त पहुंच कर ऑक्सीजन सोख ली जाती है। यह काम रक्त का हिमोग्लोबिन करता है जो ऑक्सीजन को सोख कर ऑक्सीहिमोग्लोविन बन जाता है। सामान्यतः 96% Hb (हिमोग्लोविन) HbO_2 (ऑक्सीहिमोग्लोविन) में परिवर्तित होता है। यही कारण है कि रक्ताणुओं में रक्तप्लाज्मा की अपेक्षा 60 गुणा अधिक ऑक्सीजन होता है। इसी से ऊतकों में गैसीय विनिमय के लिए भरपूर ऑक्सीजन मिल जाता है। रक्त प्लाजमा में ऑक्सीजन के उच्च आंशिक दवाब के कारण ऑक्सीजन ऊतकों में (निम्न आंशिक दवाव के कारण) जाता है। ऊतकों द्वारा ऑक्सीजन ग्रहण करते ही HbO_2 Hb में परिवर्तित हो जाता है। चयापचय के कारण बनने वाली CO_2 रक्त में चली आती है जो फेफड़ों द्वारा वाहर निकाल दी जाती है।

फेफड़ों की जैव-क्षमता :—फेफड़ों की पूर्ण जैव-क्षमता सामान्यतः 4500 घ. से. मी. होती हैं। फेफड़ों की जैव-क्षमता प्रशिक्षण, आयु, लिंग तथा उम्र के अनुसार बढ़ाई जा सकती है। श्वास संबंधी कुछ रोगों में फेफड़ों की जैव-क्षमता कम हो जाती है। प्राणायाम तथा दीर्घ श्वास-प्रश्वास व्यायाम से इसे बढ़ाया जा सकता है। कुछ असाधारण ऐथलिटों में फंफड़ों की जैव-क्षमता बढ़कर 6000 से 7000 घन से. मी. तक पहुँच जाती है। प्रायः व्यक्ति के फेफड़ों में 2500 घन से. मी. वायु होती है, इसमें 1500 घ. से. मी. सप्लीमेंटल या पूरक हवा है, जिसे प्रयास द्वारा निकाला जा सकता है। शेष बचे हुए 1000 घन से.मी. हवा को अवशिष्ट (रेसीडुअस) हवा कहते हैं। श्वास-प्रश्वास द्वारा आती-जाती हवा 500 घन से. मी. होती है। यह हवा

ज्वार-भाटे की तरह आती-जाती है। इसे 'टाइडल एयर' कहते हैं। श्वास-वाहिकाओं की क्षमता बढ़ाने से प्रयत्नपूर्वक 1500 घ. से. मी. हवा बल-पूर्वक अन्दर ली जा सकती है। इसे सम्पूरक या कम्पलीमेंटल हवा कहते हैं। इस प्रकार फेफड़ों की कुल जैव क्षमता :—

सप्लीमेंटल हवा + रेसीडुअस हवा + टाइडल हवा + कम्पलीमेंटल हवा

1500 + 1000 + 500 + 1500 = 4500 घ.से.मी.

सामान्यत: स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों के तथा वृद्धों की अपेक्षा युवकों के फेफड़ों की कुल जैव-क्षमता अधिक होती है। किसी-किसी में यह क्षमता 5 से 7 हजार घन से. मी. तक होती है।

फेफड़ों में स्थित अवशिष्ट (रेसीडुअस) वायु के कारण ही फेफड़े जल में नहीं डूबते हैं। गर्भस्थ शिशु के फेफड़े पानी में डूब जाते हैं। जन्म के बाद श्वास लेने के साथ ही फेफड़ों में अवशिष्ट वायु घुसती है। फेफड़ों के आवरण प्लूरा के क्षतिग्रस्त या नष्ट हो जाने से उसमें वायु घुस जाती है जिसका दबाव फेफड़ों के अन्दर के दबाव के बराबर होता है जिससे फेफड़ों के कार्य रुकने लगते हैं।

श्वसन-क्रिया का नियंत्रण मेड्यूला ऑबलान्गेटा में स्थित श्वसन-केन्द्र द्वारा होता है। यहाँ स्नायु-कोशिकाओं का वृहद् जाल है। जैसे ही खून में कार्बनडाईऑक्साइड की मात्रा बढ़ती है, श्वास केन्द्र को आवृत्त किये रक्त में भी CO_2 की मात्रा बढ़ जाती है। श्वसन-केन्द्र उत्तेजित होता है, फलत: हम श्वास लेते हैं। श्वास के साथ फेफड़े फैलने से वेगस स्नायु उत्तेजित होती है जिसका प्रेषण श्वसन केन्द्र को होता है; फलत: प्रश्वास द्वारा कार्बनडाइऑक्साइड निकल जाता है। इस प्रकार निरंतर श्वास-प्रश्वास की क्रिया चलती है। डिस्पनोइया आदि रोगों की स्थिति में रक्त में पहले से कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा ज्यादा होने से श्वसन-केन्द्र बार-बार उत्तेजित होकर श्वसन-क्रिया तीव्र हो जाती है। श्वसन-केन्द्र की उत्तेजना विभिन्न औषधियों तथा ऑक्सीजन की कमी से होती है। श्वसन-केन्द्र का नियंत्रण मस्तिष्क के हाइपोथैलमस केन्द्र द्वारा होने से यह क्रिया ऐच्छिक भी होती है।

फेफड़ों की जैव-क्षमता बढ़ाने अर्थात् शरीर में ऑक्सीजन आहार का उपयोग बढ़ाने के कुछ प्रयोग :—

(1) धीरे-धीरे श्वास निकालें। पूर्णरूपेण श्वास निकल जाने के बाद 2 सेकण्ड तक रोकें। पुनः धीरे-धीरे श्वास लें। छाती फुलाएं। पूर्णरूपेण श्वास लेने के बाद 2 सेकण्ड श्वास को रोकें। एक समय में 5 से 10 बार तक करें। फिर शरीर, श्वास एवं मन को शिथिल होने दें। इस क्रिया को खाली पेट लेट कर, खड़े होकर, बैठ कर तथा चलते हुए करें। खाली पेट जब भी समय मिले, करें। फेफड़ों की जैव-क्षमता बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के प्राणायाम तथा दीर्घ श्वसन-प्राणायाम भी करें। (इसके लिए लेखक की प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग (वैज्ञानिक प्रयोग) पुस्तक का अध्ययन करें।)

5 | जल

जल की उपयोगिता सर्वविदित है। जल के अभाव में इस सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसीलिए तो कहा गया है—"जीविनां जीवनं जीवो जगत 'सर्वन्तुतन्मयम्' "पानीयं प्राणिनां प्राणा विश्वमेवचतन्मयम्" सचमुच में जल विश्व के समस्त प्राणियों का प्राण है। इसका विशद वर्णन विभिन्न पौराणिक (अथर्ववेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, मनुस्मृति आदि) ग्रन्थों में मिलता है। जल (ज=जीवन+ल=लय), का संबंध जीवन के प्रादुर्भाव से लेकर अंत (मृत्यु) तक है। जल द्वारा शरीर में मुख्य रूप से निम्न कार्य सम्पादित होते हैं :—

1- शरीर की सभी जैव-रासायनिक (Bio-chemical) प्रतिक्रियाओं का मुख्य उत्प्रेरक जल ही होता है।

- ऊतकों द्वारा नष्ट हुई तरलता (Loss of fluids from tissues) को पुनः स्थापित (replace) कर सामान्य बनाये रखता है।

- रक्त, पाचक रस, पित्त, पाखाना, पेशाब तथा अन्य बाह्य एवं अन्तःस्रावी ग्रंथियों के स्राव, परिवहन एवं निकासन का कार्य जल द्वारा ही होता है।

4- रक्त तथा लिम्फ परिवहन-तंत्र की तरलता (fluidity) को नियंत्रित रखता है ।

5- जल, शरीर में स्नेहन (Lubricant) का कार्य करता है। जैसे हृदयावरण के बीच पेरिनियम द्रव तथा फुफ्फुस-आवरण के बीच प्ल्युरल द्रव के रूप में स्नेहन का कार्य कर बाह्य आघातों से उनकी रक्षा करता है।

6- भोजन का घोल बना कर पचाने में जल अनुपान का कार्य करता है।

7- जल हमारे शरीर में विलायक (Solvent) तथा तनुकारक (diluent) द्रव के रूप में पाया जाता है ।

8- शरीर में चयापचय क्रिया के दौरान विष पदार्थो का निर्माण होता रहता है। यह टॉक्सिक मैटर शरीर से नहीं निकलने पर विभिन्न व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है, अतः इन विषाक्त पदार्थों को घुला कर बाहर निकालने का कार्य जल ही करता है।

9- शरीर को वातानुकूलित रखने, शरीर के आन्तरिक अंगों को परस्पर चिपकने से रोकने तथा शरीर के अन्दर इलेक्ट्रोलाइट अर्थात् आयनिक कंडक्टर के संवाहक का कार्य जल ही करता है।

10- शरीर का 70 प्रतिशत भाग पानी ही है, जिसमें कुल रक्त का 79 प्रतिशत, मस्तिष्क तथा माँसपेशियों का 80 प्रतिशत, तथा हड्डियों का 10 प्रतिशत पानी ही होता है। वयस्कों की अपेक्षा बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में शरीर में पानी की प्रतिशत मात्रा अधिक होती है।

प्रतिदिन शरीर में जल पहुँचने का स्रोत :—

1- सीधे पानी पीने से। (पानी छान कर तथा उबाल कर पीना चाहिये)

2- भोज्य पदार्थों द्वारा। जैसे दूध (87 प्रतिशत), हरी साग-भाजी (80 से 90 प्रतिशत), फल (70 से 80 प्रतिशत,) दाल (8 से 20 प्रतिशत) रोटी (35 प्रतिशत) आदि खाद्य पदार्थों से।

3- शरीरान्तर्गत-खाद्य पदार्थों की ऑक्सीकरण क्रिया द्वारा स्वतः पानी

का निर्माण होता है । जैसे शरीरान्तर्गत 100 ग्राम वसा जल कर 107.10 मि.ली., 100 ग्राम कार्बोहाइड्रेट जल कर 55.50 मि.ली. तथा 100 ग्राम प्रोटीन जल कर 41.30 मि.ली. जल देते हैं ।

शरीर में जल का संतुलनभार :—

सामान्यत : प्रतिदिन शरीर में उपलब्ध जल की मात्रा :—

जल पीने की मात्रा	1000 मि.ली
भोजन द्वारा प्राप्त जल की मात्रा	850 ,,
ऑक्सीकरण द्वारा प्राप्त जल की मात्रा	350 ,,
कुल प्राप्त जल की मात्रा	2200 मि.ली.

प्रतिदिन शरीर द्वारा उत्सर्जित जल की मात्रा :—

पेशाब द्वारा	1000 मि.ली.
पाखाने द्वारा	200 मि.ली.
वाष्प के रूप में (त्वचा तथा श्वास द्वारा)	1000 मि.ली.
कुल उत्सर्जित जल की मात्रा	2200 मि.ली.

आवश्यकता एवं परिस्थितियों के अनुसार उपलब्ध तथा उत्सर्जित जल की मात्रा घटती बढ़ती रहती है । पानी की विशेष आवश्यकता होने पर उसकी पूर्ति शरीर की माँग पर क्षुधा-तृप्ति द्वारा करते हैं । उपर्युक्त सिद्धान्तों के अनुसार हम देखते हैं कि जल का जीवन से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। प्राकृतिक चिकित्सा में जल को मूत्रल, दर्दनाशक, ज्वरहर, सूजननाशक, एण्टी-डायरिया, कीटाणुनाशक, एलर्जीरोधी, आर्त्तवोत्सारक, पित्तोत्सारक, मृदुरेचक, प्रतिविष, पीड़ाहर, अपरेचक, वमनकारक, स्वेदक, जीवाणुहन्ता, शामक, उपशामक, रोगाणुनाशक, आस्वापक निद्राकारक आदि अनेक रूपों में परिस्थितियों के अनुसार उपयोग किया जाता है । (विशेष जानकारी के लिए लेखक की जल-चिकित्सा पुस्तक पढ़ें ।)

6 | प्रोटीन (Protein)

प्रोटीन, ग्रीक भाषा के प्रोटियोस (शब्द) से बना है जिसका अर्थ "प्रधान" होता है । प्रोटीन, भोजन तथा शरीर निर्माण घटकों का प्रमुख तत्त्व हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं :—

1- संपूर्ण प्रोटीन अथवा जान्तव प्रोटीन। जैसे-दूध, पनीर, मक्खन, छाछ, माँस, मछली, अण्डे इत्यादि ।
2- आंशिक सम्पूर्ण प्रोटीन अथवा वनस्पतिज प्रोटीन।
3- अपूर्ण प्रोटीन। अब तक ऐसा माना जाता रहा कि माँस, मछलियों तथा अण्डों में पाया जाने वाला प्रोटीन ही उत्तम किस्म का होता है, लेकिन यह धारणा अब वैज्ञानिकों द्वारा गलत साबित हो चुकी है। अभी कुछ दिन पूर्व बहुचर्चित पुस्तक "लघु गृह के लिए आहार"। पढ़ने को मिली। इसकी लेखिका हैं 'फ्रॉसिस मूर लैप'। वर्षों तक किये अपने अन्वेषणों तथा एकत्र तथ्यों के आधार पर लेखिका इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि 'प्रोटीन हमारे शरीर के लिए नितान्त आवश्यक तत्त्व है लेकिन इसके लिए माँसाहार की कोई आवश्यकता नहीं है । हमें माँसाहार से भी उत्तम किस्म का प्रोटीन निरामिष आहार से मिल जाता है। उक्त पुस्तक में लिखा है कि अमेरिकी प्रोटीनयुक्त खाद्य पदार्थ पाने की लालच में मवेशियों को जितना खिला देते हैं उतने प्रोटीनयुक्त-खाद्य पदार्थों से कितने हो अभाव-ग्रस्त देशों की प्रोटीन की कमी की पूर्ति की जा सकती है। यानि सिर्फ 1973 में 11 करोड़ 80 लाख टन अनाज, जो जरूरत-मंद गरीबों को मिल सकता था, जन्तुज प्रोटीन पाने के लालच में पशुओं को खिला दिया गया।

प्रयोगों द्वारा यह भी देखा गया है कि विभिन्न खाद्य-पदार्थों से उपलब्ध प्रोटीन की सुपाच्यता माँस-प्रोटीन की तुलना में अच्छी होती है। माँस प्राप्त करने के लिये पशुओं को काटते वक्त उनके शरीर में कुछ ऐसी

जीव-रासायनिक प्रतिक्रियाएँ होतीं हैं जिनसे विष का निर्माण होता है औ उसका प्रभाव मांसाहारियों पर भी होता है । परिशोधित होने के कार मांसाहार का प्रभाव तन और मन दोनों पर होता है । जिसमे हृदय रोग उच्च रक्त चाप, एक्जिमा आदि चर्म रोगों व कैंसर जैसे घातक रोगों की तथा मानसिक रुग्णता व विक्षिप्तता की वृद्धि होती है ।

एमिनो-एसिड :—प्रोटीन खाद्य की पोषकता खाद्य-पदार्थों में उपस्थित एमिनो-एसिड पर निर्भर रहती है। मुख्यत: 20 प्रकार के एमिनो एसिड शरीर के लिए आवश्यक होते हैं, जिनमें कुछ एमिनो एसिड का निर्माण शरीर स्वयं कर लेता है। जिन एमिनो एसिड का निर्माण शरीर नहीं कर पाता है, उनकी पूर्ति अन्य खाद्य-पदार्थों से की जाती है । इस प्रकार के एमिनो एसिड आवश्यक एमिनो एसिड कहलाते हैं, जो निम्न है:—

आवश्यक एमिनो एसिड :—

(1) आइसोल्यूसिन (2) ल्यूसिन (3) लाइसिन (4) थेरियोनिन (5) मैथियोनिन (6) वैलिन (7) ट्रिप्टोफिन (8) फेनाइल-एलानिन (9) हिस्टाइडिन । कम आवश्यक एमिनो एसिड :—(1) आर्गिनिन (2) सिस्टीन (3) टायरोसिन ।

हिस्टाइडिन नामक प्रोटीन बच्चों की वृद्धि के लिए आवश्यक है। अनाज के प्रोटीन में लाइसिन की मात्रा न्यून होती है जबकि दाल के प्रोटीन में मेथियोनिन की मात्रा न्यून होती है । ट्रिप्टोफिन तथा थेरियोनिन भी वनस्पतिज प्रोटीनों में न्यून मात्रा में पाए जाते हैं, लेकिन उनकी पूर्ति आहार में एक दूसरे प्रकार की आहार की मात्रा बढ़ा कर की जाती है। प्रोटीन की पोषकता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उस प्रोटीन में प्राप्त एमिनो एसिड की शरीर में पाचन तथा अवशोषण की दर क्या है? उबाले हुये तथा अंकुरित दाल तथा अनाज के प्रोटीन की सुपाच्यता बढ़ जाती हैं। भोजन द्वारा प्राप्त शरीर में अवशोषित कुल नाइट्रोजन की प्रतिशत संख्या प्रोटिन की जैविक माप (biological value) कहलाता है । दूध में लैक्टलब्यूमिन, अन्डे की जर्दी में ऑवलब्यूमिन, ओवोलविटेलिन, माँस में ट्रिप्टोफिन ल्यूसिन, सोयाबीन में ग्लाइसीनिन, मेवों में एक्सेलसिन तथा मक्का में ग्लूटेनिन नामक एमिनो एसिड पाया जाता है।

प्रोटीन का पाचन तथा अवशोषण :—

प्रोटीन का पाचन आमाशय में होता है। आमाशय से निकलने वाला हाइड्रोक्लोरिक एसिड निष्क्रिय पाचक रस पेप्सिनोजिन पर क्रिया करके सक्रिय पेप्सिन में परिवर्तित करता है और यही पेप्सिन प्रोटीन को पचाता है। बचे हुये प्रोटीन का अंतिम पाचन आँतों में पैंक्रियाज से निकलने वाले पाचक रस तथा आँतों के म्यूकोशा से स्रावित होने वाले पाचक रस द्वारा होता है। भोजन द्वारा प्राप्त सम्पूर्ण प्रोटीन पच कर एमिनो एसिड की दो इकाई (डाई-पेप्टाइड्स) में परिबर्तित हो जाता है और ये आँतों द्वारा अवशोषित होकर पोर्टल सर्कुलेशन में चला जाता है। पोर्टल परिवहन तन्त्र से कुछ एमिनो एसिड लीवर में चले जाते हैं तथा कुछ क्रियाशील ऊतकों द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं। प्रोटीन को पचाने तथा अवशोषण आदि चयापचय क्रिया में कुछ कुछ हार्मोन तथा कुछ विटामिन (बी 6 आदि) भी भाग लेते हैं।

प्रोटीन के मुख्य कार्य :—

(1) शरीर की वृद्धि करना (2) हड्डी, त्वचा, नाखून, बाल, रक्त कोशिका तथा रक्त सिरम का निर्माण करना (3) संसार के समस्त जीवों की प्रत्येक कोशिका तथा जीवों में प्राप्त जीव-द्रव (Body fluid) पित्त एवं पेशाब को छोड़ कर प्रोटीन का बना होता है। (4) माँसपेशियों तथा ऊतकों का निर्माण करना। (5) कुछ पाचक रस (Enzymes) तथा रोग-प्रतिरोधक तत्वों (anti-bodies) का निर्माण प्रोटीन द्वारा होता हैं। (6) प्रोटीन शरीर में ऑक्सीकृत होकर शक्ति भी देता है, लेकिन शक्ति प्राप्त करने की दृष्टि से मँहगे प्रोटीन का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि शक्ति का मुख्य स्रोत कार्बोहाइड्रेट और वसा है। (7) स्तनपायी जन्तुओं में अन्तःस्रावी ग्रंथियों एवं उससे स्रावित होने वाले हार्मोन का निर्माण करना (8) ट्रिप्टोफिन नामक प्रोटीन विटामिन बी या नायसिन तथा मिथियोनिन नामक प्रोटीन ('कोलिन' ग्रुप का सदस्य) की क्रमशः सुरक्षा और निर्माण करता है (9) पैतृक गुणों का संवाहक डी एन. ए. भी प्रोटीन से बनता है। (10) आधुनिक खोजों के अनुसार मानसिक गतिविधियों के परिवर्तन तथा वृद्धि विकास के लिए मस्तिष्क स्वयं

एक औषधि का निर्माण कर लेता है जिसे पेप्टाइड कहते हैं। यह प्रोटीन से बना होता है। (11) इन्सुलिन, थायरोक्सीन, एड्रेनलिन आदि हार्मोनों एवं अन्य एन्जाइमों का निर्माण करना (12) ऊर्जा उत्पादन, हीमोग्लोबिन (रक्त प्रोटीन) एवं प्लाज्मा, अम्ल तथा क्षार के मध्य संतुलन रखता है।

शरीर में प्रोटीन का आपातकालीन उपयोग :—

(1) शरीर में अत्यधिक ऊर्जा की आवश्यकता होने पर कुछ एमिनो एसिड (डॉ. लस्ट के अनुसार 58 प्रतिशत) ग्लूकोज, ग्लाइकोजिन तथा वसा में परिवर्तित हो जाते हैं। (2) लीवर की सहायता से एमिनो एसिड का निर्माण भी होता रहता है। यह निर्माण एमिनो एसिड की टूट-फूट (Katabolism) के कारण होता है।

प्रोटीन द्वारा शक्ति :—

शरीर द्वारा अवशोषित एक ग्राम प्रोटीन 4-10 कैलोरी शक्ति देता है।

दैनिक आवश्यकता

शरीर की विभिन्न स्थितियों पर निर्भर करती है। जैसे-मोटे आदमी को 25-35 ग्राम प्रतिदिन। उसी प्रकार गर्भावस्था व स्तन्यकाल में 65 से 75 ग्राम प्रतिदिन प्रोटीन की आवश्यकता होती है। सामान्यत: 1 किलोग्राम वजन के पीछे 1.20 ग्राम दैनिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है।

प्रोटीन की कमी से होने वाले रोग :—(1) वजन की कमी (2) शोथ (3) यक्ष्मा (4) रक्तहीनता (5) चिड़चिड़ापन (6) क्वाशिओरकार (7) लीवर का बढ़ना (8) सिरोसिस (9) रोग-प्रतिरोध शक्ति का ह्रास (10) समयपूर्व प्रसव (11) बालों की रुक्षता एवं उनकी विकृत संरचना (12) अतिसार (13) कान्तिहीन चेहरा (14) रुक्ष एवं कान्तिहीन त्वचा, त्वचा में वर्ण कणों की अधिकता (15) दाँतों का क्षय होना (16) विभिन्न विटामिनों की कमी (17) माँसपेशीय वृद्धि में रुकावट (18) भूख की कमी इत्यादि।

मुख्य स्रोत :—(1) सोयाबीन (2) काष्ठमेवे (3) सभी प्रकार की दालें (4) सभी प्रकार के अन्न (5) तिलहन (6) फल व सब्जी (7) अंकुरित अनाज (8) माँस (9) मछली (10) अण्डा (11) दूध आदि।

सूचना :—प्राय: वनस्पतिज खाद्य पदार्थों (अन्न, तिलहन, मेवे, फल व सब्जी के बाह्य स्तर (Outer layer) में अन्त:स्टार्ची स्तर की अपेक्षा अत्यधिक प्रोटीन होता है। (2) माँस, मछली तथा अण्डे यदि खाना हो तो उबाल कर खायें तथा उसके साथ ज्यादा हरी सब्जी तथा फल का उपयोग सलाद के रूप में अवश्य करें, क्योंकि आभिष प्रोटीन अम्लीय खाद्य पदार्थ होने के कारण शरीर के क्षारस्तर को कम कर शरीर को रुग्ण बनाते हैं। जन्तुज प्रोटीन में क्षार-प्रधान तत्त्वों की मात्रा बहुत ही न्यून होती है तथा वनस्पतिज प्रोटीन में क्षार तत्त्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। हाल ही अमेरिकी तथा रशियन (उक्रायनी) आहारशास्त्रियों ने अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया है कि वानस्पतिक प्रोटीन-अनाज दालें, सोयाबीन आदि-को अंकुरित करने से उनके प्रोटीन (एमिनो एसिड) के गुण-धर्मों में महत् परिवर्तन होता हैं। वे उत्तम पूर्ण प्रोटीन में रूपान्तरित होकर शीघ्र सुपाच्य बन जाते हैं।

7 | वसा (Fat)

वसा, ऊर्जा का उत्तम स्रोत है। वसा की गुणवत्ता उसमें उपस्थित वसाम्ल तथा ग्लिसरीन के ऊपर निर्भर करती है। वसाम्ल दो प्रकार के होते हैं।

(1) संतृप्त वसाअम्ल--रासायनिक संरचना की दृष्टि से संतृप्त वसाअम्ल में दो कार्बनों के बीच द्वितीयक बन्ध नहीं होता है, विशेपतया इसमें जमने वाले बसा आते हैं जैसे डालडा, मक्खन, घी, नारियल का तेल इत्यादि।

(2) बहु-असंतृप्त वसाम्ल—असंतृप्त वसाम्ल में दो कार्बन के बीच एक से अधिक द्वितीयक बन्ध होते हैं। विशेषतया इसमें न जमने वाले वसा आते हैं। जैसे—मूंगफली का तेल, तिल का तेल, कुसुम व सूर्यसूखी का तेल इत्यादि। जन्तुज वसा में संतृप्त वसाम्ल की मात्रा वनस्पतिज की अपेक्षा अधिक होती है, जबकि वनस्पतिज वसा में असंतृप्त-वसाम्ल की मात्रा जन्तुज वसा की अपेक्षा अधिक होती है।

कोलेस्टरॉल :—संतृप्त वसाम्ल अधिक खाने से तथा उचित व्यायाम के अभाव में रक्त कोलेस्टरॉल का स्तर सामान्य से अधिक बढ़ जाता है फलत:

धमनी-काठिन्य की स्थिति उत्पन्न होती है। रक्तवाहिनियाँ सिकुड़ जाती हैं, इसमें हृदय को पोषण पहुँचाने वाली कॉरोनरी धमनी भी प्रभावित होती है, फलतः विभिन्न हृदय रोगों के लक्षण दीखने लगते हैं। हमारे रक्त में कोलेस्टरॉल का सामान्य स्तर 80 में 180 मि ग्राम प्रति 100 c.c रक्त होता है। कोलेस्टरॉल हमारे शरीर के लिए उपयोगी है, लेकिन इसका स्तर बढ़ जाने से खतरे की संभावना रहती है। कोलेस्टरॉल मस्तिष्क, स्नायु-तन्तु, एड्रिनल कोर्टेक्स (अन्तःस्रावी ग्रन्थि) तथा लीवर के कार्य-संचालन में सहायक होता है। सूर्य रोशनी की उपस्थिति में यह शरीर में विटामिन डी का निर्माण करता है तथा इसका रक्षक भी है। कोलेस्टरॉल का संबंध सैक्स हार्मोन से भी है। कोलेस्टरॉल की चयापचय क्रिया में थॉयरायड, पैंक्रियाज, एड्रिनल तथा पिट्यूटरी आदि अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ तथा इस्ट्रोजन भाग लेते हैं। रक्त-कोलेस्टॉल का स्तर बढ़ जाने से हृदय रोग, उच्च रक्त-चाप, मधुमेह, गठिया, गुर्दे सम्बन्धी रोग होते है। भोजन में प्रोटीन (मेथियोनिन युक्त) विटामिन बी, कम्पलेक्स (कोलिन, बी$_{12}$ बायोटिन तथा पेन्टोथेनिक एसिड) तथा विटामिन सी की मात्रा बढ़ा कर रक्त-कोलेस्टरॉल के स्तर को कम किया जा सकता है। इसके लिए उत्तम खाद्य पदार्थ ताजे फल (विशेषतः खट्टे) सोयाबीन का दही, हरी सब्जियाँ और गाय का दही है।

वसा का मुख्यतः पाचन छोटी आँत में होता है। आँत से स्रवित होने वाले हार्मोन 'कोलेसिस्टोकाईनिन' सीधे रक्त में मिला कर लीवर को क्रियाशील करता है, फलतः पित्त का निष्कासन होता है और यह पित्त ही वसा को पचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त वसा का पाचन क्लोम ग्रंथि से निकलने वाले पाचक रस लाइपेज द्वारा होता है। वसा पच कर फैटी-एसिड तथा ग्लिसरॉल में परिवर्तित हो जाती है। इनका अवशोषण आँतों के म्यूकोशा द्वारा होता हैं।

मुख्य कार्य :—(1) शक्ति प्रदान करना (2) शरीर के लिए कुछ आवश्यक तत्त्वों (प्रोटीन तथा विटामिन इत्यादि जैसे—लाइपोप्रोटीन, फास्फोलाइपिड्स, कोलिन, बी$_{12}$, बायोटिन तथा इनोसिटॉल) का निर्माण करता (3) घातक प्रहारों के समय त्वचा तथा ऊतकों के चारों तरफ जमा होकर

शरीर की रक्षा करना। (4) स्नायुओं के निर्माण में सहायक (5) प्रोटीन की रक्षा करना (6) आमाशय एवं आँतों के लिए स्नेहन का कार्य करना। (7) शरीर के लिए ताप-नियंत्रक का कार्य करना (8) वसा में घुलने वाले विटामिनों को शरीर में ले जाने तथा उपयोगी बनाने में वसा संवाहक का कार्य करती है। जैसे घी या तेल खाने से विटामिन ए. डी. ई तथा के. की पूर्ति होती है। (9) कुछ चयापचय-प्रक्रिया के लिए कुछ आवश्यक वनस्पतिज वसाम्ल (लिमोलिक तथा आर्चिडानिक वसाम्ल) की आवश्यकता होती है। इन आवश्यक वसाम्लों की कमी से फ्राइनोडर्मा नामक चर्म रोग होता है, इसमें त्वचा रूक्ष हो जाती है तथा मोटी श्रृंगीदार शरीर के विशिष्ट अंगों (नितम्ब, जंघा, बाँह तथा पिण्डली) पर निकल आता है। एक्जिमा तथा अन्य चर्म रोग, वजन की कमी, वसा में घुलनशील विटामिनों की कमी से होने वाले रोग भी वसा की कमी से हो सकते हैं।

प्रचुर मात्रा में वसा खाने से मोटापा, पाचन की गड़बड़ी, गठिया, हृदय रोग, उच्च-रक्तचाप, लीवर तथा गुर्दे की खराबी, पित्ताशय की पथरी मधुमेहियों में एसिडोसिस तथा कॉमा, कोलेस्टरॉल की मात्रा बढ़ जाना तथा स्नायुसंस्थान सम्बन्धी आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

वसा से प्राप्त शक्ति :—शरीर में अवशोषित 1 ग्राम वसा 9 ग्राम केलोरी शक्ति देता हैं। दैनिक आवश्यकता 40 से 50 ग्राम, जिसमें कम से कम 15 ग्राम असंतृप्त वसा होनी चाहिये।

मुख्य स्रोत :—तेलहन, मेवे, घी, वनस्पति घी इत्यादि।

सूचना :—प्राय: बहुअसंतृप्त वसा का ही प्रयोग करें। वनस्पत्ति घी का प्रयोग कभी न करें।

8 | कार्बोहाइड्रेट [Carbohydrate] CH_2O

कार्य करने के लिये शक्ति की आवश्यकता होती है और इस शक्ति या ऊर्जा का सस्ता और मुख्य स्रोत (Cheap and chief source) कार्बोहाइड्रेट है। कार्बोहाइड्रेट लैटिन भाषा के कार्बो तथा ग्रीक भाषा के हाइडोर से मिल कर बना हैं जिसका अर्थ कार्बन और पानी हैं। कार्बोहाइड्रेट एक

ऐसा यौगिक है जिसमें कार्बन हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन संयुक्त रहते हैं। कार्बोहाइड्रेट मुख्यत: तीन प्रकार के होते हैं :—

(1) मोनोसैकराइड्स हेक्सोज या सामान्य शर्करा :—(सभी शर्करा का अंतिम उत्पाद) फ्रुक्टोज (फल की शर्करा) गैलेक्टोज । रासायनिक सूत्र $C_6 H_{21} O_6$

(2) डायसैकराइड्स :—सुक्रोज (चुकन्दर तथा ईख की शर्करा), माल्टोज (अनाज में पाये जाने वाले स्टार्च के ऊपर इन्जाइम द्वारा क्रिया कराने से माल्टोज प्राप्त किया जाता है) लैक्टोज (दूध की शर्करा) रासायनिक सूत्र $C_{11}H_{12}O_{12}$

(3) पॉलीसैकराइड्स :—स्टार्च (आलू, शकरकन्द, केले आदि की शर्करा), ग्लाइकोजन (लीवर तथा माँसपेशियों की शर्करा), सेलुलोज (फल, सब्जी तथा अनाज के छिलके की शर्करा) पेक्टोन्स (पके फलों में जेल्स के रूप में)। रासायनिक सूत्र $C_6 H_{10}O$

पाचन तथा अवशोषण :—

खाद्य पदार्थ जब चबा-चबा कर खाए जाते हैं तो उनमें पाये जाने वाले कार्बोहाइड्रेट (पक्व स्टार्च का पाचन, मुँह की श्लेष्म कला से स्रवित होने वाले लाला रस के विशिष्ट इन्जाइम 'सैलाइवरी एमाइलेस' या टायलिन द्वारा होता है। अन्य कार्बोहाइड्रेट (अपक्व स्टार्च व शर्करा) का पाचन छोटी आँत में क्लोम ग्रंथि से निकलने वाले पाचक रस 'एमिलाप्सिन' द्वारा होता है। लहरीदार गति द्वारा भोजन नीचे सरकता है। छोटी आँत में ही पाये जाने वाले तीन प्रकार के पाचक रस (सुक्रोज, माल्टोज, लैक्टोज) द्वारा बचे कार्बोहाइड्रेट का अंतिम पाचन होता है। सभी प्रकार के कार्बोहाइड्रेट ग्लूकोज में परिवर्तित हो जाते हैं।

भोजन द्वारा प्राप्त कार्बोहाइड्रेट का पाचन होने के बाद वह शरीर में अवशोषण होने योग्य सामान्य शर्करा (ग्लूकोज) में परिवर्तित हो जाता है, जिसका अवशोषण छोटी आँत की कोशिकाओं द्वारा होता है। बाद में यह निर्वाहिका (पोर्टल) संचार द्वारा लीवर में पहुँचता है। क्लोम ग्रंथि से निकलने वाले हार्मोन 'इन्सुलिन की सहायता से ग्लूकोज लीवर

तथा माँसपेशियों में ग्लाइकोजन के रूप में इकट्ठा होता रहता है। शरीर में शक्ति की आवश्यकता होने पर क्लोम ग्रंथि से निकलने वाले एक अन्य हार्मोन 'ग्लूकोजन' की सहायता से एकत्रित ग्लाइकोजन, ग्लूकोज में परिवर्तित होकर शरीर के काम आता है। कार्बोहाइड्रेट की चयापचय क्रिया में कुछ अन्य अन्तःस्रावी ग्रथियाँ (थायरायड एड्रिनल आदि) भी महत्वपूर्ण भाग लेती हैं।

मुख्य कार्य :—

(1) शरीर को शक्ति प्रदान करना (2) न्यूक्लियक एसिड (3) स्नायु तन्तु (4) तथा संयोजी ऊतकों के निर्माण में सहायक होना (5) शरीर में संचित शर्करा माताओं में स्तन्यकाल के समय लैक्टोज में परिवर्तित हो जाती है। (6) दुग्ध से प्राप्त लैक्टोज आँतों में जाकर उपयोगी जीवाणुओं का निर्माण करता है। (7) लैक्टोज शर्करा कैलशियम के अवशोषण में सहायक होती है। (8) कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन की रक्षा करता है। (9) सेलुलोज (रेशा) नामक शर्करा आँतों की लहरीदार गति को सामान्य बनाये रखता है। भोजन पाचन एवं मल निष्कासन में सहायता करता है। (10) संपूर्ण कार्बोहाइड्रेट विटामिन बी. कम्पलेक्स, लोहा, विटामिन सी, खनिज तथा अन्य जीवन तत्त्व शरीर में पहुँचाने का कार्य करता है।

रक्त में शर्करा की सामान्य मात्रा :—उपवास काल में शर्करा की मात्रा 65 से 90 मिलीग्राम %, खाने के बाद शर्करा की मात्रा 100 से 120 मिलीग्राम प्रति 100 मि.ली. रक्त में। जब रक्त में शर्करा की मात्रा 60 मि. ग्रा.% से कम (हाइपोग्लूकेमिया) तथा 120 मि. लि. ग्राम % से अधिक (हाइपरग्लूकेमिया अथवा मधुमेह) हो तो समझना चाहिये कि हमारे शरीर के लिए खतरनाक स्थिति है या आने वाली है।

कार्बोहाइड्रेट से प्राप्त ऊर्जा :—शरीर द्वारा अवशोषित एक ग्राम कार्बोहाइड्रेट 4.10 कैलोरी शक्ति देता है।

दैनिक आवश्यकता :—कम से कम 500 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त हो सके, तदर्थ 400 से 500 ग्राम प्रतिदिन कार्बोहाइड्रेट लेना चाहिये।

मुख्य स्रोत :—गुड़, शहद, शकरकन्द, आलू, सभी प्रकार के अन्न अंगूर, मुनक्का, खजूर, आम, सफेद चीनी और भूरी चीनी इत्यादि ।

सूचना :—कार्बोहाइड्रेट के लिये सफेद चीनी तथा संश्लेषित शर्करा का उपयोग अधिक न करें क्योंकि इससे शरीर तथा रक्त-विषाक्तता की स्थिति बढ़ जाती है; जिससे मधुमेह, हृद्रोग, उच्च-रक्तचाप, दाँतों का क्षय मोटापा, विभिन्न प्रकार के गठिया आदि रोग उत्पन्न होते हैं ।

9 | विटामिन (Vitamins)

विटामिन शब्द पोलिश रसायनज्ञ डॉ. फन्क द्वारा अन्वेषित है विटामिन 'वाइटल तथा एमिन' शब्द से बना है, जिसका अर्थ जीवनदाता होता है । सर्वप्रथम विटामिन 'बी' की खोज की गयी और उसी का नाम 'वाइटल एमिन' रखा गया, जो कालान्तर में विटामिन बन गया । डॉ. हॉफकिन्स ने 1912 ई. में विटामिन के विषय में काफी खोज की । सभी प्रकार के विटामिन जैविक या कार्बनिक तत्त्व होते हैं । विटामिन की आवश्यकता शरीर में अत्यल्प होते हुए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि जीवन संचालन में विटामिनों का बहुमूल्य स्थान है । विटामिनों का नामकरण वर्णानुक्रम में इनकी विभिन्न रासायनिक संरचनाओं एवं विशिष्ट गुणवत्ताओं के आधार पर किया गया है । विटामिनों की घुलनशीलता के आधार पर इन्हें निम्न भागों में विभाजित करेंगे :—

वसा में घुलनशील विटामिन

विटामिन 'ए'

(Anti-xerophthalmic vitamin)

वसा में घुलनशील विटामिन ए की खोज सर्वप्रथम की गयी । मैकालम ने इसकी खोज की । हरे रंग के पौधों, पीले रंग की सब्जियों तथा गहरे रंग की पत्तियों वाली सब्जियों में एक विशिष्ट प्रकार का रंग द्रव्य 'कैरोटिन' पाया जाता है, जो विटामिन 'ए' के गुण का तथा उस

रक्षक होता है । इसी कैरोटिन के नाम पर विटामिन 'ए' का रासायनिक नामकरण कैरोटिन हुआ है । यह साधारण तापक्रम पर नष्ट नहीं होता परन्तु ऑक्सीकरण तथा सूर्य की परावेंगनी किरणों से नष्ट हो जाता है । कैरोटिन चार प्रकार का होता है :—(1) अल्फा कैरोटिन (2) बीटा कैरोटिन (3) गामा कैरोटिन (4) क्रिप्टोजेंथिन ।

बीटा, कैरोटिन का प्रत्येक अणु विटामिन 'ए' के दो अणु के बराबर होता है । अन्य तीनों कैरोटिन जलशीकरण क्रिया के बाद विटामिन 'ए' का एक अणु बनाता है ।

पाचन तथा अवशोषण :—

भोजन में विटामिन 'ए' कैरोटिन के रूप में पाया जाता है । इसके पाचन के लिये वसा का होना आवश्यक है। आँतों की दीवारों से एक विशिष्ट प्रकार का क्रियाशील इन्जाइम कैरोटिनेज स्रवित होता है जो कैरोटिन को विटामिन 'ए' में परिवर्तित कर देता है । इससे बचा हुआ कैरोटिन लीवर द्वारा विटामिन 'ए' में परिवर्तित होता है । विटामिन 'ए' को पचाने के लिये पित्त की आवश्यकता होती है । शरीर में कैरोटिन का अवशोषण विभिन्न कारणों पर निर्भर करता है । भोजन के साथ लिये गये वसा की उपस्थिति में कैरोटिन का अवशोषण बढ़ कर 25 से 50 प्रतिशत तक हो जाता है । कैरोटिन की अपेक्षा सीधे लिये गये विटामिन 'ए' का अवशोषण तथा सात्मीकरण शीघ्र होता है । विटामिन 'ए' या कैरोटिन का अवशोषण वसा की तरह होता है । 95 प्रतिशत विटामिन 'ए' लीवर में जमा रहता है । विटामिन 'ए' की थोड़ी सी मात्रा गुर्दे व फेफड़ों में तथा नाममात्र की वसा कोशिकाओं में जमा रहती है ।

मुख्य कार्य:—विटामिन 'ए' का मुख्य सम्बन्ध त्वचा एवं आँखों से होता है । कम प्रकाश में देखने का कार्य विटामिन 'ए' द्वारा ही सम्पन्न होता हैं । विटामिन 'ए' हमारे शरीर में कुछ ऐसे तत्वों का निर्माण करते हैं जो म्यूकस-स्राव को क्रियाशील करते हैं । म्यूकस स्राव की क्रियाशीलता से ही त्वचा मुलायम, कोमल और स्वस्थ बनी रहती है । आँख, मुँह, आमाशय, आँतों, श्वसनांग व गुप्तांगों की म्यूकस मेम्ब्रेन की रक्षा विटामिन 'ए' करता

है। विटामिन 'ए', सामान्य वृद्धि, अस्थि विकास व दाँत रचना के लिये आव-श्यक है। गर्भावस्था तथा स्तन्यकाल के समय विटामिन 'ए' की कमी से नवजात शिशु में बहुत सी विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। विटामिन 'ए' की कमी से मुख्यत: आँखें, त्वचा, हड्डियाँ, लीवर आदि अंग प्रभावित होते हैं।

कमी से होने वाले रोग :—नेत्र-गोलक-बाह्य-कला की नमी समाप्त हो जाती है, धुँधलापन छाने लगता है और अन्त में स्वच्छ मंडल पूर्ण शुष्क हो जाता है फलत: शुष्क नेत्र-प्रदाह नामक भयंकर रोग होता है। चूँकि विटामिन 'ए' का उपयोग इस रोग को दूर करने में होता है, इस-लिये इस विटामिन को जिरोफ थेलमिक अवरोधक विटामिन भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त विटामिन 'ए' की कमी से आँख सम्बन्धी रोगों में रतौंधी, फोटोफोबिया, श्लेष्मिक कला परिवर्तन, नेत्र-प्रदाह, सूजन, खाज आदि प्रारम्भिक लक्षण दीखते हैं। यदि समय पर इनका उपचार नहीं होता है तो जिरोफ थैलमिक की स्थिति उत्पन्न होती है। स्वच्छ मंडल की पारदर्शिता का लोप हो जाता है, आँखें निष्प्रभ हो जाती हैं। आँखों का अल्सर तथा कैरोटोमलेसिया की स्थिति उत्पन्न होती है फलत: आँखें सदा के लिये बंद हो जाती हैं और इन्सान इस विराट् जगत में अँधेरे में भटकने के लिये रह जाता है। बच्चों में रतौंधी, ब्राइटॉट्स स्पॉट (माडी) तथा कान्जक्टीवल जिरोसिस होता है।

त्वचा का समस्त इपिथलियल भाग विटामिन 'ए' की कमी से प्रभावित होता है। कोशिकाऐं सख्त एवं संकुचित होने लगती हैं, फलत: डिजनरेशन (विकृति) की स्थिति उत्पन्न होती है। समस्त अंग आँख, नासिका, साइनस, मध्यकान, गुप्तांग, फेफड़े आदि रोगाणुओं के चुंगल में फँस जाते हैं। चमड़ी खुश्क, खाँचेदार, तथा भद्दी दीखने लगती है। पाचन-संस्थान की खराबी के कारण भी शरीर में विटामिन 'ए' की कमी होती है।

दैनिक आवश्यकता :—

करीब 750 माइक्रोग्राम या 2500 आई. यू. से 3500 आई. यू. जन्तुज खाद्य पदार्थ में विटामिन 'ए' अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है लेकिन मँहगा होने से जनसाधारण के लिये इसका उपयोग कर पाना सम्भव

नहीं होता । अतः हरी साग-भाजियाँ तथा पीले फलों से विटामिन 'ए' की पूर्ति की जानी चाहिये । प्रतिदिन विटामिन की समुचित पूर्ति के लिये 50 से 100 ग्राम हरी सब्जियाँ लेनी पर्याप्त हैं। ऐसे व्यक्ति जिनका पाचन-संस्थान गडबड हो तथा हरी पत्तियों वाली सब्जियाँ अच्छी तरह पचती नहीं हों, उन्हें सब्जी न देकर गाजर तथा पालक का रस देना चाहियें । इसमे कैरोटिन की अवशोषण क्षमता भी 35% तक बढ़ जाती है।

मुख्य स्रोत :— ताजी हरी सब्जियाँ, गाजर, पपीता, दूध, मछली का तेल, लीवर, मक्खन, घी (विशेषतः गाय का) तथा दूध या दूध से बने पदार्थों में। विभिन्न परिस्थितियो में प्रति सौ ग्रा. मक्खन में 600 से 6000 आई. यू. विटामिन 'ए' पाया जाता है । मक्खन से घी वनाने में करीव 25% विटामिन 'ए' ताप-विकिरण द्वारा नष्ट हो जाता है । गाय के एक ग्राम घी में 20 से 25 आइ. यू. विटामिन 'ए' पाया जाता है जबकि भैंस के 1 ग्राम घी में सिर्फ 8 से 10 आई. यू. पाया जाता हैं । विटामिन 'ए' की प्रचुरता के कारण ही गाय का घी पीला दीखता है।

विटामिन 'डी'

प्रथम विश्वयुद्ध के समय अमेरिकी वैज्ञानिक डा. हेस तथा डा एन्गर ने रिकेट्स से ग्रसित कुछ नीग्रो बच्चों पर कॉडलीबर आयल का प्रयोग करके देखा कि उनमें रिकेट्स के लक्षण समाप्त हो गये हैं। पहले ऐसा समझा जाता था कि कॉड लीवर आयल में उपस्थित विटामिन 'ए' में एण्टीरिकेटिक गुण होता है। वाद में मैक्कालम स्टीनबोक तथा डरमोण्ड आदि वैज्ञानिकों ने कॉड लीवर आयल से विटामिन 'ए' को नष्ट करने के बाद भी यह देखा कि कॉडलीवर में तब भी रिकेट को दूर करने की क्षमता थी। इन प्रयोगों से निष्कर्ष निकाला गया कि कॉड लीवर आयल में विटामिन 'ए' के अतिरिक्त भी ऐसा कोई तत्व है जो एण्टीरिकेटिक गुण रखता है। बाद में वह तत्व विटामिन 'डी' के नाम से जाना गया।

शुद्ध विटामिन 'डी' को रवे के रूप में 1930 ई. में अलग किया गया और उसका नामकरण कैलसिफेरॉल हुआ। सन् 1924 ई. में डा. स्टोबोक

तथा हेस ने पता लगाया कि ऐसे खाद्य पदार्थ जो अल्ट्रावॉयलेट (अथवा सूर्य की पराबैंगनी किरणों) के संपर्क में रहते हैं, उनमें रिकेट-अवरोधक गुण आ जाता है। स्टीयरॉल (एक प्रकार की वसा) विटामिन 'डी' की रक्षक मानी जाती है। एक दूसरे प्रकार की वसा इरगोस्टीयरॉल (जो त्वचा के नीचे होती हैं) सूर्य अथवा कृत्रिम पराबैंगनी प्रकाश से कैल्शियम की उपस्थिति में कैलसिफेरॉल बनाती है। विटामिन 'डी' 10 प्रकार के होते हैं लेकिन दो ही प्रकार के विटामिन 'डी' प्रयोग में लाये जाते हैं। ताप, अम्ल तथा क्षार का 'डी' पर कोई प्रभाव नहीं होता है।

(1) विटामिन 'डी$_2$' या केलसीफेरॉल अथवा एक्टीवेटेड एरगेस्टरॉल बायोस्टरॉल।

(2) विटामिन 'डी$_3$' या एक्टीवेटेड 7 'डी' हाइड्रोक्लोस्टरॉल (समुद्री मछली में)। विटामिन 'डी' का अवशोषण वसा के साथ आँतों द्वारा होता है। विटामिन 'डी$_3$' सूर्य की रोशनी में बनता है तथा त्वचा में इकट्ठा होता है। विटामिन 'डी$_2$' लीवर में इकट्ठा होता है। सूक्ष्म मात्रा में मस्तिष्क, फेंफड़े, प्लीहा तथा हड्डियों में भी इकट्ठा होता है। आँतों से कैल्शियम तथा फॉस्फोरस के अवशोषण में तथा कैल्सियम और फॉस्फोरस को हड्डियों अथवा शरीर के लिये उपयोगी बनाने में विटामिन 'डी' महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसका निष्कासन पेशाब द्वारा न होकर पाखाने द्वारा होता है।

अभावजन्य रोग :—विटामिन 'डी' का अभाव मुख्यत: बच्चों में ही होता है। बच्चों में विटामिन 'डी' की कमी से भयंकर रोग रिकेट होता है। दूसरा रोग ऑस्टियोमलेशिया (वयस्कों का रिकेट) होता है। यह महिलाओं (प्राय: असूर्य्यम्पश्या) का गर्भावस्था तथा स्तन्यकाल का विटामिन 'डी' अभावजन्य रोग है। बच्चों की वृद्धि रुक जाती है। खोपड़ी मुलायम तथा अग्रभाग बड़ा हो जाता है। सिर वर्गाकार बक्से की तरह हो जाता है। पैर धनुषाकार, छाती कबूतर की तरह, पेट निकल कर मटके की तरह हो जाता है। कलाई, घुटने तथा संधियों का आकार बढ़ जाता है। आँतें एवं पेट की माँसपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं। शारीरिक तथा मानसिक बैचेनी बढ़ जाती है। स्नायु संबंधी विकार उत्पन्न होते हैं। हड्डियाँ कमजोर हो जाती है। पैर,

छाती, रीढ़ तथा नितंबअस्थि बेढ़ंगी हो जाती है। कभी-कभी हड्डियाँ टूट जाती हैं। संधिवात तथा गठिया रोग भी विटामिन 'डी' की कमी से होते हैं। टिटेनी, माँसपेशियों में ऐंठन खिचाव, संधिदर्द, दाँत संबंधी रोग जैसे दाँत देरी से आना, दाँतों की संरचना में असामान्यता आ जाना, दाँतों का गिरना आदि रोग लक्षण कैल्सियम तथा फॉस्फोरस के गलत चयापचय; पेराथॉयरायड अन्तःस्रावी ग्रंथि के स्राव में व्यवधान होने के कारण तथा मुख्य रूप से विटामिन 'डी' की कमी के कारण होते हैं।

उपर्युक्त रोग लक्षण से ग्रस्त रोगी को उचित मात्रा में विटामिन 'डी' देना चाहिये तथा धूप में रोगी को सुविधानुसार लेटा कर या बैठा कर कॉड लीवर आयल अथवा सरसों के तेल में लहसुन गर्म कर उस तेल से मालिश करनी चाहिये। भोजन में विटामिन 'डी' तथा प्रोटीन की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। विटामिन 'डी' की दृष्टि से रोगी को कॉड लीवर आयल तथा नंगे बदन प्रातःकालीन धूप का सेवन करना चाहिये।

दैनिक आवश्यकता :—गर्भावस्था, स्तन्यकाल तथा बच्चों को 400 आई. यू.। सामान्यतः 200 से 400 आई यू।

नवजात शिशु के समुचित विकास के लिए गर्भावस्था तथा स्तन्यकाल के समय उचित मात्रा में विटामिन 'डी' की पूर्ति होनी चाहिये।

मुख्य स्रोत :—(1) सूर्योदय काल की धूप (2) दूध (3) समुद्री मछली (कॉड तथा शार्क) का लीवर आयल।

विटामिन 'डी' के अधिक प्रयोग से दस्त, वमन, उत्तेजना तथा कब्ज की शिकायत होती है।

विटामिन 'ई' (वन्ध्य-अवरोधक विटामिन)

डा इवान्स तथा डा. बीशॉप ने चूहे पर प्रजनन संबंधी खोज के दौरान विटामिन 'ई' का आविष्कार किया। प्रयोग के दौरान देखा गया कि विटामिन 'ई' की कमी से मादा चूहों का भ्रूण मर गया तथा उनकी रति-क्रिया में भाग लेने की शक्ति भी जाती रही। पुरुषों में भी प्रजनन-संस्थान के इपिथलियम क्षतिग्रस्त होगये। चूहों को पुनः विटामिन 'ई' की उचित

मात्रा देने पर मादा चूहों में गर्भधारण करने तथा रति-क्रिया में भाग लेने की क्षमता का विकास तीव्र गति से हुआ।

विटामिन 'ई' के चार सदस्य-अल्फा, बीटा, गामा, डेल्टा टोकोफेरॉल होते हैं। अल्फा टोकोफेरॉल सबसे सक्रिय सदस्य है। विटामिन ई तथा सैक्स हार्मोन एक दूसरे से विशेष संबंध रखते हैं। इस पर ताप तथा अम्ल का प्रभाव नहीं होता है, परन्तु परावैंगनी किरणों से नष्ट हो जाता है।

विटामिन 'ई' आँतों द्वारा अवशोषित होता है, लेकिन इसके अवशोषण के लिये वसा और पित्त की आवश्यकता होती है। विटामिन 'ई' का विशिष्ट गुण ऑक्सीजन अवरोधक होता है इसलिये पाचन नली में विशेषत: केरोटिन तथा विटामिन 'ए' तथा अन्य खाद्य पदार्थों को अधिक ऑक्सीकरण से बचा कर इनकी रक्षा करता है। यह सैक्स हार्मोन, विटामिन 'डी' तथा कोलेस्टरॉल को शरीर के लिए उपयोगी बनाता है। लाल रक्त कणों को जीवन प्रदान करना तथा भ्रूण को सुरक्षित रखना, विटामिन 'ई' द्वारा ही होता है।

विटामिन 'ई' की कमी से लाल रक्त कणों का क्षय होने लगता है फलत: रक्तहीनता की स्थिति उत्पन्न होती है। अधिक वसा का प्रयोग करते वक्त विटामिन 'ई' की मात्रा भोजन में बढ़ा देनी चाहिये अन्यथा क्षीण प्रजनन-शक्ति के ह्रास तथा रक्तहीनता की स्थिति उत्पन्न होती है। माँसपेशियां क्षीण होने लगती हैं। महिलाओं में विटामिन 'ई' की कमी से अनियमित माहवारी, अधिक स्राव, दुग्ध स्रवण की कमी, उच्च रक्त-चाप, हृदय रोग तथा गर्भवती स्त्रियों में गर्भपात के लक्षण विशेष दिखते हैं।

मुख्यत :—गेहूँ का अंकुर तथा अनाज के अंकुर, वनस्पतिज तेल तथा हरी साग भाजियाँ और फल।

दैनिक आवश्यकता :—प्राय: इसकी कमी नहीं होती है। 10 से 30 मि. ग्राम. प्रतिदिन।

विटामिन 'के' (रक्तस्राव-अवरोधक विटामिन)

कोपेनहेगन के प्रो. डा. कार्लपिटर हेनरिक डाम ने विटामिन 'के' की खोज की थी। इस पर उन्हें नोबेल पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया।

1944 ई. से यह रक्त जमाने वाले विटामिन के रूप में प्रयुक्त होने लगा। इसके पूर्व हजारों नवजात शिशु रक्त स्राव के कारण धरती पर पैर रखने के पूर्व ही प्रभु को प्यारे हो जाते थे। ऐसे बच्चों के लिए विटामिन 'के' वरदान साबित हुआ। महान अन्वेषक डा. डाम की मृत्यु 17 अप्रेल 1966 में हुई। यह सूर्य प्रकाश, ऑक्सीकरण, क्षार तथा अम्ल में नष्ट हो जाता है। ताप में स्थिर रहता है।

विटामिन 'के' दो प्रकार के होते हैं:—के$_1$ तथा के$_2$। सर्वप्रथम विटामिन 'के$_1$' को अल्फाल्फा नामक वनस्पति से बनाया गया, जबकि विटामिन 'के$_2$' को मछलियों से निकाला गया। विटामिन 'के' का एक रूप मैनोडियोन भी होता है।

शरीर में विटामिन 'के' के अवशोषण के लिए पित्त की आवश्यकता होती है। रक्त का प्रमुख घटक प्रोथ्रोम्बिन जो रक्त को जमाने का कार्य करता है, विटामिन 'के' द्वारा ही निर्मित होता है। इसका निर्माण हमारी आँतों में उपस्थित कुछ बैक्टिरिया द्वारा भी होता है। विटामिन 'के' ऊतकों को क्रियाशील करने में सहायक होता है।

विटामिन 'के' की कमी से गर्भस्थ तथा नवजात शिशु में घातक रोग, रक्तस्राव तथा पीलिया होता है। शल्य क्रिया के समय भी विटामिन 'के' एवं विटामिन 'सी' आवश्यक होता है। अल्सर, अतिसार तथा लीवर की खराबी के कारण शरीर में विटामिन 'के' की कमी हो जाती है।

मुख्य स्रोत :—ताजी हरी सब्जियाँ और फल, अंकुरित अनाज, अनाजों के छिलके व भ्रूण इत्यादि।

उपर्युक्त वसा में घुलनशील विटामिनों पर सामान्य ताप का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है लेकिन अधिक तापक्रम पर नष्ट होने की संभावना रहती है।

जल में घुलनशील विटामिन

विटामिन 'बी-ग्रुप' थायामिन या विटामिन 'बी$_1$' :

बेरी-बेरी नामक भयंकर रोग तथा स्नायु-संस्थान के लिए विटामिन 'बी' उपयोगी होने के कारण इसे एण्टी बेरी-बेरी विटामिन तथा एन्यूरिन

कहते हैं। इसका दूसरा नाम थायमिन भी है। इस विटामिन की खोज सर्वप्रथम 1902 ई. में डॉ. जानसन तथा डॉ. डोनेथ द्वारा बेरी-बेरी रोग के अनुसंधान के दौरान चाँवल की कणियों से संश्लेषित कर की गयी।

विटामिन 'बी$_1$' के मुख्य कार्य :—विटामिन 'बी$_1$' का अवशोषण छोटी एवं बड़ी आँतों द्वारा होता है। लीवर में यह कोइन्जाइम कार्बोक्सीलेज के रूप में जमा रहता है। इसके अतिरिक्त यह न्यून मात्रा में हृदय, गुर्दे, माँसपेशियों तथा मस्तिष्क में भी जमा रहता है। अन्य खाद्य-पदार्थों तथा विशेषतः कार्बोहाइड्रेट की उपापचय क्रिया में भाग लेकर उससे शक्ति प्राप्त करने में विटामिन 'बी$_1$' महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अतः कार्बोहाइड्रेट को भोजन में बढ़ाने पर विटामिन 'बी' की मात्रा भी बढ़ा देनी चाहिये। थायमिन भोजन को पचाने तथा माँसपेशियों को सुदृढ़ करने का कार्य करता है। स्वस्थ मन और मस्तिष्क के लिए थायमिन आवश्यक है। आमाशय एवं आँतों के कार्य को थायमिन सुसंचालित करता है।

भोजन में थायमिन की कमी से भयंकर शुष्क, तथा आर्द्र बाल रोग बेरी-बेरी होता है।

शुष्क बेरी-बेरी में भूख मारी जाती है। पैरों एवं हाथों में सनसनाहट तथा सूनापन के लक्षण दीखते हैं। पैरों में चपके चलने की अनुभूति भी होती है। पेट तथा आँतों सम्बन्धी गड़बड़ियाँ उत्पन्न होती है। सर्वप्रथम पैरों के नीचे वाले हिस्से से होते हुये जंघा तक स्नायविक कमजोरी के लक्षण दीखते हैं। कभी-कभी हाथ एवं पैर दोनों में लकवा मार जाता है। हृदय का आकार बढ़ जाता है एवं विभिन्न प्रकार के हृदय रोग जैसे टेकीकार्डिया (हृदय गति तीव्र) तथा डिस्पेनिया (श्वास लेने में कठिनाई) आदि लक्षण दीखते हैं।

आर्द्र बेरी-बेरी में सारा शरीर सूज जाता है, हृदय की विभिन्न बीमारियाँ प्रायः आर्द्र बेरी-बेरी में ही दीखती है। नाड़ी एवं हृदय की तीव्र धड़कन तथा श्वासहीनता इसके प्रमुख लक्षण हैं। इसके अतिरिक्त थायमिन की कमी से अतिसार, वमन, थकान, भय, क्रोध, तथा माँसपेशियों में ऐंठन, अवसाद, उत्तेजना, शक्ति एवं वजन की कमी, कब्ज, सिरदर्द, अनिद्रा, पिण्डलीय ऊतकों में ऐंठन आदि लक्षण दीखते हैं। पेरीफरल न्यूराइटिस तथा

कार्डियों वस्कुलर (हृदय सम्बन्धी) रोग भी थायमिन की कमी से ही होता है। बेरी बेरी रोग में प्रोटीन, उच्च कैलोरी का भोजन तथा विटामिन 'बी' कॉम्पलेक्स उसमें भी विशेष कर थायमिन का प्रयोग अधिक करना चाहिये।

दैनिक आवश्यकता :—थायमिन की दैनिक आवश्यकता भोजन में ली गई कार्बोहाइड्रेट की मात्रा पर निर्भर करती है। अत्यधिक परिश्रम, गर्भावस्था, स्तन्यकाल तथा खेलते कूदते बच्चों को शक्ति के लिए अत्यधिक कार्बोहाइड्रेट की आवश्यकता है। वैसे भी भारतीय आहार में कार्बोहाइड्रेट की ही प्रधानता होती है, अतः कार्बोहाइड्रेट के अनुपात में विटामिन 'बी' की मात्रा अवश्य बढ़ा देनी चाहिये। थायमिन की पर्याप्त मात्रा 0.3 से 0.5 मि ग्रा. प्रति 1000 कैलोरी प्रतिदिन माना जाता है। इसके अतिरिक्त थायमिन की दैनिक आवश्यकता शरीर की अवस्था, उम्र एवं लिंग ऊपर भी निर्भर करती है। मुख्यतः 0.9 मि. ग्रा. से 1.4 मि. ग्रा. प्रतिदिन थायमिन चाहिये। भोजन में वसा की मात्रा अधिक होने से शरीर में थायमिन की खपत कम हो जाती है क्योंकि वसा थायमिन की रक्षा करता है।

मुख्य स्रोत :—चाँवल, गेहूँ, दलहन तथा काष्ठ मेवे (मूंगफली) आदि के छिलके में थायमिन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। बिना छिलके के चाँवल और दाल तथा सफेद चीनी खाने से ही उपर्युक्त रोग (बेरी-बेरी, हृदय रोग आदि) लक्षण दीखते हैं। भारत के कुछ प्रान्तों में विशेषतः आंन्ध्र प्रदेश में बेरी बेरी के रोगी अधिक मिलते हैं क्योंकि वहाँ पालिश किया हुआ चाँवल प्रचुर मात्रा में खाया जाता है। मिल छँटा पॉलिश किया हुआ चाँवल और दाल तथा सफेद चीनी देखने में भले ही मनभावन लगे, लेकिन स्वास्थ्य के लिये ये बहुत ही हानिकारक हैं। हाल ही में किये गये एक सर्वेक्षण से पता चला है कि जहाँ पॉलिश किया हुआ चाँवल अत्यधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है, वहाँ की महिलाओं के दूध में थायमिन की मात्रा अन्य विकसित देशों की महिलाओं के दूध की तुलना में काफी कम होती है।

अँकुरित गेहूँ, अन्न, मूंगफली, दलहन, तिल, मेथी, हरी व पत्ती वाली सब्जी, आलू आदि कन्द, कणीवाला (हाथ कुटा) चाँवल, ब्रेवर यीस्ट विटामिन 'बी' के मुख्य स्रोत माने जाते हैं। जन्तुज खाद्य पदार्थों (दूध, माँस, मछली आदि) में थायमिन कम मात्रा में पाया जाता है।

बी–2 कॉम्पलेक्स विटामिन

आधुनिक अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि बी-2 काम्पलेक्स ग्रूप के कुछ विटामिनों का महत्व मानव-जीवन- संचालन में विशेष उपयोगी होता है। इसमें से कुछ विटामिन अन्य जीवों के लिए उपयोगी हैं । बी-2 कॉम्पलेक्स ग्रूप के सभी सदस्यों के बारे में संक्षिप्त जानकारी निम्नानुसार है।

विटामिन बी–2 अथवा रिबोफ्लेविन

रिबोफ्लेविन राइबोज (एक प्रकार की शर्करा) तथा फ्लेविन (नारंगी की तरह चमकीला तत्त्व) से मिल कर बना है। सर्वप्रथम इसे 1879 ई. में दूध से निकाला गया। इसलिये इसे लैक्टोफ्लेविन भी कहते हैं । 1931 शेरमेन 1932 में डा. वरबर्ग तथा क्रिश्चएन तथा 1935 में डा. कुह्न तथा उनके सहयोगियों, 1938 में क्लार्क, 1940 में मैक्लड 1944 में टेलर आदि विज्ञानियों द्वारा रिबोफ्लेविन विटामिन पर काफी शोध प्रयोग किये गये।

मुख्य कार्य :—प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा की चयापचय क्रिया में थायमिन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आधुनिक अनुसंधान के अनुसार लाल रक्तकणों के निर्माण में भी भाग लेता है। सहायक पाचक रस (को इन्जाइम) का कार्य करता है । यह कोशकीय श्वसन, लीवर, हृदय तथा गुर्दों के सही कार्य-संचालन के लिए आवश्यक होता है तथा इन्हीं अंगों में जमा भी रहता है। आधुनिक मतानुसार यह आमाशय एवं आँतों में भी जमा रहता है। इस पर अम्ल, ताप तथा वायु का प्रभाव नहीं होता और रोशनी तथा पकाते समय खुला रखने से नष्ट हो जाता है ।

अभावजन्य रोग :—भोजन में रिबोफ्लेविन की कमी से भयंकर चर्म रोग, जिह्वा तथा होठ का अल्सर, मुँह के दोनों छोर का फटन (स्नायविक कमजोरी, श्वेत रक्त कणों की शक्ति का ह्रास, यौवन शक्ति की कमी फोटो फोबिया, नेत्र-प्रदाह, कॉर्निया का क्षतिग्रस्त हो जाना, दृष्टि दोष, नाक तथा होठ की खुश्की आदि लक्षण दीखते हैं।

दैनिक आवश्यकता :—1.2. मि. ग्रा. से 2.00 मि. ग्रा.

मुख्य स्रोत :—दूध तथा दूध से बने हुए खाद्य पदार्थ (छाछ, दही, पनीर आदि) अण्डा, लीवर, यीस्ट तथा ताजी हरी सब्जियाँ । गेहूँ, बाजरा तथा दलहन में भी पाया जाता है लेकिन चाँवल में यह न्यून मात्रा में मिलता है ।

विटामिन बी-3 या नायसिन

विटामिन बी-3 अथवा नायसिन की खोज सन् 1937 ई. में डा. एलवेहजम तथा उनके सहयोगियों द्वारा की गई । हालाँकि यह विटामिन के रूप में 1887 ई. से ही ज्ञात था। पैलागरा-अवरोधक इस विटामिन का नामकरण डा. एल वेहम तथा उनके सहयोगियों ने निकोटिनिक एसिड रखा। लेकिन तम्बाकू के निकोटिन तथा निकोटिनिक एसिड के नामकरण में काफी समानता होने के कारण डा. काउगिल ने इसका नया नामकरण नायसिन किया । 1926 में 'गोल्डबर्जर और उनके सहयोगियों ने सिद्ध किया कि नायसिन में पेलाग्रा प्रिवेन्टिव (PP) गुण है । यह पानी में घुलनशील, रंगहीन एवं कसैला होता है ।

मुख्य कार्य :—नायसिन, सहायक पाचक रस का कार्य करता है । पाचक रसों को क्रियाशील करता है और कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा वसा की चयापचय क्रिया में भाग लेता है । शरीरान्तर्गत प्रोटीन तथा वसा के निर्माण या संश्लेषण में भाग लेता है। शरीर में इसका संचयन कम होता है । अधिक खाने पर मूत्र द्वारा बाहर निकल जाता है । उच्च कोटि के प्रोटीन एमिनो एसिड का शरीरान्तर्गत नायसिन में परिवर्तन हो जाता है। इसलिये यह नायसिन का रक्षक एमिनो-एसिड कहलाता है । विटामिन बी-6 नायसिन को पचाने के लिये आवश्यक होता है । मक्का बाजरा तथा ज्वारे में नायसिन की सख्त कमी होती है। अतः इन अनाजों के अत्यधिक प्रयोग से पेलाग्रा के लक्षण दृष्टिगोचर होता हैं।

अभावजन्य रोग :—विटामिन बी-3 की कमी से एक भयंकर रोग 'पेलागरा' होता है जिसमें अंग्रेजी अक्षर डी. से आरम्भ होने वाले निम्न

चार लक्षण दीखते हैं । पहला-डर्मेटाइटिस (भयंकर चर्मरोग) दूसरा डायरिया (अतिसार) तीसरा डेमेनसिया बहुत ही भयंकर मानसिक रोग होता है । जिसका समय पर उपचार नहीं होने से रोग की अंतिम चौथी स्थिति डेथ (मौत) होती है । पैलागरा नामक भयंकर रोग उस देश में अत्यधिक होता है जहाँ मक्का एवं बाजरे के अतिरिक्त अन्य खाद्य पदार्थों का उपयोग नहीं किया जाता है । मक्का एवं बाजरे में ट्रिप्टोफिन तथा नायसिन का पूर्ण अभाव होता है । बाजरे में ल्यूसिन नामक प्रोटीन की मात्रा अधिक पायी जाती है । शरीरान्तर्गत अन्य आवश्यक एमिनो एसिड विशेषत: आयसोल्यूसिन तथा ल्यूसिन में असामंजस्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । फलत: ट्रिप्टोफिन तथा नायसिन की कमी होकर शरीर पेलागरा से आक्रान्त हो जाता है । पेलागरा के रोगी मैक्सिकों तथा दक्षिण अमेरिका में अधिक पाये जाते हैं क्योंकि वहाँ मक्का का उपयोग अत्यधिक किया जाता है। पेलागरा आमाशय, आँतों, त्वचा तथा स्नायुतंत्र-संस्थान का रोग हैं । प्रारंभिक स्थिति में रोगी में थकान, सिरदर्द, पीठदर्द, वजन की कमी, भूख की कमी, द्वितीय स्थिति में जिह्वा के छाले, घाव, गले का घाव, मानसिक अस्वस्थता, छाले के कारण भोजन निगलने में कठिनाई, तीसरी स्थिति में वमन, जी मिचलाना, अतिसार, रक्तहीनता, समरूप चर्मरोग विशेषत: हाथ एवं पैर के पश्च भाग में, रोग बढ़ने पर आलस्य, शंका, उत्तेजना, विभ्रम, श्रुतिभ्रम, पागलपन के लक्षण दिखते हैं जिसका अंतिम परिणाम मौत होता है । अत: प्रथम लक्षण में ही रोगी को सँभल जाना चाहिये । डा. आंसमांड और डा. हाफर ने सिद्ध किया है कि शिजोफ्रेनिया नामक मानसिक रोग भी इसकी कमी से होता है ।

दैनिक आवश्यकता :—10 से 18 मि. ग्रा. (अथवा 6.6 मि. ग्रा./1000 कैलोरी)

मुख्य स्रोत :—नीबू, संपूर्ण अंकुरित अनाज, सूखे मेवे, दलहन तथा तिलहन, आलू, हरी सब्जियाँ बेयवर, यीस्ट, लीवर सोयाबिन, सेम, मटर, मूँगफली, सूरजमुखी इत्यादि ।

विटामिन बी-6 या पायरिडॉक्सिन

पायरिडॉक्सिन विटामिन बी-6 का प्रमुख सदस्य है जो वानस्पतिक खाद्य पदार्थों से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इसके दो सदस्य पायरिडॉक्सल तथा पायरिडॉक्सएमीन होते हैं जो जन्तुज खाद्य पदार्थों से प्राप्त होते हैं। शरीर में तीनों प्रकार के विटामिन बी-6 आवश्यकतानुसार एक दूसरे में परिवर्तित हो जाते हैं।

मुख्य कार्य :—विटामिन बी-6 प्रोटीन तथा वसा की चयापचय क्रिया में भाग लेता है। शरीर में विटामिन बी-6 की उपस्थिति में ही ट्रिप्टोफिन नायसिन में परिवर्तित होता है। यह को-एन्जाइम का कार्य करता है। लाल रक्त के निर्माण, शरीर विकास तथा पीयूष-ग्रंथि के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है।

विटामिन बी-6 की कमी भोजन में प्राय नहीं होती है लेकिन गलत खान-पान के कारण इसकी कमी हो भी सकती है। जिससे निम्न रोग लक्षण दिखते है :—अवसाद (डिप्रेंशन), अनिद्रा, चर्मरोग, भूख की कमी, जी मिचलना, होठ फटना. नेत्र प्रदाह, तंत्रिका रोग, रक्तहीनता तथा आक्षेप के लक्षण दीखते हैं। बच्चों में कमी होने से शारीरिक तथा मानसिक विकास का ह्रास, रक्तहीनता तथा आक्षेप के लक्षण दीखते हैं।

मुख्य स्रोत :—गेहूँ का अंकुरण, अकुरित, अनाज, लीवर, किडनी, सोयाबिन, मूंगफली, दूध, माँस इत्यादि।

दैनिक आवश्यकता :—1.5 से 3.0 मि.ग्रा.

विटामिन बी-12

विटामिन बी-12 छोटी आंत के सिर्फ इलियम द्वारा अवशोषित होता है। इसका संग्रह लीवर तथा मस्तिष्क में होता है। इसकी खोज 1949 में की गई।

विटामिन बी-12 न्यूक्लियक एसिड तथा न्यूक्लियक प्रोटीन का निर्माण करता है। कोशिकाओं तथा मध्य स्नायुसस्थान के सुसंचालन के लिए आवश्यक

होता है। इसकी खोज 1948 में हुयी थी। इसमें कोबाल्ट तथा फॉस्फोरस दोनों ही उपस्थित होते हैं।

ऐसी मान्यता है कि विटामिन बी 12 की कमी प्रायः निरामिषाहारियों में होती है लेकिन निरामिषाहारियों में भी जो दूध का उपयोग करते हैं उनमें विटामिन बी-12 की कमी नहीं होती। इसकी कमी से परनिसियस रक्तहीनता (अस्थिमज्जा) में लाल रक्त कण बनाना बंद हो जाता है) तथा तंत्रिका संबंधी बीमारियाँ होती हैं। भारतवर्ष में परनिसियस रक्तहीनता के रोगी कम मिलते हैं। यह वृद्धि, विकास, गर्भावस्था के लिए आवश्यक है।

डा. एम. जी हाड्रिन्ज अपने प्रयोगों से यह सिद्ध चुके कर हैं कि दाँतों, गले की पीछे ग्रसनी के टाँसिलों में जीवाणुओं द्वारा बी-12 बनता है। जागते समय 0.2 से 0.3 मी ग्रा दाँतों को बार-बार धोने से तैयार होता है। अफ्रिका तथा दक्षिण पूर्व एशिया व भारत के ग्रामीण शाकाहारी लोगों में बी-12 की कमी नहीं होती है। लामालिडा विश्वविद्यालय के पोषण विभाग के निदेशक डा. यू. डी. रेंजिस्टर ने सिद्ध किया है कि झरनों, कुओं और झीलों के पानी में जो मनुष्य के मल से प्रदूषित नहीं है, पर्याप्त मात्रा में बी-12 मिलता है। बी-12 का 5% बड़ी आँत तथा छोटी आँत के अंतिम छोर द्वारा निर्मित होता है। अत्यधिक मात्रा में प्रोटीन खाने से बी-12 की कमी होती है।

दैनिक आवश्यकता :—0.3 से 2.00 माइक्रोग्राम (एम. जी)

मुख्य स्रोत :—जन्तुज खाद्य पदार्थ जैसे-दूध, माँस, अंकुरित अनाज आदि। अनाजों में यह कम मात्रा में पाया जाता है।

बायोटिन या विटामिन 'एच'

इसका अवशोषण आँतों द्वारा होता है। आवश्यकता पड़ने पर आँतों में स्थित मित्र जीवाणु इस विटामिन का निर्माण कर लेते हैं। एण्टीबायोटिक औषधियों के प्रयोग से इन विशिष्ट जीवाणुओं की मृत्यु हो जाती है। ऐसी स्थिति में जैविक आहारों से इनकी पूर्ति करनी चाहिए। प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट के चयापचय में यह विटामिन भाग लेता है। इसकी कमी प्रायः शरीर में

नहीं होती है। अत्यधिक अण्डे खाने वाले व्यक्ति में इस विटामिन की कमी हो जाती है तथा उनमें निम्न लक्षण दिखते हैं— (1) पैरों तथा हाथों का चर्म रोग (2) नर्वसवेस (3) रक्तहीनता। यह अण्डे के उजले भाग के दुष्प्रभाव को दूर करता है, इसलिये इसे 'एण्टी एग ह्वाइट इन्जूरी फैक्टर' भी कहते हैं। यह कुछ विशिष्ट प्रकार के एन्जाइम को क्रियाशील रखता है। इसकी कमी से त्वचा में धारियाँ, माँसपेशीय शूल, रक्तहीनता, मंदाग्नि तथा हृदयरोग के लक्षण दिखते हैं।

दैनिक आवश्यकता :—150 से 300 (माइक्रोग्राम)

मुख्य स्रोत:—सभी प्रकार के भोज्य पदार्थ, दूध वीयर्स खमीर, मोलासेस, गेहूं का अंकुरण, भ्रूण इत्यादि।

पेन्टोथेनिक एसिड

पेन्टोथेनिक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ सर्वसुलभ होता है। इसका अवशोषण आँतों द्वारा तथा संचय ऊतकों में होता है। आँत में पाये जाने वाले बैक्टिरिया द्वारा इसका निर्माण भी होता है। यह कोलेस्टरॉल वसा की चयापचय क्रिया में तथा कुछ हार्मोन्स के निर्माण में भाग लेता है। यह शरीर में एन्टीबॉडीज के निर्माण, शरीर विकास तथा बालों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। भोजन में इसकी कमी नहीं होती है। भोजन के गलत बनाने की अज्ञानतास्वरूप इसकी कमी हो जाय तो निम्न रोग लक्षण दिखते हैं:—

स्नायु तंत्रिका सम्बन्धी रोग, भूख की कमी, वमन, पेट-दर्द, अपचन, मानसिक-अवसाद, रोगाणु का आक्रमण, नाड़ी गति बढ़ना, निम्न रक्तचाप, पैरों की जलन, जिह्वा के छाले, हृदय गति की अस्थिरता, आमाशयिक शोथ, एड्रिनल ग्रंथि के कार्य में अवरोध, कीटाणुओं का संक्रमण आदि लक्षण दिखते हैं।

दैनिक आवश्यकता :—8·5 से 10 मि. ग्रा. प्रतिदिन।

मुख्य स्रोत :—अंकुरित अनाज, रॉयल जेली, फल, मेवा, हरी पत्ती वाली शाक-भाजी, चाँवल की सफेदी, यकृत, वृक्क इत्यादि।

कोलिन

मेथियोनिन, विटामिन 'बी-12', फॉलिक एसिड तथा कोलिन एक दू
से ग्रन्तर्संबंधित हैं। विटामिन 'बी' ग्रुप के ये तीनों विटामिन लीवर
लिये काफी उपयोगी हैं। कोलिन, यकृत को क्षतिग्रस्त होने से बचाता है
वसा की चयापचय क्रिया में भाग लेता है। कोलिन की उपस्थिति में शरीर
एक प्रकार का विद्युत-चुम्बकीय-द्रव बनता है जिसे एसीटाइल कोलिन कह
हैं। यह तंत्रिका-तंतुओं द्वारा संवेदनाओं का संचरण करता है। इसकी क
से निम्न रोग लक्षण दिखते हैं:— लीवर की चर्बी बढ़ जाना, सिरोसि
किडनी, एड्रिनल, फैफड़े तथा नेत्र संबंधी रोग।

दैनिक आवश्यकता :—250 से 600 मि. ग्रा.।

मुख्य स्रोत :—(1) फल (2) साग भाजी, दाल, सम्पूर्ण तथा अंकुरि
अनाज, दूध, मेवे इत्यादि।

इनोसिटॉल

यह वसा की चयापचय क्रिया में भाग लेता है। लीवर को फ
होने से बचाता है। इसकी कमी से हृदय व लीवर संबंधी रोग हो
हैं। पशुओं में इनोसिटॉल की कमी से निम्न रोग लक्षण देखे गये हैं:-बा
झड़ना, क्षीर-क्षरण-क्रिया वन्द होना, शरीर वृद्धि में रुकावट। इनोसिटॉ
कोलिन तथा बायोटिन के कार्य अन्तर्संबंधित हैं।

मुख्य स्रोत :—फल, दूध, अंकुरित अनाज, यीस्ट, सब्जियाँ, माँस,
इत्यादि।

पारा एमिनो बेन्जोइक एसिड

इसे संक्षिप्त में पी. ए. बी. ए. (पाबा) भी कहा जाता है। पी. ए. ब
ए. का अवशोषण आँतों द्वारा होता है। यह शरीर में बहुत ही कम मा
में जमा (Store) रहता है। शरीर में यह फॉलिक एसिड का निर्माण कर
है। चूहों में प्रयोग करके देखा गया कि यह बालों को झड़ने से रोकता है
यह टायफस बुखार में काफी लाभदायक होता हैं।

मुख्य स्रोत :—चाँवल, अंकुरित अनाज, खमीर, मोलासस, चोकर।

फॉलिक एसिड

इसकी खोज 1941 ई. में हुई। चमकीली हरी पत्तियों में प्रचुरता से होने के कारण इसे फॉलिक एसिड कहा गया। यह चमकीला पीला पदार्थ है जो सूर्य की किरणों में नष्ट हो जाता है। फॉलिक एसिड का अवशोषण आँतों द्वारा होता है। इसका निर्माण आँतों में उपस्थित बैक्टेरियल फ्लोरा द्वारा भी होता है। यह विभिन्न एमिनो एसिड की चयापचय क्रिया में भाग लेता है। अस्थिमज्जा में लाल रक्तकणों के निर्माण में उत्प्रेरक कार्य करता है। श्वेत रक्तकणों तथा कोशिकाओं के निर्माण में भी सहायक होता है। प्यूरिन की कमी से शरीर में यूरिक एसिड की मात्रा बढ़ जाती है तथा मिथाइल ग्रुप के कुछ तत्वों का भी निर्माण करता है। शरीर में इसकी कमी नहीं होती है, लेकिन कमी पर निम्न रोग लक्षण दिखने लगते हैं। यह गर्भपात को रोकता है तथा कुछ एन्जाइम के निर्माण में भाग लेता है। (1) स्प्रू (मानसिक शिकायत, अपचन आदि) (2) गर्भावस्था में इसकी कमी होने से बच्चों में देखें एनिमिया (एक प्रकार की रक्तहीनता) हो जाता है। तथा गर्भवती औरतों को मैक्रोसाइटिक एनिमिया होता है। गर्भपात, अतिसार आदि रोग होते हैं।

मुख्य स्रोत :—सभी प्रकार के अनाज, सोयाबिन तथा अन्य दलहन, सूखे मेवे तथा ताजी सब्जियाँ। हाथ कुटा चावल, गेहूँ का भ्रूण। विटामिन 'बी' के उपर्युक्त सभी विटामिन जल में घुलनशील होते हैं। भोजन बनाने की गलत विधियों से जल्द नष्ट हो जाते हैं अतः सब्जी को अधिक देर पानी में रखने, धोने, मसलने तथा अधिक देर तक पकाने और तलने से अधिकांशतः 'बी ग्रुप' के विटामिन नष्ट हो जाते हैं।

विटामिन 'पी'

इसे र्‌यूटिन या बायोफ्लेवोनॉयड्स भी कहते हैं। यह विटामिन 'सी' का सगा भाई है। शरीर में ये दोनों मिल कर कार्य करते हैं। इसकी कमी से मसूड़ों से खून आना, एक्जिमा, सोरायसिस, चर्म रोग, सिरोसिस यकृत रोग, रक्तस्राव तथा उच्च रक्तचाप रोग होता है। यह एक्स-रे रेडियोसक्रिय दुष्प्रभाव से हमारी रक्षा करता है।

मुख्य स्रोत :—खट्टे फल, अंगूर, आलूबुखारा, बेर, संतरा, नीं हरी मिर्च, काली द्राक्ष इत्यादि ।

विटामिन 'एफ'

यह पॉली अनसेचुरेटेड तथा अनसेचुरेटेड वसा में पाया जाता है यह शरीर के लिए अति आवश्यक है क्योंकि शरीर इसे निर्माण नहीं कर सकता है। इस विटामिन के अभाव में शरीर एवं स्नायविक वृद्धि रुक जाती है, गुर्दे खराब हो जाते है, प्रजनन क्षमता का ह्रास होता है पानी की खपत शरीर में बढ़ जाती है। रक्त में कोलेस्ट्रॉल के थक्के बनं प्रारम्भ हो जाते है। इसके अभाव की पूर्ति होने से सोरायसिस, प्रोस्टेट गड़बड़ी, मोन्गोलिजम, दमा, संधिवात, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप ठी होते है।

मुख्य स्रोत :—कुसुम, सूर्यमुखी, तिल्ली, मूंगफली, मक्का आदि घाणी-तेल। परिशोधित तेल में इसकी तथा अन्य उपयोगी तत्त्वों की काफ कमी हो जाती है। घी, डालडा इत्यादि में बहुत ही न्यून मात्रा में होत है। रसायनज्ञ ओनकेन के अनुसार विटामिन एफ की कमी से सर्दी, जुका खाँसी हो जाती है। शारीरिक एवं मानसिक विकास रुक जाता है।

विटामिन 'सी' अथवा एसकोर्बिक एसिड

सर्वप्रथम ऐसकोर्बिक एसिड का निष्कासन तथा प्रयोगशाला में संश्लेष या निर्माण सन् 1932 ई. में प्रिटस्वर्ग विश्वविद्यालय के डॉ. किंग त उनके सहयोगियों द्वारा किया गया। 1933 में होवर्थ तथा कैरर आदि आ विज्ञानियों ने "सी" की रासायनिक संरचना व गुण सम्बन्धी नवीनतम त प्राप्त किये। लेकिन इसके पूर्व 1907 ई. में नार्वे के डॉ. होल्स्ट त फ्रोकलिथ द्वारा विटामिन 'सी' की खोज कर ली गई थी। 1921 ई. लियोरजाई और जिल्वा ने विटामिन 'सी' को भोज्य पदार्थों से पृथक कर का प्रयत्न किया। यह गन्धरहित, जल में घुलनशील धूप, रोशनी व ता से शीघ्र नष्ट होने वाला क्षार तथा अम्लीय माध्यम में नष्ट नहीं होने वा सफेद रवेदार होता है। शुष्क की अपेक्षा तरल अवस्था में 'सी' शीघ्र नष्ट होता है।

विटामिन 'सी' अथवा ऐसकोर्बिक एसिड दो प्रकार के होते हैं :—

(1) एल-ऐसकोर्बिक एसिड, (2) एल-डिहाईड्रोएसकोर्बिक एसिड। विटामिन 'सी' का अवशोषण आँतों द्वारा अतिशीघ्र होकर पोर्टलशिरा से रक्त संचार द्वारा शरीर की समस्त कोशिकाओं में कार्य के लिये वितरित हो जाता है। विटामिन 'सी' का अधिक प्रयोग करने से शरीर की कोशिकाएँ संतृप्त हो जाती हैं फलतः विटामिन 'सी' का निष्कासन मूत्र तथा न्यून मात्रा में पसीने द्वारा होता है। मनुष्य, सूअर तथा बंदर को छोड़ कर कुछ जानवरों में विटामिन 'सी' का निर्माण शरीर द्वारा स्वयं कर लिया जाता है। यह लोहा तथा कैलशियम के अवशोषण के लिए आवश्यक है। यह रिड्यूसिंग एजेन्ट का कार्य कर लोहे को फेरस अवस्था में परिवर्तित कर देता है जो शीघ्र अवचूषित हो जाता है। 'सी' से चपापचय की क्रिया बढ़ जाती है। एड्रिनल ग्रंथि में एसकोर्बिक एसिड अधिक मात्रा में होता है। क्लोम ग्रंथि, थाइमस, प्लीहा, लीवर, पिट्यूटरी तथा गुर्दे में भी विटामिन 'सी' पाया जाता है। विटामिन 'सी' 0.4 से 1.0 मि.ग्रा. प्रति 100 मि.ग्रा. रक्त में पाया जाता है। विटामिन 'सी' का उपयोग शरीर में निम्न प्रकार से होता है :—

(1) पाचक रसों के निर्माण में, (2) प्रोटीन (विशेषतः फेनाइललेनिन तथा टायरोसिन की चयापचय क्रिया में)। हड्डियों तथा दाँतों में सामान्य कैलसिफिकेशन (Proper Calcification) के लिये विटामिन 'सी' को आवश्यकता होती है। गलत कैलसिफिकेशन से रीढ़ की हड्डियों तथा संधियों आदि में दर्द के लक्षण दीखते हैं। संयोजी ऊतकों, लम्बी हड्डियों के सिरे, दाँत के भीतर सीमेंट वाला भाग, घाव भरने के लिए कोलेगन की जरूरत होती है। कोलेगन का निर्माण तथा नियंत्रण का कार्य विटामिन 'सी' करता है। (4) रक्त वाहिनियों को विकसित करने तथा सशक्त बनाने में। (5) संयोजी ऊतक के निर्माण में। (6) दाँतों को खराब होने से रोकता है। (7) बाह्य इन्फेक्शन से रक्षा करता है। (8) हड्डियों तथा उपास्थि (कर्टिलेज) के निर्माण में सहायक होता है तथा इन्हें सशक्त बनाता है। (9) रक्तस्राव को रोकता है। (10) जले, कटे तथा घाव को शीघ्र भरने में। (11) कोशिका-श्वसन

(Cell-respiration) में। (12) कोलेस्टरॉल को स्टेरवायडस (सेक्स) हार्मोन में परिवर्तन करता है (13) लीवर की सहायता से रक्त में कोलेस्टरॉल को कम करता है। (14) यक्ष्मा, गठिया-जन्य बुखार (र्‍यूमेटिक फिवर) न्यूमोनिया, मलेरिया तथा इन्फेक्शस रोग में उपयोगी होता है। (15) सर्दी, जुकाम, खाँसी, रक्तहीनता, शरीर व मस्तिष्क विकार में विटामिन 'सी' काफी उपयोगी है। (16) विटामिन 'सी' की उपस्थिति में शरीरान्तर्गत लोहे का अवशोषण सही ढंग से होता है। (17) दन्तु धातु, कोशिका, गुदा, एनेमेल, सीमेंट तथा हनुअस्थि की कोशिकाओं को सशक्त बनाता है।

अभावजन्य रोग:—विटामिन 'सी' की कमी से प्रायः रक्तस्राव, पायरिया, हड्डियों तथा उपास्थियों (कर्टिलेज) का अपविकास तथा कमजोरी, माँसपेशियों का डिजेनरेशन, मानसिक तथा मस्तिष्कीय विकास में रुकावट, इन्फेकशन के प्रति संवेदनशीलता आदि मुख्य लक्षण दिखते है। विटामिन 'सी' की कमी से बहुत ही भयंकर रोग, स्कर्वी होती है। इसमें पैर, जंघा, मसूड़े सूज जाते हैं। हड्डियाँ तथा दाँत कमजोर हो जाते हैं क्योंकि हड्डियों को बनाने वाली बोन मैट्रिक्स का विकास रुक जाता है। वजन घटने लगता है। हड्डियाँ मुलायम तथा स्थानच्युत होने लगती हैं। शरीर पीला और कमजोर हो जाता है। रक्तस्राव तथा रक्तहीनता की स्थिति उत्पन्न होती है। दाँतों से मवाद तथा रक्त निकलने लगता है। समय रहते स्कर्वी रोग से सावधान हो जाना चाहिये, नहीं तो रोग बिगड़ जाते हैं। हाल ही में रशियन आयुर्विज्ञानियों ने बुढ़ापे को रोकने में विटामिन 'सी' का सफल प्रयोग किया है।

ब्रिटेन की डॉ. स्पिटल ने कुछ व्यक्तियों को खूब कोलेस्टरॉल युक्त आहार के साथ विटामिन 'सी' युक्त फल एवं सब्जियाँ भी प्रचुर मात्रा में देकर देखा कि उनके रक्त-कोलेस्टराल में वृद्धि नहीं हुई, बल्कि कम ही हुआ। फिर उन्होंने कॉलेस्टरॉल वृद्धि के कारण धमनी-काठिन्य से ग्रस्त 25 रोगियों को प्रचुरता से विटामिन 'सी' देकर देखा कि युवकों में कॉलेस्टरॉल तो कम हुआ तथा अधिक वय के लोगों में वृद्धि पाई गई। डॉ. स्पिटल के अनुसार विटामिन 'सी' कॉलेस्टरॉल को धमनियों से पृथक कर यकृत में पहुँचा देता है जहाँ इससे पित्त का निर्माण होता है। डॉ. स्पिटल ने 60 शल्य रोगियों पर

विटामिन 'सी' का प्रयोग करके देखा है। उनमें रक्त का थक्का बनने की स्थिति दूर हो जाती है। चेकोस्लोवाकिया के डॉ. एमिल गिन्टर भी खरहों पर प्रयोग कर इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि विटामिन 'सी' कोलेस्टरॉल को कम करता है।

मुख्य स्रोत:—आँवला, संतरा, नीबू, टमाटर, चकोतरा, कमरख, अमरूद, अनन्नास, पत्तागोभी तथा खट्टे फल, ताजे फल, ताजी हरी सब्जियाँ, सभी प्रकार के अंकुरित अन्न। आँवले को विटामिन 'सी' का सम्राट तथा अमरूद को साम्राज्ञी कहा जाता है।

दैनिक आवश्यकता :—60 से 90 मि. ग्रा.। वायुमण्डल के संपर्क में आते ही विटामिन 'सी' का ऑक्सीकरण शुरू हो जाता है। हवा के संपर्क से भोजन को उबालने, गर्म करने, डिब्बाबन्द व संग्रह करने, धोने, मसलने, काटने इत्यादि क्रियाओं से विटामिन 'सी' की नष्ट होने की अधिक संभावना रहती है। यह जल में अति शीघ्रता से घुलता है। सब्जी को पहले साफ कर सावधानीपूर्वक काटें। एक पतीली में सब्जी रख कर ऊपर से गरम पानी डाल दें। फिर मसालें में हल्दी या धनिया डाल कर ढक्कन से ढंक कर रखें। बर्तन को वायुरुद्ध करदें। स्टोव पर 10 मिनट रखें। सब्जी तैयार हो जायेगी। कुकर की बनी सब्जी स्वास्थ्यवर्द्धक होती है।

उपर्युक्त विटामिनों के अतिरिक्त अन्य विटामिनों की खोज जारी है। विटामिन 'पी' तथा 'एफ' का पता लगाया जा चुका है। विटामिन 'पी' संतरे, नारंगी, चाय की पत्ती तथा नीबू आदि खट्टे फल के छिलके में पाया जाता है। विटामिन 'पी' रक्तस्राव को रोकता है तथा रक्तवाहिनियों के लचीलेपन को बनाये रखता है। इसके अतिरिक्त यह रक्तचाप, कैन्सर में भी उपयोगी है। विटामिन 'एफ' आवश्यक असंतृप्त वसाम्ल (Essential unsaturated fatty acid) तथा अंकुरित अन्न (Sprouted grains) में होता है। ये जन्तुज वसाम्ल में नहीं होते हैं। विटामिन 'एफ' की कमी से गुर्दे की खराबी, एग्जिमा, श्वांस-कष्ट, सोरोयसिस, संधिवात आदि रोगलक्षण दिखते हैं।

विटामिन 'जी, आई, जे, एल, एम, यू, और डब्ल्यू' के रासायनिक सूत्र मालूम कर लिए गए हैं। इनके कार्य के विषय में खोज जारी है। भविष्य में विटामिन के क्षेत्र में और अधिक खोज होने की आशा है। फलतः स्वास्थ्य-संरक्षण एवं संवर्द्धन के क्षेत्र में नये आयाम प्रकट होंगे।

10 | खनिज लवण (Mineral Salts)

शरीर का 4 प्रतिशत खनिज लवण होता है। इनमें कैल्शियम तथ फॉसफोरस की मात्रा अधिक होती है।

मुख्य खनिज तत्त्व :—कैल्शियम 1.5 से 2.2% फॉसफोरस 0.8 से 1.2%, पोटाशियम 0.35% सल्फर 0.25%, सोडियम 0.15%, क्लोरि 0.15% मैग्नेशियम 0.05%।

सूक्ष्म परन्तु आवश्यक खनिज लवण :—लोहा 0.004% मैंगनी 0.0003%, ताम्बा 0.00015%, आयोडिन 0.0004%

शरीर के लिये अन्य आवश्यक खनिज तत्त्व :—कोबाल्ट, फ्लोरिन, जस्ता

सम्भाव्यत: खनिज तत्त्व (Probably essential):--क्रोमियम, मोलिब्ड नम, सेलेनियम। ऐसे खनिज तत्त्व जिनका शरीर में कार्य अज्ञात है परन् आवश्यक होते हैं :—अल्यूमुनियम, आर्सेनिक, बेरियम, ब्रोमिन, कैडमियम शीशा, निकल, सिलिकॉन, स्ट्रान्मियम, वैनाडियम इत्यादि।

शरीर के लिये आवश्यक खनिज तत्त्वों में अधिकांशत: क्षारीय होते हैं इसलिये ये शरीर में क्षारत्त्व बनाये रखते हैं। यदि शरीर में अम्लता बढ़ जाती है तो शरीर विभिन्न रोगों का शिकार बन जाता है। खनिज तत्त्व हार्मो हिमोग्लोबिन, हड्डियों, ऊतकों, माँसपेशियों तथा कुछ इन्जाइमों को क्रिया शील करते है तथा निर्माण में भाग लेते हैं। इसके अतिरिक्त खनिज लवण स्नायु संस्थान तथा पेशीय ऊतकों के निर्माण तथा क्षार का नियंत्रण और संतुलन विटामिन तथा अन्य तत्वों के पाचन तथा सात्मीकरण तथा माँसपेशियों के विस्तारित एवं संकुचित करने के लिये आवश्यक होते हैं। प्रतिदिन प्रति व्यक्ति द्वारा 20 से 30 ग्राम खनिज लवणों का निष्कासन मल मूत्र द्वारा सोडियम पोटाशियम तथा कैल्शियम के क्लोराइड, सल्फेट तथा फॉस्फेट के रूप में होता है। प्रोटीन माध्यमों से गंधक लवण प्राप्त होते हैं। खाद्य पदार्थों में लवणों की मात्रा उपजाऊ जमीन की स्थिति तथा उर्वरक पर निर्भर करती है। जैसे लोहा, फॉस्फोरस आयोडिन रहित जमीन पर उपजे खाद्य पदार्थों में इन तत्त्वों की कमी हो जाती है।

खनिज तत्त्वों का संक्षिप्त विवरण

कैल्शियम (Calcium-Ca)

शरीर में उपस्थित कुल कैल्शियम का 99% हड्डियों एवं दाँतों में पाया जाता है। सिर्फ एक प्रतिशत कैल्शियम रक्त तथा अन्य शरीर-द्रवों एवं ऊतकों में होता है। शरीर-द्रव में कैल्शियम, सोडियम, पोटाशियम, मैग्नेशियम सामान्य अनुपात में पाये जाते हैं। दाँत तथा हड्डियों के निर्माण तथा इन्हें मजबूत करने में कैल्शियम का विशिष्ट महत्व है। जीवन-संचालन के लिये कैल्शियम अति आवश्यक है। कैल्शियम हृदयगति को सामान्य बनाये रखता है। माँसपेशी व तन्तुओं के विधिवत् आंकुचन के लिये इसकी विशेष आवश्यकता होती है। रक्तस्राव के समय रक्त का थक्का बनाने में कैल्शियम की सख्त आवश्यकता होती है। कोशिकाओं की पारगम्यता बनाये रखने में तथा पाचक रसों को क्रियाशील करने में यह सहायता करती है। अमेरिकन वैज्ञानिक डा. ए. सी. शेरमेन कुछ जन्तुओं पर कैल्शियम सम्बन्धी प्रयोग से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि कैल्शियम जीवनी शक्ति के साथ-साथ आयु को भी बढ़ाता है।

कैल्शियम का अवशोषण छोटी आँत द्वारा होता है। कैल्शियम का अवशोषण शरीर की विभिन्न स्थितियों पर निर्भर करता है। जैसे गर्भावस्था स्तन्यकाल तथा बाल्यावस्था के समय कैल्शियम का अवशोषण बढ़ जाता है। कैल्शियम के अवशोषण के लिये आमाशय रस तथा विटामिन डी. की आवश्यकता होती है। वसा एवं सेलुलोज की अत्यधिक मात्रा, आक्जेलिक एसिड (प्रायः हरी सब्जियों में पाया जाता है) तथा फाइटिन (प्रायः अनाजों में पाया जाता है) कैल्शियम तथा फास्फोरस के अवशोषण में बाधा उत्पन्न करते हैं। कुछ खाद्य पदार्थों में आक्जेलेट की मात्रा इतनी अधिक होती है कि वे पकाने पर कैल्शियम के साथ क्रिया करके अघुलनशील तत्व कैल्शियम आक्जेलेट का निर्माण करते हैं जिनका अवशोषण शरीर द्वारा नहीं हो पाता है। तिल, पालक तथा चौलाई में आक्जेलेट की मात्रा अधिक होती है। कैल्शियम सारे शरीर में रक्त द्वारा भ्रमण करता है। रक्त में कैल्शियम की सान्द्रता को

पैराथॉयराइड हार्मोन नियन्त्रित करता है। चीनी तथा परिशोधित आहार शरीर में जब कैल्शियम का अभाव होने लगता है तो वैसी परिस्थिति में शरीर कैल्शियम की पूर्ति हड्डियों द्वारा करता हैं और जब अधिक होता है तो हड्डियों में जमा हो जाता है। भोजन में कैल्शियम की मात्रा अधिक होने पर वह पेशाब द्वारा बाहर निकल जाता है। प्रतिदिन 270 से 300 मि ग्रा. कैल्शियम मूत्र, पसीना एवं मल द्वारा बाहर निकल जाता है। लाइसिन प्रोटीन, लेक्टोज शर्करा विटामिन सी. तथा डी. और आमाशयिक रस कैल्शियम के अवचूषण के लिए आवश्यक हैं।

कैल्शियम की कमी से प्राय: वही रोग होता है जो विटामिन डी. की कमी से होता है। ऑस्टियोमलेसिया तथा ऑस्टियोपोरोसिस कैल्शियम तथा फॉस्फोरस के अत्यधिक व गलत अवशोषण तथा इसकी गलत चयापचय क्रिया के कारण होता है। कैल्शियम की कमी से हृदय रोग, अंग-संचालन में कठिनाई, स्राव आदि लक्षण दिखते हैं। रक्त में इसकी मात्रा अधिक हो जाने से हाइपर-कैलसेमिया (वमन, पेट, एवं आँत से रक्तस्राव, उच्चरक्तचाप) होता है।

दैनिक आवश्यकता:—0.6 से 1.30 ग्राम। बाल्यावस्था तथा स्तन्यकाल गर्भावस्था के समय 1.5 से 2.0 ग्राम. तक।

मुख्य स्रोत :—दूध तथा दूध से बनी चीजें, पत्तोंवाली सागभाजी, हरी सब्जियाँ, कन्द मूल वाली सब्जी, मडुवा आदि। यह चाँवल में अत्यल्प मात्रा में पाया जाता है। इसलिये चीनी तथा चॉवल खाने वाले व्यक्तियों में प्रायः इसकी कमी हो जाती है। पालक तथा अन्य सब्जियों को कच्चा खाने से ही कैल्शियम की पूर्ति होती है। आग के सम्पर्क में आने से कैल्शियम ऑक्जेलिक एसिड से क्रिया कर कैल्शियम आक्जेलेट बनाता है जो पाखाना-पेशाब द्वारा बाहर निकल जाता है।

फॉस्फोरस (Phosphorus-P)

उपयोगिता एवं मात्रा की दृष्टि से शरीर में कैलशियम के बाद फॉस्फोरस का ही स्थान है। 80 प्रतिशत फॉस्फोरस कैलशियम के साथ संयुक्त होकर कैल्सियम फॉस्फेट के रूप में दाँतों, हड्डियों तथा स्नायविक

कोषों के निर्माण में भाग लेता है । 25 से 50 मि. ग्रा. तक फॉस्फोरस प्रति 100 मि. ली. रक्त प्लाज्मा में होता है । यह रक्त के अम्लत्त्व एवं क्षारत्त्व को संतुलित रखता है । वसा तथा कार्बोज की चयापचय क्रिया में भाग लेता है । माँसपेशियों के कार्य, प्रत्येक कोष-केन्द्रक विशेष रूप से मस्तिष्कीय व स्नायविक कोषों के निर्माण तथा कोषों के बहुगुणन विभाजन के लिए उपयोगी है । हड्डियों एवं दाँतों के निर्माण में कैल्सियम तथा फॉस्फोरस का बहुत महत्व है । ये एक दूसरे के बिना अस्तित्वहीन हैं । फॉस्फोरस का अवशोषण तथा सात्मीकरण विटामिन डी. की उपस्थिति में ही हो पाता है । अनाजों में उपलब्ध फाइटिन फॉस्फोरस को अनुपयोगी बना देता है । अत्यधिक चिन्ता, भय अर्थात मानसिक अस्वस्थता के समय यह फॉस्फेट के रूप में मूत्र द्वारा बाहर निकलने लगता है ।

फॉस्फोरस की कमी से वही रोग होते हैं जो कैल्सियम तथा विटामिन डी. की कमी से होते हैं ।

मुख्य स्रोत :—फॉस्फोरस प्रोटीन-सयोजित रूप में मिलता है । दूध का प्रोटीन कैसिन इसका श्रेष्ठ स्रोत है । साबुत चना, दालें, मटर, सोयाबिन अंकुरित अनाज, कणी, चोकर सभी प्रकार के पूर्णान्न में प्रचुर मात्रा में मिलता है ।

स्नायु-संस्थान के सफेद तत्व, मस्तिष्क के भूरे भाग, तन्तु लसिका आदि में पाया जाता है । इसका अवचूषण छोटी आँत द्वारा तथा निष्कासन मल-मूत्र द्वारा होता है । आमाशयिक रस की अम्लता फॉस्फोरस के शोषण में सहायक है ।

पोटाशियम (Potassium-k)

कोशिकाओं, माँसपेशियों तथा लाल रक्तकणों में पोटाशियम अधिक पाया जाता है । पोटाशियम अन्य खनिज लवणों से सहयोग कर माँस-पेशियों को क्रियाशील बनाने, हृदय गति को नियंत्रित करने, संवेदनाओं को लाने ले जाने तथा शरीर-द्रव को संतुलित रखने में सहयोगी होता है । यकृत, माँसपेशियों एवं उपास्थियों में ग्लाइकोजिन के निर्माण में भाग लेता है । अस्थियों में उत्तम कैल्सीफिकेशन, माँसपेशियों के संकोचन, विष-

निष्कामन, हृदय गति का नियमन, स्नायविक उत्तेजना, संवाहन, ऑक्सीज धारण आदि कार्य पोटाशियम द्वारा होता है। पेशियों तथा तन्तुओं को लचील रखने मस्तिष्क व गुर्दे की कोशिकाओं को सामान्य आकार-प्रकार में बना रखने तथा लाल रक्तकणों के लिए पोटाशियम आवश्यक तत्त्व है। प्रोटीन हीनताजन्य रोग क्वाशियकर, रक्तहीनता, मधुमेही अम्लता, बहुमूत्रल औषधि के प्रयोग, एड्रिनल ट्यूमर, गुर्दे की खराबी आदि स्थितियों में पोटाशि की कमी हो जाती है। एडीसन रोग (एड्रीनल कार्टीकनल हारमोन की कमी में पोटाशियम रक्त में अधिक बढ़ जाता है।

मुख्य स्रोत :—सभी प्रकार के अंकुरित अनाज, फल एवं सब्जि जैसे : लौकी, करेला, टमाटर, आलू, पालक इत्यादि। इसकी कमी प्रा नहीं होती है। पेशाब द्वारा प्रतिदिन 2 ग्राम पोटाशियम व्यर्थ निकल जा है। इसकी कमी से गुर्दों की खराबी, विषमयता, मंद विकास, स्नायवि रोग, आक्षेप, कमजोरी, आलस्य, अनिद्रा, यकृत दोष, हृदय गति मं हृदय, गुर्दे एवं रक्त वाहिनियाँ क्षतिग्रस्त हो सकती है।

सोडियम (Sodium-Na)

सोडियम, रक्तप्लाज्मा तथा अन्य शारीरिक द्रवों में पाया जाता है क्षार, अम्ल और आस्मोटिक दबाव को संतुलित रखता है। शरीर के सम अंगों को क्रियाशील रखने, रक्त के संगठन, पानी के संतुलन, मल, मूत्र पसीने के रूप में पानी का निष्कासन, माँसपेशियों का सामान्य संको तथा स्नायुओं द्वारा प्राप्त संवेदना के नियंत्रण एवं संतुलन का कार्य कर है। थूक, पित्त तथा क्लोम रस के निर्माण में भी भाग लेता है।

सोडियम, आँतों द्वारा शीघ्र अवचूषित होकर कार्य के लिए वितरि हो जाता है। एड्रिनल कार्टीकल हार्मोन सोडियम को नियंत्रित करता है जब यह हार्मोन बढ़ जाता है तो ऊतकों में सोडियम की मात्रा बढ़ने पानी जमा (Oedema) हो जाता है। हार्मोनल अव्यवस्था के कारण गर्भ एवं माहवारी के समय शरीर में सोडियम की मात्रा बढ़ जाती है शरीर में सोडियम की मात्रा बढ़ने का सीधा प्रभाव गुर्दों एवं रक्त पर होता है। रक्तचाप बढ़ जाता है।

सोडियम, फॉस्फेट तथा क्लोराइड के रूप में पसीना, पाखाना व पेशाव द्वारा निष्कासित होता है । शरीर में इसकी कमी नहीं के बराबर होती हैं लेकिन अतिसार में निर्जलीकरण की स्थिति में सोडियम की काफी कमी हो जाती है । फलतः मांसपेशियों में शिथिलता, कमजोरी, आक्षेप, आँतों की रुकावट, पायरिया, वमन, हैजा, निम्न रक्तचाप इत्यादि दीखते हैं। बालक प्रायः अतिसार, सोडियम की कमी एवं निर्जलीकरण से मर जाते है। निर्जलीकरण की स्थिति में 10-15 ग्राम नमक को एक ग्लास पानी में घोल कर 2 चम्मच शहद या 100 ग्राम चीनी, ग्लूकोज भूरा गुड़ या पीसी मिश्री डाल कर घोल बना लें । उसे चम्मच से धीरे-धीरे पिलायें । इस प्रयोग से विश्व में लाखों बच्चों की जान बचाई जा सकी है। हमारे अस्पताल में भी निर्जलीकरण से ग्रस्त सैकड़ों रोगियों पर इस पेय का सफल प्रयोग किया गया है। बाद में गाजर, चुकन्दर, लौकी का सूप देना चाहिए ।

प्रतिदिन 0.5 ग्राम सोडियम चाहिए जो हमें साग-भाजी से उपलब्ध हो जाता है। बाहर से सोडियम के लिए नमक लेना जरूरी नहीं है। बाहरी नमक सिर्फ स्वाद के लिये प्रयोग किया जाता है, स्वास्थ्य से उसका कोई संबंध नहीं है। शरीर में नमक की मात्रा बढ़ जाने से उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, जलोदर, सूजन, कार्डियक व किडनी फैल्यौर, सिण्ड्रोम, जुकाम आदि रोग होते हैं ।

सोडियम का मुख्य स्रोत नमक (Nacl), पालक एवं अन्य पत्तों वाली साग-भजियाँ, हरी सब्जियाँ, दूध, पनीर, किशमिश, प्याज आदि। आहार में पोटाशियम की अधिकता होने से सोडियम का निष्कासन तीव्रतर हो जाता है। यही कारण है कि किडनी फैल्योर, उच्च रक्तचाप में पोटाशियम-युक्त आहार हम अधिक बताते हैं ।

पेरिस विश्वविद्यालय के जैव-रसायनज्ञ प्रो. जोसेफ स्टोल्कोबस्की तथा फ्रांस के प्रसूति रोग विशेषज्ञ डॉ. फ्रामकोइस पापा ने अनेक औरतों पर प्रयोग कर एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इसके अनुसार प्रजनन के समय अधिक तापमान पर शरीर में सोडियम तथा पोटाशियम आयन की मात्रा अधिक होने पर नर (बेटा) तथा निम्न तापमान पर केल्सियम तथा मैग्ने-

शियम आयन अधिक होने पर मादा (बेटी) प्राणी पैदा होते हैं। पुत्र के लि गर्भाधान के 3 से 6 माह पूर्व से निम्नलिखित सोडियम तथा पोटेशियम यु आहार लेना चाहिए—सूखे मेवे, सूखे अंजीर, छुहारा, सूखे वेर, फलों त सब्जियों का रस, जौ, चाँवल, सोयाबीन, कच्चा लहसुन, पॉपकार्न, शहद, गुड़, नारियल, जैतून, खमीर, आचार, अण्डे, केला, खजूर, आड़ संतरा, चेरी, माँस, मछली, पत्तागोभी, शोरवा, कच्ची लौकी, खीरा, मक्का, कच्ची चुकन्दर, वनस्पति तेल, मटर, टमाटर, सूजी, चना, उड़ मूँग, मसूर, मोठ, मटर, अरहर, चौलाई, सिलरी, धनिया, मेथी, नीम नाजुक पत्ते, कुसुम, पालक, मूली, गाजर, करेला, सेम, फूलगोभी, कटह गाँठ गोभी, कमल गट्टा, कच्चा आम, लाल सेम, टिण्डा, हरा टमाटर, कद्दू, जीरा, धनिया, सेव, लीची, खरबूजा, अनन्नास, गुलाबजामुन त अधिक मात्रा में नमक खायें।

पुत्र प्राप्ति के लिये गर्भाधान के 3 से 6 माह पूर्व ये निम्न खाद्य पदा नहीं खायें :—बादाम, अखरोट, दूध तथा दूध से बने पदार्थ, मिल्क ब्रे आइसक्रीम, खीर, केकड़ा, अण्डों से बने पदार्थ, सलाद के पत्ते, सूखा लहसु चॉकलेट, राई तथा सरसों की पत्तियाँ। बेटी के लिये दूध (प्रतिदिन 8 मि. ली) माँस, मछली, बिना नमक का मक्खन, रोटी, चॉवल, सू शक्कर, कन्द के आटे की रोटी, मक्की का आटा, शलगम, प्याज, मट खीरा, मूली, टमाटर, बैंगन, सलाद की पत्तियाँ, अखरोट, बादाम, मूँगफ सेव, नाशपाती, स्ट्राबेरी, रास्पबेरी, अनन्नास, आड़ू, जैम, चीनी, शह काली मिर्च, विना नमक की चटनियाँ तथा मसाले लें।

बेटी चाहने वाले गर्भाधान के 3 से 6 माह पूर्व निम्न आहार न लें :- सब्जियाँ, कॉफी, चाय, चाकलेट, फलों का रस, किसी प्रकार का नशीला माँस, मछली, पनीर, नमकीन, रोटी, बिस्कुट, पॉपकॉर्न, पालक, पत्तागो गोभी, मशरूम, कच्चे टमाटर, सोयाबीन, सूखी मटर की फलियाँ, मिठाइयाँ, चाकलेट, खाने का सोडा, सॉस डिब्बा बन्द सब्जियाँ, माँस, मछ नमकीन, मक्खन, मार्मरीन तथा किसी प्रकार के डिब्बाबन्द पकवान। फ्रामकोइस पापा ने 155 माताओं पर उपर्युक्त आहार का प्रयोग कि

जिसमें 123 माताओं की मनोकामना पूर्ण हुई। परन्तु यह प्रयोग अभी तक वैज्ञानिक कसौटी पर अच्छी तरह कसा नहीं जा सका है। मेरे मित्र भूगर्भ भौतिकविज्ञ भी दिलीप नायक ने अपने तीन मित्रों पर उपर्युक्त आहार का सफल प्रयोग किया है।

क्लोरिन (Chlorine-cl)

सोडियम की तरह क्लोराइड आयन भी शरीर में जल्दी से घुलमिल जाते हैं। यह शरीर द्रव रक्तप्लाज्मा तथा कोशिकाओं में पाया जाता है। यह एक प्रमुख अम्लीय तत्त्व है, जो क्षार, अम्ल तथा ऑस्मेटिक दबाव को संतुलित रखता है। आमाशय से निकलने वाले पाचक रस हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का निर्माण करता है। शारीरिक वृद्धि पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। शरीर से कचरे को निकाल कर सफाई करता है। शरीर की गन्दगी युक्त नमी को अवचूषित कर कोशिकाओं को स्वच्छ बनाता है। रक्तशोधन कर मोटापा नही आने देता तथा मद्य-प्रभाव-नाशक है। माँसपेशियों को भी सशक्त बनाता है। रक्तचाप को नियंत्रित रखता है।

मुख्य स्रोत :—प्राय: सोडियम, पोटाशियम आदि तत्त्वों के क्लोराइड के रूप में खाद्य पदार्थों से पर्याप्त मात्रा में मिलता है। गाजर, टमाटर, नारियल, केला, खजूर, सलाद, अंकुरित अनाज, नीबू, पनीर, साधारण नमक तथा सभी प्रकार की ताजी हरी सब्जियों एवं फलों में मिलता है। इसकी कमी प्राय: नहीं के बराबर होती है।

इसका अवचूषण छोटी आँत द्वारा होता है। इसका विसर्जन सोडियम जैसा ही होता है।

इसकी कमी से पाचन की गड़बड़ी, रक्त विषाक्तता, पानी रोकने की शक्ति की कमी तथा महिलाओं को माहवारी संबंधी रोग होते हैं।

गंधक (Sulphur—S)

शरीर की सभी कोशिकाओं में सल्फर पाया जाता है। यह प्रोटीन के रूप में हमें प्राप्त होता है। प्रोटीन में करीब 1 प्रतिशत गंधक (सल्फर) होता है। सिस्टिन तथा मेथियोनिन नामक प्रोटीन के रूप में विशेषत: प्राप्त होता है। यह त्वचा, नाखून के रंग, इन्सुलिन, थाइमिन, ग्लूटेथाइन आदि हार्मोनों,

लार व पित्त रस, शरीर के तन्तुओं तथा बालों के निर्माण, बच्चों के विकास, रक्तशोधन, प्रोटीन के पाचन, अवशोषण तथा उपापचय, ऑक्सीकरण, स्नायु उत्तेजन, हृदय गति नियंत्रण में सहायक है। शरीर को प्रदूषित होने से रोकता है तथा पाचन क्रिया के दौरान विषघ्न प्रभाव डालता है। क्षत भाग का निर्माण करता है। नाड़ी-संस्थान को शक्ति प्रदान करता है। रीढ़ की हड्डी, आँखें, गुर्दों तथा स्नायु मंडल को सक्षम, सक्रिय व शक्तिशाली बनाता है। चिकने स्वस्थ बाल तथा आभामय, गुलाबी नूरानी चेहरा बनाये रखने के लिये सल्फरयुक्त आहार, गाजर, टमाटर, पत्तागोभी, प्याज, सोयाबीन का दूध, दही, अंकुरित अनाज, मूँगफली, पनीर खायें। अधिक मात्रा में लिया गया सल्फर, पेशाब से बाहर निकल जाता है।

मैग्नेशियम (Magnesium-Mg)

शरीर में स्थित कुल मैग्नेशियम का 70 प्रतिशत हड्डियों में फॉस्फेट तथा कार्बोनेट के रूप में पाया जाता है, बाकी माँस-पेशियों में कैल्सियम के साथ रहता है। पेड़-पौधों, साग-भाजियों के पत्तों में क्लोरोफिल में अधिक मात्रा में पाया जाता है। यह स्नायु-संस्थान को सबल एवं नियंत्रित करता है। मैग्नेशियम हड्डियों व दाँतों, माँसपेशियों, हृदय गति, स्नायु तथा ऊतकों का निर्माण, नियंत्रण एवं उन्हें क्रियाशील करता है। यह कोष्ठबद्धता को दूर करता है। यह कार्बोहाइड्रेट की चपापचय क्रिया, फेफड़ों, तन्तुओं तथा कुछ एन्जाइमों के निर्माण तथा उन्हें क्रियाशील करने में भाग लेता है।

मैग्नेशियम की कमी से स्नायविक उत्तेजना चिड़चिड़ापन (Nervous irritability) ऐंठन (Convulsions) तथा स्फटिक शिरा (शिराओं का फैलना), माँसपेशियों का कम्पन, प्रलाप, शारीरिक, स्नायविक, बौद्धिक व मानसिक विकास की कमी, कमजोर अस्थि एवं दाँत तथा मूत्र यंत्र संबंधी रोग होते हैं। टीटेनी रोग में रक्त में कैल्सियम तथा मैग्नेशियम का स्तर नीचे आ जाता है। शराब पीने वालों में मैग्नेशियम की कमी हो जाती है फलतः संज्ञाहीनता एवं सिरोसिस के लक्षण दीखते हैं। मैग्नेशियम 200 से 300 मि ग्रा. प्रतिदिन चाहिए। 20 मि. ग्रा. प्रतिदिन शरीर से निष्कासित हो जाता है। रक्त द्वारा अत्यधिक अवचूषित होने पर पेशाब

द्वारा निकाल दिया जाता है। शरीर में प्रदूषण को रोकता है तथा उसे बाहर निकालता है । मुख्य स्रोत-अंकुरित अनाज, फल, सब्जियाँ, फलियाँ तथा छोमित्राँ, दूध, पूर्णान्न आदि अति आवश्यक सूक्ष्म पोषक खनिज तत्त्व होते हैं।

लोहा (Iron—Fe)

लोहा, परम आवश्यक तत्त्व है । शरीर में यह सूक्ष्म मात्रा में होता है लेकिन इसकी उपयोगिता अपार है । शरीर में लोहे का 70 प्रतिशत भाग हिमोग्लोबिन में, 4 प्रतिशत माँसपेशियों में मायोग्लोबिन के रूप में, 24 प्रतिशत यकृत, प्लीहा, अस्थिमज्जा तथा गुर्दों में होता है । मात्र एक प्रतिशत रक्तप्लाज्मा तथा अन्य ऑक्सीकारक एन्जाइम में रहता है । फेफड़ों में श्वास से प्राप्त ऑक्सीजन हिमोग्लोबिन से क्रिया कर ऑक्सी हिमोग्लोबिन (HbO_2) बनाता है जो रक्तसंचार द्वारा समस्त अंगों में ऑक्सीकरण क्रिया में भाग लेता है। माँसपेशियों में स्थित मायोग्लोबिन ऑक्सीजन को माँसपेशियों में अवचूषित कर रखता है। हिमोग्लोबिन तथा मायोग्लोबिन लोहा तथा प्रोटीन का सम्मिश्रण है। लोहे की कमी से थकान, बेचैनी व रक्तहीनता तथा ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता में कमी हो जाती है। लोहे का अन्य उपयोग बच्चों के शारीरिक विकास, पाचन रसों के स्राव, ऑक्सीडेशन एन्जाइम तथा, लाल रक्त कणों के निर्माण में होता है।

लोहे के अणु अम्लीय माध्यम में घुलनशील हैं इसलिए इसका पाचन आमाशय तथा अवशोषण आँतों में होता है । लोहे के दो आयन होते हैं फेरस तथा फेरिक । फेरस आयन शीघ्रता से अवशोषित होता हैं। फेरिक आयन को फेरस में परिवर्तित होने के लिए विटामिन सी. तथा ई. की आवश्यकता होती हैं । स्वस्थ व्यक्ति में 10 प्रतिशत ही लोहा अवशोषित होता है। डॉ. मूर के अनुसार स्त्रियों में माहवारी, गर्भावस्था तथा स्तन्य-काल तथा रक्तहीनता की स्थिति में लोहे का अवशोषण 45 से 64% तक होता है। कुछ कसरतों या यौगिक क्रियाओं द्वारा लोहे की अवशोषण क्षमता बढ़ती है।

रक्तप्लाज्मा में लोहा प्रोटीन के सम्मिश्रण सिडरोफिलिन के रूप में

होता है। लाल रक्तकणों का जीवन 100 दिन का होता है। इनकी मृत्यु से 27 से 28 मि. ग्रा. लोहा प्रतिदिन प्राप्त होता हैं जो यकृत तथा प्लीहा द्वारा हिमोग्लोबिन के पुनर्निमाण में काम आता है। प्रतिघन मि.मी. रक्त में 50 लाख लाल रक्त कण होते हैं।

आँतों के रोग, हाइपर-एसीडिटी, अतिसार, यकृत व प्लीहा की खराबी मलेरिया, हुकवर्म, रक्तस्राव तथा माहवारी के समय शरीर में लोहे की कमी हो जाती है। डा. मूर के अनुसार महिलाओं में प्रतिमाह 14 से 28 मि. ग्रा. लोहा माहवारी से निकल जाता है अतः महिलाओं को ज्यादा लोहे की जरूरत होती हैं। बाल्यावस्था व नवयौवन में, गर्भावस्था तथा स्तन्यकाल की स्थिति में लोहे की मात्रा 8 से 18 मि. ग्राम प्रतिदिन हो जाती है। लोहे की कमी से हाइपोक्रोनिक रक्तहीनता, रक्त कोशिकाएँ लाल की जगह पीली दिखने के कारण चेहरा एवं शरीर निस्तेज तथा मुरझाया दिखने लगता है।

छोटी आँत में स्थित फैरीटीन लोहे के शोषण पर नियंत्रण रखते हैं। आँतों द्वारा अवशोषित लोहा प्लाज्मा से निकल कर अस्थि मज्जा में प्रवेश कर हिमोग्लोबिन का निर्माण करता है। लोहे के अवशोषण के लिए विटामिन सी. बी. तथा ई. की जरूरत होती है। अनाजों में उपलब्ध फायटेट्स लोहे के साथ मिल कर ऐसे यौगिक बनाते हैं जो लोहे के अवशोषण में बाधा उत्पन्न करते हैं। आहार में न्यून मात्रा में कैल्शियम होने से फॉस्फेट भी लोहे के साथ मिलकर अघुलनशील यौगिक बनाते हैं। हुकवर्म, डायरिया एवं अन्य पैथोजैनिक कीटाणु लोहे के अवशोषण में बाधा डालते हैं।

पेशाब, पसीना, बाल, त्वचा व मल द्वारा प्रतिदिन करीब 1 मि. ग्राम लोहा उत्सर्जित होता है। महावारी के समय 2 मि. ग्रा. अतिरिक्त लोहा प्रतिदिन निकल जाता हैं। पसीने में उपस्थित लोहा यह सिद्ध करता है कि आँतों द्वारा इसका अवशोषण नहीं हो पा रहा हैं।

अत्यधिक मात्रा में लिया गया लोहा यकृत में जमा होता है। रक्त तथा ऊतकों में अत्यधिक लोहा जमा होने से सिडरोसिस बीमारी होती है जिससे फेफड़े क्षतिग्रस्त होते हैं। अत्यधिक लोहा कोष्ठबद्धता व डायरिया पैदा करता है।

दैनिक आवश्यकता :—20 से 30 मि. ग्राम प्रतिदिन।

मुख्य स्रोत :—सभी प्रकार की ताजी हरी सब्जियाँ, फल, जर्दालू, शतालू (Apricots & peaches) अंगूर, कालीद्राक्ष, किशमिश, सेव अंकुरित अनाज इत्यादि। फलों में न्यून मात्रा में होता है लेकिन शीघ्र अवचूषित हो जाने के कारण अत्यधिक प्रभावी एवं उपयोगी है।

ताँबा (Copper-Cu)

ताँबा, लोहा के साथ मिल कर हिमोग्लोबिन, लालरक्त कण, पित्त तथा यकृत की सहायता से त्वचा का स्वाभाविक रंग-रंजक मेलानिन के निर्माण में सहायक है। यह लोहे के चयापचय तथा अवशोषण में सहायता करता है। यह वसाम्ल तथा विटामिन सी की चयापचय क्रिया व टायरोसिन नामक प्रोटीन के ऑक्सीकरण में सहायता कर उसे मेलानिन में रूपान्तरित करता है। मेलानिन रंजक द्रव्य के कारण ही बाल, त्वचा एवं आँखों का स्वाभाविक रंग निखरता है। ल्यूकोडर्मा में इस रंजक रंग की कमी के कारण बाल, आँखें एवं त्वचा बदरंग एवं सफेद हो जाती है। इसकी कमी से लोहे की कमी हो जाती है। यह तन्तु, श्वास-प्रश्वास के लिए उपयोगी है। यकृत, केन्द्रीय स्नायु संस्थान, पेशी तथा हड्डियों में ताँबा पाया जाता है। यह पित्त द्वारा आँतों में आता है। इसकी कमी से रक्तहीनता, मंद बुद्धि, श्वास कष्ट, सामान्य कमजोरी तथा श्वेत कुष्ट ल्यूकोडर्मा होते हैं। यकृत तथा आँतें क्षतिग्रस्त हो सकते हैं।

मुख्य स्रोत :—अंकुरित अनाज, छिमियां, फलियाँ, ताजे फल, हरी सब्जियाँ इत्यादि।

मैंगनीज (Manganese-Mn)

थायरॉयड से निकलने वाले हार्मोन थायरॉक्सिन तथा लाल रक्त कणों के निर्माण में सहायक है। प्रोटीन की चयायपचय क्रिया, यूरिया के निर्माण, विटामिन कोलिन तथा चयापचय क्रिया को समुन्नत करने के लिए कुछ एन्जाइमों को क्रियाशील करने में मैंगनीज बहुत उपयोगी है। इसका अधिकांश भाग यकृत, क्लोम, त्वचा, अस्थि, गुर्दे मांसपेशी, हृदय, प्लीहा तथा मस्तिष्क में पाया जाता है। गर्भस्थ शिशु के पोषण में भी सहायक है। बहुत कम मात्रा में तन्तु में होता है। प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा लिपिड के अवचूषण में भाग लेने वाले एन्जाइम की क्रिया को मैंगनीज नियन्त्रित करता है।

इसकी कमी से यकृत, त्वचा, माँसपेशियों तथा अस्थियों में विकृति आती है। विकास अवरुद्ध हो जाता है। अनेक एन्जाइम सक्रियता रुकने से पाचन-संस्थान के विभिन्न रोग होते है। गर्भस्थ शिशु का विकास रुक जाता है। सामान्य कमजोरी आदि लक्षण दिखते हैं। सभी प्रकार के फल, अंकुरित अनाज, दूध व सब्जियों में होता है।

दैनिक आवश्यकता :—4 मिलीग्राम

आयोडिन (Iodine-I)

आयोडिन, आमाशय तथा आँतों द्वारा शीघ्र अवचूषित हो जाता है। शोषण बाद 70 से 99 प्रतिशत आयोडिन टायरोक्सिन नामक एमिनो एसिड के साथ मिलकर थॉयराइड का थायरोक्सिन हार्मोन तथा प्रोटीन के साथ मिल कर थायरोग्लोबिन का निर्माण करता है। महत्व की दृष्टि से आयोडिन बहुत ही उपयोगी तत्त्व है। गलग्रन्थिस्राव थायरॉक्सिन शारीरिक एवं मानसिक प्रभाव डालता है। यह कार्बोहाइड्रेट के चयापचय, कोशिकाओं में ऑक्सीकरण क्रिया को नियंत्रित कर उसे ऊर्जा प्रदान करता है। चयापचय (Basal metabolic rate B. M. R) की जांच थायरॉक्सिन के कार्य द्वारा ही निश्चित की जाती है। रक्त-प्लाज्मा में पाये जाने वाला प्रोटीन बन्ध आयोडीन के निम्न तथा उच्च स्तर के माप के आधार पर थॉयरॉयड की क्रियाशीलता का पता लगाया जाता है। ऊतकों में प्राणवायु के संचार, चयापचय क्रिया के नियमन, महिलाओं में मासिक धर्म का नियमन आदि अनेक कार्य आयोडिन करता है। शारीरिक, मानसिक तथा बालों के विकास के लिए आयोडिन जरूरी है। संतान उत्पादन के लिए भी आयोडिन आवश्यक है।

युवतियों में आयोडिन की कमी से घेघा (गलगण्ड) रोग होता है। यह रोग हिमालय की तराई, जम्मू, काश्मीर, हिमाचल-प्रदेश, पंजाव, बिहार, पश्चिमी-बंगाल, असम तथा अन्य पूर्वी राज्य, उत्तरप्रदेश में देवरिया, बांदा जिले में अधिक होता है। इस रोग में आयोडिन की कमी से थॉयरॉक्सिन कम निकलता है, फलतः अधिक मात्रा में निकालने के लिये थायरॉयड ग्रन्थि को अधिक कार्य करने से वह सूज कर फूल जाती है। आयोडिन की कमी से वयस्कों में सारे शरीर में सूजन, शारीरिक तथा मस्तिष्कीय कार्यों में शिथि-

लता उत्पन्न होती है। अत्यधिक आयोडिन की कमी से एक्सोपथैलमिया होता है जिसमें हृदय एवं नाड़ी गति तीव्र हो जाती है, आँखें आगे निकल आती हैं, स्नायुदौर्बल्य बढ़ जाता है। गर्भावस्था के समय आयोडिन की कमी से बच्चे क्रेटिनिज्म (बौनापन), स्नाविक एवं मानसिक अपविकास के शिकार होते हैं। मिक्सेडेमा (रक्तचाप, हृदय गति एवं तापमान कम होना) तथा थायरॉयड, कैंसर आदि रोग होते हैं। हाइपोथॉयरायडिज्म तथा हाइपरथॉयरायडिज्म रोग का सीधा सम्बन्ध आयोडिन की कमी से है। आयोडिन की कमी से त्वचा रुक्ष, मोटी, चेहरा विकृत, जिह्वा लम्बी, मोटी, होठ व ग्रीवा मोटी, भारी हो जाती है। शारीरिक एवं मानसिक विकास रुक जाता है। इसकी कमी से बाँझपन भी पैदा होता है। यदि बच्चे पैदा भी होते हैं तो विकलाँग। आयोडिन की कमी से बाल नहीं उगते हैं, उग भी जाते हैं तो बढ़ते नहीं।

घेघा से पीड़ित व्यक्ति मूँगफली, किसी प्रकार की गोभी, शलगम, सोयाबिन तथा केले का प्रयोग नहीं करें। इनमें थाओसाइनेट तत्त्व होता है, जो थायरॉक्सिन हार्मोन की उत्पति में बाधा डालता है।

आयोडिन का विसर्जन मुख्यत: मूत्र द्वारा ही होता है। दूध पिलाने वाली माताओं में दूध द्वारा भी आयोडिन निकलता है, जो बच्चों के लिये उपयोगी है।

दैनिक आवश्यकता :—100 से 150 माइक्रोग्राम। आयोडिन की दैनिक आवश्यकता चढ़ती उम्र के साथ-साथ घटती जाती है। गर्भ, स्तन्यकाल तथा शरद ऋतु में आयोडिन की आवश्यकता बढ़ जाती है।

मुख्य स्रोत :—समुद्री नमक, समुद्र के किनारे तथा समुद्र में रहने वाले जीव-जन्तु एवं वनस्पति तथा उनके दूध, मखाना, सिंघाड़ा, प्याज, कमल नाल, कमल गट्टा, कुमुद, बेड़ा, दूध, आयोडाइज्ड नमक इत्यादि।

फ्लोरिन (Fluorine–F)

फ्लोरिन दाँत एवं हड्डियों के लिये आवश्यक तत्त्व हैं। इसके निर्माण तथा रक्षक के रूप में यह कार्य करता है। यही कारण है कि आज अनेक दंत-पेस्ट बनाने वाली कम्पनियाँ उसमें फ्लोरिन डाल कर फ्लोरिन गार्ड के रूप में बेचती हैं। लेकिन इसकी अधिक मात्रा स्वास्थ्य के लिये काफी खतर-

नाक है। फ्लोरिडेटेड पानी तथा मंजन से सिर-दर्द, कमर दर्द, जकड़न, पेट दर्द, पतले दस्त, उदर-शूल तथा मतली आदि के लक्षण दिखते हैं। यही कारण है कि दंत-विशेषज्ञों ने फ्लोरिनयुक्त मंजन के प्रति सख्त चेतावनी दी है।

आन्ध्रप्रदेश, पंजाब तथा राजस्थान के कुछ गाँवों में जहाँ पानी में फ्लोरिन की मात्रा 2 या 3 पी. पी. एम. से ज्यादा है, वहाँ फ्लोरोसिस के रोगी ज्यादा हैं। ऐसे रोगियों की कमर तथा दाँतों में स्थायी दर्द तथा विकलांगता परिलक्षित होती है। पानी में फ्लोरिन का सामान्य स्तर 0·8 से 1 पी पी. एम होता है। फ्लोरिन की प्रायः कमी नहीं होती है लेकिन चीनी टॉफी तथा मिठाइयाँ खाने से दाँतों में रोगाणु पैदा होते हैं जो फ्लोरिन की कमी उत्पन्न कर देते हैं। फ्लोरिन का निष्कासन पेशाब तथा पसीने द्वारा होता है।

मुख्य स्रोत :—अंकुरित अनाज, ताजे फल, हरी सब्जियाँ, दूध इत्यादि।

जस्ता (Zinc-Zn)

जस्ता, कुछ एन्जाइम आमाशयिक पाचक रस, क्लोम ग्रंथि से निकलने वाले हार्मोन इन्सुलिन के निर्माण में सहयोग करता है। अन्तःस्रावी ग्रंथि को सक्रिय बनाने के लिए, प्रोटीन की चयापचय क्रिया, शारीरिक तथा मानसिक विकास तथा कार्बन डायक्साइड तथा दूषित नत्रजन के निष्कासन में सहयोगी होता है। तंतुओं के ऊतकों में प्राणवायु के संचालन में उपयोगी है।

यह यकृत, माँसपेशियों, थायरायड, जनन ग्रंथि तथा हड्डियों में एकत्रित रहता है। बच्चों के यकृत में वयस्कों की अपेक्षा तीन गुना होता है।

जस्ते की कमी से त्वचा फट जाती है, बाढ़ धीमी हो जाती व बाल गिरने लगते हैं। पक्षियों में पंख ठीक नहीं बनते हैं।

शरीर में जस्ते की अधिक मात्रा जाने से ताँबा का अवचूषण अच्छी तरह नहीं होता है। हिमोग्लोबिन बनने की क्रिया अवरुद्ध हो जाती है क्योंकि ताँबा और लोहा मिल कर हिमोग्लोबिन बनाते हैं। रक्तहीनता आ जाती है।

दैनिक आवश्यकता :— 10.3 मि. ग्रा. परन्तु प्रायः भोजन से 10 से 15 मि. ग्रा. जस्ता हमें मिल जाता है।

मुख्य स्रोत :— अंकुरित अनाज, खमीर उठी आटे की रोटी, यीस्ट खमीर, अंकुरित गेहूँ, समुद्री खाद्य पदार्थ, दूध इत्यादि।

कोबाल्ट (Cobalt–Co)

कोबाल्ट, विटामिन बी$_{12}$ (कोबाल एमिन) रासायनिक यौगिक का एक संघटक है। यह आँतों द्वारा शीघ्र अवशोषित होकर बी$_{12}$ के निर्माण में भाग लेता है। रक्त द्वारा ऑक्सीजन के अवचूषण व माँसपेशियों के लिए यह आवश्यक तत्त्व है। यह लाल रक्त कणों को बढ़ाता है तथा रक्तस्राव में उपयोगी है। त्वचा के स्वास्थ्य तथा शारीरिक व मानसिक विकास के लिए उपयोगी है। इसका निष्कासन पेशाब द्वारा होता है।

मुख्य स्रोत :— अंकुरित अनाज, दूध तथा विटामिन बी$_{12}$ वाले स्रोत में मुख्य रूप से पाया जाता है।

सिलिकॉन (Silicon-Si)

यह जमीन में पाया जाता है। गाजर, आलू, मूली इत्यादि तथा कभी-कभी इनमें लगे मिट्टी बालू के साथ भी हमारे अन्दर चला जाता है। रूस के आयुर्विज्ञानियों ने घाव भरने में इसका सफल प्रयोग किया है। सब्जियों में यह फॉस्फोरस के साथ मिलता है। त्वचा तथा तन्तुओं को लचीला, बालों को काला स्वस्थ एवं चमकीला, छोटी आँत की अवशोषण क्षमता वृद्धि तथा शारीरिक विकास के लिए उपयोगी है। नाड़ी के कोषा तथा स्नायु-संस्थान को प्रभावित करता है। यह माँसपेशियों व रक्त कोशिकाओं को स्वस्थ व सशक्त बनाता है। इससे आँखें चमकीली एवं स्वस्थ होती हैं।

दैनिक आवश्यकता :— 15 मि. ग्रा.

मुख्य स्रोत :— कन्द-मूल, अंकुरित अनाज, ताजे फल एवं हरी सब्जियाँ इत्यादि।

मोलिब्डनम (Molybdenum–Mo)

यह शारीरिक चयापचय क्रिया को समुन्नत करने के लिए उपयोगी है।

लेसिथिन (Lecithin) एवं कोलेस्टरॉल

आगे सोयाबीन के अध्याय में लेसिथिन एक नया शब्द आया है। लेसिथिन क्या है, इसे समझें। कोलेस्टरॉल से आप भली भाँति परिचित हैं। आज कॉलेस्टरॉल भय का पर्याय बना हुआ है क्योंकि कोलेस्टरॉल रक्तवाहिनियों की दीवारों में प्लाक चकत्ते बना कर उन्हें सँकरी कर देते हैं। कैल्सियम भी इसके साथ जमा होने लगता है। संतृप्त वसाम्ल—घी, मछली, माँस, अन्डा, डालडा मैदा, चीनी इत्यादि परिशोधित आहार कोलेस्टरॉल को बढ़ाने वाले आहार हैं। कॉलेस्टरौल वृद्धि से कोरोनरी थ्रोम्बोसिस हाइपर कोलेस्ट्रोलेमिया होता है जिससे हजारों लोग प्रतिसाल मरते हैं। रक्तवाहिनियों से सम्बन्धित सभी रोगों का एक प्रमुख कारण कोलेस्टरॉल वृद्धि है। रक्त में कोलेस्टरॉल का सामान्य स्तर 176 मि.ग्रा. प्रति100 मि.ली. होना ही चाहिए। यह एक अति आवश्यक तत्त्व हैं।

यह जीवित कोशिकाओं के लिए प्राण है। यह स्नायु-ऊतकों, सेक्स-हार्मोन तथा अन्य हार्मोन, विटामिन डी, पित्त अम्ल आदि का निर्माण करता है। जब इसका स्तर सामान्य से बढ़ने लगता है तब यह रक्तवाहिनियों तथा पित्ताशय को क्षतिग्रस्त करने लगता है। कोलेस्टराल को बढ़ाने वाले आहारों को बन्द करने से विटामिन ए. ई. एफ. (असंतृप्त वसाम्ल) आदि का भी अभाव हमारे शरीर में हो जाता है। वसा-पाचक एन्जाइम लाइपेज, पित्त आदि की भी सक्रियता कम होने लगती है, उनका निर्माण कार्य रुकने लगता है। पित्ताशय सिकुड़ने लगता है तथा अन्य उपद्रव प्रारम्भ हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति से बचने के लिए लेसिथिन ही एक ऐसा तत्त्व है जिसके उपयोग से कोलेस्टरॉल रक्त में जम नहीं पाता है। लेसिथिन ग्रीक शब्द लिकियॉस से बना है जिसका अर्थ "अण्डे की जर्दी" होता है। जर्मन वैज्ञानिकों ने सर्वप्रथम अण्डे की जर्दी से बहुमूल्य तत्त्व लेसिथिन की खोज की। अण्डे की जर्दी से निकाला गया लेसिथिन अत्यधिक मँहगा होने के कारण इस प्रोसेस को बन्द करना पड़ा। लेसिथिन, कोलेस्टरॉल को शरीर के लिए अत्यधिक उपयोगी बनाता है। लेसिथिन, कोलेस्टरॉल के लिए एमलसीफाइंग एजेन्ट है। प्रयोगों से देखा गया है कि प्रचुर मात्रा में कोले-

स्टरॉलयुक्त आहार लेसिथिन के साथ लेने से वह रक्तवाहिनियों को क्षतिग्रस्त नहीं करता है। लेसिथिन, विटामिन ए. तथा इ के अवचूषण तथा सात्मीकरण के लिए अति आवश्यक तत्त्व है। कोलीन तथा इनॉसिटाल दोनों प्रकार के विटामिन बी. तथा लिनोलिक एमिड का मुख्य स्रोत है लेसिथिन। लेसिथिन का प्रयोग मधुमेह तथा सोरायसिस को दूर करने में किया गया और इससे बेहद उत्साहवर्द्धक परिणाम रहा।

डॉ. एच. डी. केस्टन, डॉ. आर. सिल्बोविट्च, डॉ. जी. एल. डफ्फ डॉ. टी. पी. पायने, डा. एडलर्सवर्ग, डॉ. सोब्रोकोटा, डॉ. ए. डब्ल्यू. डिटरिच डॉ. पी. ग्रास, डॉ. बी. केस्टन, डॉ. सी. ए. सालनेट्च आदि अनेक आयु-विज्ञानियों ने लेसिथिन पर खूब प्रयोग किये हैं। कैलिफोर्निया के डॉ. फ्रांसिस पोटेंगर ने यह सिद्ध किया है कि लेसिथिन का सबसे सस्ता उम्दा स्रोत सोयाबीन है। सोयाबिन-लेसिथिन के प्रयोग से उन्होंने शृंगीवृद्धि वाला चर्मरोग क्रेटोसेस, वसा अभावजन्य चर्मरोग, बच्चों का एक्जिमा, स्केले-रोडर्मा तथा अन्य त्वचा रोगों की सफल चिकित्सा की है। लेसिथिन, नाड़ी-मंडल एवं स्नायुओं के लिए जीवन है। जिस प्रकार Ca,p तथा विटामिन डी. के अभाव में अस्थियों की कल्पना नहीं की जा सकती है उसी प्रकार लेसिथिन के अभाव में स्नायुओं का निर्माण नहीं हो सकता हैं।

स्नायु-ऊतकों का मुख्य घटक है—लेसिथिन। लेसिथिन अनेक अन्तः-स्रावी ग्रंथियों के हार्मोन-निर्माण में भी भाग लेता है। गोनड्स ग्रंथि का मुख्य भाग लेसिथिन है। इससे निकलने वाले हार्मोन में लेसिथिन पर्याप्त मात्रा में होता है। लेसिथिन की कमी से मस्तिष्क तथा स्नायु क्षतिग्रस्त होने लगते हैं, मानसिक विकृति दिखने लगती है, गोनड्स की सक्रियता तीव्रता से बढ़ जाती है, धमनी-काठिन्य, उच्च रक्तचाप, कोरोनरी थ्रोम्बोसिस आदि की स्थिति दिखती है। लेसिथिन का मुख्य स्रोत सोयाबीन, गेहूँ का अंकुरण तथा अण्डे की जर्दी है। जैतून तथा अन्य तेल जो रिफाइण्ड नहीं होते हैं, तथा घाणी वाले तेल में लेसिथिन होता है। तलने-भूनने तथा रिफाइन्ड करने से लेसिथिन खत्म हो जाता है। लेसिथिन की पूर्ति के लिए सोयाबीन श्रेष्ठ माध्यम है।

लेसिथिन सभी कोशों के न्यूक्लीयस के निर्माण के लिए आवश्यक हैं। आहार में लेसिथिन के अभाव से स्नायविक कमजोरी होती है क्योंकि शरीर इसकी पूर्ति रीढ़ तथा मस्तिष्क से लेकर करता है। मस्तिष्क के प्रमुख रसायन सिफेलिन व ग्रेमैटर लेसिथिन से ही निर्मित होता है। प्रयोगों से देखा गया है कि सामान्य मस्तिष्क में 28% लेसिथिन होता है जबकि पागलों तथा मन्द बुद्धि वाले मस्तिष्क में मात्र 10 से 14% ही होता है। जर्मन आयुर्विज्ञानियों ने मानसिक रोगियों पर लेसिथिन का सफल प्रयोग किया है। यह विटामिन ए. ई. तथा एफ. व कैरोटिन के अवचूषण में सहायता करता है। यह पित्ताशय में पथरी नहीं बनने देता। यह यूरिक एसिड के निष्कासन में सहयोगी है। डॉ. डेनिलिवास्की के प्रयोगों के अनुसार लेसिथिन स्नायु, मस्तिष्क एवं रक्त को पोषण देता है। इसके प्रयोग से लालरक्त कण व हिमोग्लोबिन की वृद्धि होती है। रोग-प्रतिरोधक जीवनी शक्ति, मस्तिष्क एवं स्नायविक शक्ति व कार्यक्षमता का सम्वर्द्धन होता है। भूख व वजन भी बढ़ता है। बौद्धिक एवं मानसिक कार्य करने वाले बच्चों व वयस्कों में लेसिथिन की कमी से उनकी कार्यक्षमता तथा विकास अवरुद्ध हो जाता है।

एन्जाइम (Enzyme)

एन्जाइम ही जीवन है। एन्जाइम के अभाव में जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। वनस्पति तथा प्राणि जो कुछ भी ग्रहण करते हैं, उसे पचाने, शरीर के अनुकूल बनाने आदि का कार्य एन्जाइम द्वारा ही होता है। प्रत्येक जीवित कोशिका में सूक्ष्म मात्रा में कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जिनके विशिष्ट एवं विचित्र गुण हैं। हमारे भोजन का पचना, फलों में रसों का बनना, फलों के रसों की किण्वन-क्रिया, रोटी का खमीरीकरण, अनाजों का अंकुरण, कचरे से कम्पोस्ट बनना इत्यादि महत्त्वपूर्ण क्रियाएँ एन्जाइम द्वारा ही होती हैं। एन्जाइम किसी भी जैव-रासायनिक परिवर्तन के लिए आवश्यक है। एन्जाइम की उपस्थिति में ही शरीर की जैव-रासायनिक प्रक्रियायें सम्पादित होती हैं परन्तु एन्जाइम का स्वरूप नहीं बदलता है इस प्रकार

एन्जाइम उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। डॉ. जेम्स एस. मैकलेस्टर एम. डी. ने कहा है कि एन्जाइम एक रवेदार कार्बनिक उत्प्रेरक रसायन है जो स्वयं तो निष्प्राण है परन्तु प्रत्येक जीवित कोशिका में यह प्राण का संचार करता है तथा जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। फार्मलिडहाइड, आयोडिन, लाइसोल आदि जीवाणु-हन्ता रसायन तथा विकिरण-उपचार एन्जाइम की सक्रियता को समाप्त करते हैं। ताप का प्रभाव भी एन्जाइम पर होता है। 32 से 104°F तापमान पर एन्जाइम सक्रिय रहते हैं। शरीर के बढ़े हुए तापमान पर एन्जाइम नष्ट नहीं होते हैं। 122°F से अधिक ताप होते ही एन्जाइम नष्ट होने लगते हैं।

आहार को उबालने, तलने–भूनने तथा फ्रीज में रखने से एन्जाइम नष्ट हो जाते हैं। पेड़ों में लगे फलों में विटामिन, शर्करा, प्रोटीन आदि पोषक तत्त्वों का निर्माण एन्जाइम-सक्रियता के कारण ही होता है। उन्हें तोड़ते ही एन्जाइम की सक्रियता उन्हें नष्ट करने में लग जाती है और फल खराब होने लगते हैं। हम जानते हैं कि विटामिन हमारे शरीर के लिए अति आवश्यक हैं लेकिन विटामिन हमारे शरीर में एन्जाइम के कारण ही उपयोगी हो पाते हैं। जैसे थायमिन को शरीर में अवचूषित होने के लिए कार्बोक्सीलेज को-एन्जाइम की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार से रिबोफ्लेविन, कैरोटिन, विटामिन सी. हमारे शरीर के लिए उपयोगी होने में एक क्लिष्ट एन्जाइम सिस्टम से जुड़े हुए हैं। रिबोफ्लेविन को उपयोगी बनाने के लिए 5 एन्जाइम जुड़े हुए हैं। जिस आहार-तत्त्व पर जो एन्जाइम कार्य करते हैं, प्रायः उन्हीं के नाम पर हजारों एन्जाइमों का नामकरण किया गया है। जैसे सुक्रोज को पचाने वाले सुक्रेज, फास्फोरस की उपस्थिति में परिवर्तन करने वाला फॉस्फेटेज, माल्टोज को पचाने वाला माल्टेज इत्यादि। कुछ एन्जाइम अम्लीय माध्यम में तो कुछ क्षारीय-माध्यम में कार्य करने वाले होते हैं। जैसे प्रोटीन को पचाने वाला आमाशय का एन्जाइम पेप्सिन अम्लीय माध्यम पी. एच. 1.2 से 1.8 में तथा स्टार्च व कार्बोज को पचाने वाला एन्जाइम एमाइलेस तथा ट्रिप्सिन क्षारीय माध्यम पी. एच. 8.2 में सक्रिय रहते हैं। आमाशय का एन्जाइम पेप्सिन हाइड्रोक्लोरिक एसिड की उपस्थिति में ही क्रियाशील रहता है, क्षारीय माध्यम में इसकी क्रियाशीलता रुक जाती है। अल्सर की स्थिति में क्षारीय

माध्यम दूध पीने से तुरन्त राहत मिलती है क्योंकि पेप्सिन निष्क्रिय हो जा है। आमाशय में पेप्सिन काफी मात्रा में होने के बावजूद भी सबको अ नहीं पैदा करता है क्योंकि इन झिल्लियों से विपरीत गुण धर्म का एन्टीपेप्सि स्राव निकलता है जो आमाशय की दीवारों की रक्षा करता है। दूस मान्यता यह भी है कि आमाशय की दीवार पर काफी मोटी कोटिंग होती जो पेप्सिन से दुष्प्रभावित नहीं होती है। प्रत्येक जीवित प्राणी में कुछ रसायन होते हैं जो एन्जाइम-सक्रियता से विखडित नहीं होते हैं। पेट एवं आं में फीता कृमि तथा अन्य कृमियाँ बिना पचे इसी कारण बची रहती हैं प्रत्येक एन्जाइम अपने वातावरण के अनुकूल ही कार्य करते हैं। प्रोटीन प कार्य करने वाला एन्जाइम कार्बोज या वसा पर कार्य नहीं कर सकता है Fe, Ca, Mg, Zn, Co, Cu, Mn इत्यादि धातु विभिन्न एन्जाइमों निर्माण तथा प्राणि-कोशिकाओं के अनेक कार्य सम्पादन में भाग लेती है प्रत्येक एन्जाइम प्रोटीन का बना होता है जो अधिक तापमान पर खडित जाता है। एन्जाइम भोजन को पचा कर उनका इस प्रकार सरलीकरण देते हैं कि वे पानी में घुल-मिल कर कोशिकाओं के अन्दर बाहर जा सके उनका ऑक्सीकरण हो सके। इन्हीं के माध्यम से कोशिकाऐं ऑक्सीजन उपयोग कर लेती हैं तथा कार्बन डाइऑक्साइड को निकाल बाहर करती है संचित खाद्य पदार्थों से आवश्यकतानुसार रासायनिक ऊर्जा का निर्माण त उनका नियंत्रण कुछ हार्मोनों द्वारा होता है। ये हार्मोन एन्जाइम द्वारा सक्रिय होते हैं।

सौ, सवा सौ वर्ष पूर्व डॉ. बकनर ने एन्जाइम पर सर्वाधिक शोध क किया था। उनका कहना था कि रुग्ण शरीर पर्याप्त मात्रा में एन्जाइम न बना पाता है। चाय, चीनी, परिशोधित, कन्फेक्शनरी तथा संश्लेषित आह शरीर के एन्जाइम सिस्टम को अस्तव्यस्त कर देते हैं। प्रयोगों से देखा ग है जो प्राणी अपक्वाहार करते हैं, उनके एन्जाइम निकालने वाले अंग कार्य करने के कारण पक्वाहार लेने वाले प्राणियों की अपेक्षा छोटे होते हैं अंकुरित अनाज, फल, सब्जी आदि अपक्वाहार में एन्जाइम प्रचुर मात्रा होते हैं। एन्जाइम, भोजन को पचाने के लिए आवश्यक है परन्तु अपक्वाह

में पाचक एन्जाइम अधिक मात्रा में होने से यकृत, पैंक्रियासादि ग्रंथियों का कार्य कम हो जाने से वे छोटे ही रहते हैं। एन्जाइम के अभाव में सभी प्रकार के विशेषत: अजीर्ण तथा अन्य उदर सम्बन्धी रोग होते हैं। एन्जाइम का सर्वोत्तम स्रोत अंकुरित अनाज, खमीर उठे अनाजों के दूध, रोटी, दलिया, ब्रेवर्स यीस्ट, खमीर उठी आटे की रोटी, हरी ताजी सब्जियाँ, फल, फल एवं सब्जियों के रस, नीरा, गाय तथा सोयाबीन का दूध, दही, छाछ, रेजुवेलक पानी इत्यादि हैं। अंकुरण के दौरान खमीरीकरण तथा किण्वन क्रिया से आहारों में रिसोग्रस, म्यूकॉर, पेन्सिलियम, एसपेगिल्लासेस, मोल्ड्स, यीस्ट, लैक्टिक एसिट बैक्टिरिया, थायमिन, रिबोफ्लेविन तथा सभी विटामिन बी सी, इ, के, हार्मोन तथा अहानिकारक जैव-एण्टीबायोटिक्स तथा सम्पूर्ण श्रेष्ठ किस्म की प्रोटीन शर्करा आदि उत्पन्न होते है।

क्लोरोफिल (Cholorophyll)

क्लोरोफिल, पौधों के लिए प्राण होता है और मानव आहार के रूप में क्लोरोफिल जीवन है। क्लोरोफिल में प्रबल रोगाणुनाशक गुण है। जर्मन रसायनज्ञ डॉ रिचार्ड विलस्टेटर के अनुसार क्लोरोफिल प्रकृति का एक अद्वितीय करिश्मा एवं आश्चर्य है। विश्व में उपलब्ध सभी प्रकार की ऊर्जा का मूल स्रोत सूर्य है। उस सूर्य की परम स्वास्थ्यदायक एवं सामर्थ्यवान ऊर्जा को अपने में संग्रहीत कर हरे पौधे (क्लोरोफिल) प्राणि-जगत का उपकार करते हैं। पौधों की वे कोशिकाऐं, जिनमें क्लोरोफिल होती है, सूर्य-प्रकाश की उपस्थिति में कार्बनडायऑक्साइड तथा पानी के अणु आपस में मिल कर कार्बोज ऊर्जा निर्मित कर लेती हैं तथा प्राणवायु ऑक्सीजन से वायुमण्डल को भर देते हैं। पौधे महान जैव-रसायनज्ञ हैं। विश्व का महानतम वैज्ञानिक भी इस क्रिया को किसी भी प्रयोगशाला में सम्पादित नहीं कर सकता। सूर्य की प्रकाश-ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा में बदल कर पौधों में शक्कर के रूप में संचित हो जाती है। इस क्रिया के लिए क्लोरोफिल अति आवश्यक है। पौधों के जिन अंगों में क्लोरोप्लास्ट होता है, उसी भाग में यह क्रिया सम्पादित होती है। पौधों की पत्तियाँ भोजनालय है। $6CO_2$

$+ 12 H_2O$ प्रकाश ⇌ क्लोरोफिल $C6H_{12}O6 + 6O_2 + 6H_2O$ । यह प्रकाश-संश्लेषण मानव-जीवन के अस्तित्त्व के लिए अति उपयोगी है । इस क्रिया के अभाव में मानव जाति का विनाश तथा प्राणि-जगत का अस्तित्व समाप्त हो जायगा । मनुष्य इसी क्रिया से उत्पन्न रासायनिक ऊर्जा हैक्सोज तथा ऑक्सीजन पर जीवित है । सौर ऊर्जा संचित पैक्ड क्लोरोफिल युक्त हरी पत्तियों का हम उपयोग करते रहें तो कदापि बीमार नहीं पड़ सकते इसमें कैंसर जैसे रोग से लोहा लेने की क्षमता है । पौधों के क्लोरोफिल तथा रक्त के मुख्य घटक हिमोग्लोबिन की रासायनिक संरचना में काफी समानता है । एक का रंग हरा तथा एक का रंग ऑक्सीजन मिलने से चटकदार लाल होता है । क्लोरोफिल में न्यूक्लिेई मैग्नेशियम (Mg) है तथा हिमोग्लोबिन में न्यूक्लेई (nuclei) लोहा (Fe) है ।

क्लोरोफिल के न्यूक्लियस मैग्नेशियम से दो ऑक्सीजन निकाल देने से हेमिन लोहा अर्थात हिमोग्लोबिन में रूपान्तरित (transmutes) हो जाता है । रक्त के लालरंजक द्रव्य हिमोग्लोबिन में एक अणु लोहा के चारों तरफ कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन के अणु होते हैं जबकि क्लोरोफिल में एक अणु मैग्नेशियम के चारों तरफ उक्त रसायन के अणु होते हैं । महिला चिकित्सक डॉ. एडल डेविस ने अपनी पुस्तक 'लेट अस राइट टू कीप फिट' में लिखा है कि क्लोरोफिल का मैग्नेशियम 30 प्रकार के एन्जाइमों को सक्रिय कर उन्हें क्रियाशील बनाये रखता है ।

चार्ल्स एफ. केटरिंग बरसों तक क्लोरोफिल के उस गुण पर कार्य करते रहे कि यह सूर्य को किस प्रकार अपने जाल में फँसा लेता है । इस हरित रंजक द्रव्य के सन ट्रेप (sun trape) के राज क्या हैं ? वे आशान्वित हैं कि कृत्रिम ढ़ंग से वे संभवतः ऐसा कर सकें । विश्वप्रसिद्ध जर्मन-जैव रसायनज्ञ डॉ. हैंन्सफिशर ने क्लोरोफिल की आयुर्वैज्ञानिक उपयोगिता पर कार्य किया है । इसके लिये उन्हें 1931 में नोबेल पुरस्कार भी मिला । शिकागो के औषधविज्ञानी रसायनज्ञ डॉ. बोरिश बर्कमैन ने खोज की है कि क्लोराफिल के प्रयोग से मनुष्य तथा जानवरों एवं अन्य प्राणियों को दीर्घायु एवं स्वस्थ बनाया जा सकता है ।

केटरिंग ने सिर्फ क्लोरोफिल पर प्रयोग करने के लिए अण्टिओच कॉलेज में 1930 में एक फाउंडेशन की स्थापना की। इसमें अनेक आयुर्वैज्ञानिक क्लोरोफिल के विभिन्न आयामों पर शोधरत हैं। 1940 में अमेरिकन जर्नल आफ सर्जरी की एक रिपोर्ट के अनुसार मस्तिष्क अल्सर, पायरिया, चर्मरोग, पेरिटोनाइटिस रोग से ग्रस्त 1200 रोगियों का सफल उपचार क्लोरोफिल से किया गया। डॉ. रिचार्ड विलस्टेटर, फ्रांस मिल्लर आदि अनेक आयुर्विज्ञानियों की खोज है कि क्लोरोफिल मानव-शरीर में रक्त की तरह कार्य करता है। रक्त को पुनर्जीवन प्रदान करने तथा उसे विष-मुक्त करने का कार्य क्लोरोफिल बखूबी करता है। क्लोरोफिल का कोई मुकाबला नहीं है। रक्तकैंसर ल्यूकेमिया के लिए क्लोरोफिल दिव्य वरदान है। टेम्पल विश्वविद्यालय के डॉ. गुरस्किन रेडपाथ तथा डेविस ने आँख, नाक तथा गले के रोगों से ग्रस्त हजारों रोगियों का सफल उपचार क्लोरोफिल से किया है। शोध आयुर्विज्ञानी डॉ. त्रिश्चर का कहना है कि क्लोरोफिल घनीभूत सौर ऊर्जा का अमृत तुल्य सत्व है जो हृदय, प्रवाही-संस्थान, आंतों, गर्भाशय तथा फेफड़ों की कार्यक्षमता को बढ़ाता है। क्लोरोफिल नाइट्रोजन विनिमय के दर को बढ़ा कर बायटल अंगों पर रोग उन्मूलक उद्दीपक प्रभाव डालता है। भूमि कृषि विशेषज्ञ जी. येच अर्पथॉमस ने अपने प्रयोगों से सिद्ध किया है कि गेहूँ के घास का क्लोरोफिल सर्वश्रेष्ठ किस्म का होता है। 350 पौंड अन्य पौधों के क्लोरोफिल की चिकित्सकीय गुणवत्ता मात्र 15 पौंड गेहूँ के घास के क्लोरोफिल के बराबर होती है। क्लोरोफिल को हरा खून 'ग्रीन ब्लड' भी कहते हैं। बोस्टन हिप्पोक्रेट्स हेल्थ इंस्टीट्यूट की संचालिका डॉ. एन. विग्मोर ने गेहूँ के क्लोरोफिल पर सर्वाधिक कार्य किया है। उन्होंने कैंसरग्रस्त अनेक रोगियों को गेहूँ पौध क्लोरोफिल से स्वस्थ करने का दावा किया है।

सेलुलोज (Cellulose)

सेलुलोज :—यह आहार का मुख्य भाग है। आहार में इसकी कमी से सभी रोग होते हैं। आधुनिक खोजों से ज्ञात हुआ है कि आहार में सेलुलोज की कमी से आँतों का कैंसर अर्श, रक्त-विषाक्तता, हृदय रोग,

मोटापा, चर्मरोग, पाचन सम्बन्धी रोग, कब्ज तथा स्नायविक व मानसिक रोग होते हैं । सभी प्रकार के आहार के छिलकों में सेलुलोज पर्याप्त मात्रा में होता है । विटामिन बी. ग्रुप के सभी सदस्यों--विशेषतः थायमिन का मुख्य स्रोत है । बिस्कुट, ब्रेड, वेसन, मैदा की बनी चीजें तथा अन्य परिशोधित आहार सेलुलोज की दृष्टि से अत्यन्त हीन होते हैं । लन्दन के डॉ. डी. पी. बर्किट, डॉ. एन. एस. बेंटर तथा दक्षिण अफ्रिका के डॉ. ए. आर. पी. वाकर बरसों तक अफ्रिका के मूल निवासियों पर शोध कार्य कर इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि परम्परागत सेलुलोज रफेज युक्त आहार लेने वाले अफ्रिका के मूल निवासियों में अपेंडिसाइटिस, गॉलस्टोन, अर्श, हृद्रोग, अल्सर, कैंशर कोलेस्टरॉल वृद्धि, मोटापा आदि रोग देखने को भी नहीं मिलता है, लेकिन जिन अफ्रिकनों ने शहरी आहार विहार को अपना लिया, उनमें यह रोग धीरे-धीरे पनप रहे हैं ।

इसी प्रकार के सर्वेक्षणात्मक प्रयोग विख्यात कार्डियोलॉजिस्ट डॉ. क्रिश्चन बर्नार्ड तथा कैंसर विशेषज्ञ डॉ. वर्डा आदि अनेक आयुर्विज्ञानियों ने किये हैं । इनका मानना है कि उपर्युक्त रोगों से मुक्त होने के लिए सेलुलोज रफेज छिलका युक्त सब्जियों, फल, अनाज व दालों को अपने आहार में मुख्य स्थान दें । परिशोधित एवं संश्लिष्ट आहार जहर है ।

एक अद्वितीय घटना है भोजन को परिशोधित करने के सन्दर्भ में। एक कम्पनी ने डबल रोटी बनाई । उसे नरम तथा स्वादिष्ट बनाने के लिए आटे से रफेज सेलुलोज निकाल दिया गया । इसके प्रयोग से स्नायविक रोग बढ़ने लगे । आहार-विज्ञानियों ने खोज की कि इनमें थायमिन, लौह आदि अनेक तत्त्वों की कमी के कारण ऐसा हुआ है । फिर इनकी पूर्ति के लिए समकक्ष संश्लिष्ट रसायन तत्त्व मिलाये गये । फिर पता लगा डबल रोटी में चापड़ या भूसा के अभाव के कारण आँतों में कैंसर पैदा हो रहे हैं कब्ज की स्थिति भयंकर रूप से पैदा हो रही है । फिर निर्माताओं ने डबल रोटी का एक नया फार्मूला निकाला । यह स्वास्थ्यप्रद डबल रोटी बन निकली और करोड़ों डॉलर का धन्धा किया गया । बाद में इसके अन्य दुष्परिणाम सामने आने लगे । अमेरिका की पोषण औषध नियन्त्रक विभाग

ने कम्पनी पर दबाव डाल कर कथित पौष्टिक डबल रोटी के नये संघटकों की जानकारी प्राप्त की। सेलुलोज रफेज की पूर्ति हेतु कम्पनी डबल रोटी में लकड़ी का बुरादा मिलाती थी। कहां चोकर और कहां लकड़ी का बुरादा। यह है विकसित बुद्धिहीन तकनीक का कमाल।

दी न्यू इंगलैंड जर्नल ऑफ मेडिसन, दी ब्रिटिश मेडिकल जर्नल, जर्नल ऑफ दी अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन तथा अन्य अनेक आयुर्वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित 800 शोधपत्रों के आधार पर यह सिद्ध हो गया है कि मैदा, बेसन, चीनी, कोका आदि से बने रिफाइन्ड परिशोधित आहार ब्रेड बिस्कुट, माँस, अंडा, जेम, जेली, टॉफी आदि के लगातार प्रयोग से आँतों का कैंसर, कोरोनेरी हृदय रोग, आंत्र शोथ, मोटापा, कब्ज, मधुमेह, रक्तार्श, वेरीकोस वेन्स, अपेण्डिसाइटिस, डाइवर्टिक्यूलोसिस, फ्लेबाइटिस (फ्लेबोथ्रोम्बोसिस) ये दस प्रमुख रोग होते हैं। इनके अतिरिक्त स्नायविक शोथ, अभावजन्य रोग तथा प्रायः सभी शारीरिक व मानसिक रोगों का सम्बन्ध परिशोधित आहार से खोजा गया है। भोजन लेने के 24 घंटे के अंतराल में पच कर, अवचूषित तथा सात्म्यीकृत होकर अवशिष्ट मल बाहर निकल जाना चाहिए। परिशोधित आहार में रफेज सेलुलोज के अभाव के कारण मल-निष्कासन में 48 से 72 घंटे लग जाते हैं क्योंकि ऐसे आहार का मल आँतों से चिपक कर सड़ता रहता है तथा उससे अनेक प्रकार के करोड़ों की संख्या में पैथोजेनिक व बिफिडो बैक्टीरिया पैदा होते हैं। बिफिडो बैक्टिरिया यकृत से निकलने वाले पित्त के घटक जैव-रसायन कोलिक एसिड तथा डिऑक्सी कोलिक एसिड पर घातक प्रतिक्रिया कर क्रमशः एफकोलिक एसिड तथा 3-मिथाइल कोलेनथेरिन में रूपान्तरित कर देते हैं। ये दोनों प्रबल कैंसर उत्पादक कार्सिनोजिन कार्बनिक रसायन हैं। इस प्रकार परिशोधित आहार के सेवन से उपयोगी पाचक एन्जाइम पित्त उपर्युक्त कैंसर-उत्पादक रसायन तथा लिथोकोलेट में परिवर्तित हो जाते हैं। लिथोकोलेट रसायन पुनः आँतों द्वारा अवचूषित होकर कोलेस्टरॉल से पित्त-निर्माण की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह आहार कोलेस्टरॉल वृद्धि, उच्च रक्तचाप, थ्रोम्बोसिस तथा कॉरोनरी हृदय रोग पैदा करता है। यह आहार आँतों तथा

अपेंडिक्स को संक्रमित कर उसमें सूजन पैदा कर देता है। मल को सख्त बना-कर कब्ज तथा रक्तार्श उत्पन्न करता है। शिराओं को क्षतिग्रस्त कर वेरीकोज वेन्स, चर्बी को बढ़ा कर मोटापा तथा अनेक विटामिन एवं खनिज लवणों की कमी पैदा कर सभी संस्थायानों के तथा मानसिक रोग उत्पन्न करता है।

11 | निसर्ग का चमत्कार : कैसे पचता है आहार

आहार की पाचन प्रक्रिया निसर्ग का अद्भुत करिश्मा है। कभी आपने इस करिश्मे पर गौर किया है ? उत्तर होगा-नहीं; क्योंकि आप इसके इतने आदी हो चुके हैं कि इस पर कभी ध्यान ही नहीं गया होगा। परन्तु, पाचन प्रक्रिया प्रकृति का अद्वितीय चमत्कार है। जरा सोचिए ! आप अन्न, फल सब्जी, घी, तेल इत्यादि खाते हैं, परन्तु वह पच कर अवशोषित तथा सात्म्य होकर कैसे रक्त, माँस, मज्जा, अस्थि आदि अनेक अवयवों का हिस्सा बन कर आपके व्यक्तित्व एवं स्वास्थ्य को आकर्षक बनाता है। आइये, इस तथ्य से परिचय करें।

जीव-जगत के सभी प्राणियों-यथा वनस्पति, पशु, पक्षी एवं मनुष्य सभी के लिए अलग-अलग प्रकार के आहार की आवश्यकता होती है। ये सभी जीव आहार के लिए एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं। जैसे वनस्पतियाँ, पशु पक्षी एवं मनुष्य के लिए श्रेष्ठ आहार हैं, ठीक उसी प्रकार इन प्राणियों के अवशिष्ट तथा मृत पदार्थ वनस्पतियों के लिए श्रेष्ठ आहार हैं। जो आहार हम करते हैं वह सरलीकृत होकर हमारा अभिन्न हिस्सा कैसे बन जाता है, यह एक अद्भुत करिश्मा है। विज्ञान अभी तक इतना बौना है कि वह अभी तक रक्त भी नहीं बना सका है, जिसके अभाव में लाखों दुर्घटनाग्रस्त लोग प्रतिवर्ष बेमौत मारे जाते हैं। रक्त, माँस, मज्जा, वीर्य आदि का रासायनिक विश्लेषण तो हुआ है, लेकिन ये अवयव सिर्फ प्रोटीन, खनिज लवण, विटामिन, वसा, जल आदि के संयोग मात्र नहीं हैं बल्कि इनके साथ कुछ और भी है जिनका निसर्ग ही सृजन कर सकती है, आदमी नहीं। आइये, पाचन के इस अनोखे करिश्मे को, जिसे मनुष्य अपनी तुच्छ बुद्धि के आलोक में जितना भी जान पाया निरखें, परखें।

जो कुछ भी हम खाते-पीते हैं, उसमें सिर्फ पानी को छोड़ कर सभी खाद्य पदार्थों को अपने वास्तविक रंग रूप एवं प्रकृति को छोड़ कर शरीर के रसा-

के अनुकूल रूप धारण करना होता है। ऐसा होने पर ही वे शरीर के विभिन्न अवयवों रक्त, रस, मज्जा आदि का निर्माण करते तथा शक्ति में रूपान्तरित हो पाते हैं।

भोजन को मुँह में रखते ही पाचन-क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। भोजन को जितना हम चबाते हैं, उतना ही मुँह में दोनों ओर स्थित पेरॉटिड, सबलिंग्यूअल तथा सबमैक्सिलरी लार रस की ग्रंथियाँ दो प्रकार का एन्जाइम निकालती हैं। सलाइवा एमाइलेस (पिट्यालिन) तथा माल्टेस। ये आहार में स्थित स्टार्च को पचाना प्रारम्भ कर देते हैं। प्रतिदिन डेढ़ लीटर सलाइवा रस निकलता है जिसमें 98·5% जल तथा 1·5% कार्बनिक, अकार्बनिक पदार्थ तथा म्यूसिन होते हैं। यहाँ पर स्टार्च पच कर शीघ्र पचने योग्य माल्टोज, डेक्स्ट्रोज तथा ग्लूकोज नामक कार्बोज में परिवर्तित हो जाता है। काफी देर तक अच्छी तरह खूब चबा-चबा कर खाने से सलाइवा एमाइलेस के साथ-साथ आमाशयिक पाचक रस भी अच्छी मात्रा में निकलता है। इसके अतिरिक्त चबाने से मानसिक तनाव-दबाव की स्थिति भी दूर होती है। जल्दी-जल्दी बिना चबाये खाने से अधिकांश लोगों को अजीर्ण तथा वायुफुल्लता (गैस्ट्रिक ट्रबल) की बीमारी होती है। जल्दी-जल्दी खाने से बाहर की हवा भी आमाशय में पहुँच कर अजीर्ण तथा गैस पैदा करती है। नवजात शिशु में 6 माह तक सलाइवा पाचक रस नहीं निकलता है। बच्चों को इसी कारण 6 से 9 माह की उम्र तक रोटी, चाँवल आदि स्टार्चयुक्त आहार नहीं देने चाहिए।

विज्ञान की भाषा में भोजन का पाचन एक जटिल प्रक्रिया है। विविध आहारों में स्थित पोषक-तत्त्व बड़े ही जटिल रूप में होते हैं। उन्हें शरीर के अनुकूल एवं उपयोगी बनाने के लिए अनेक प्रकार के एन्जाइमों का सहारा लेना पड़ता है। एन्जाइम, पाचन के लिए बहुत ही उपयोगी जैव-रसायन हैं। भोजन में स्थित जटिल पोषक तत्त्वों को सरलीकृत करने का कार्य एन्जाइम ही करते हैं। इस जैव-रसायन का निर्माण जैव-कोशिकाओं द्वारा ही होता है। पौधे भी अनेक प्रकार के एन्जाइम बनाते हैं, मृत कोशिकाएँ नहीं। सूखे अनाज एन्जाइम से हीन होते हैं लेकिन जब उन्हें अंकुरित किया जाता है, तब उस स्थिति में कोशिकाएँ पुनर्जीवित होकर एन्जाइम सक्रियता बढ़ा देती

हैं। ताजे फल व सब्जियों में एन्जाइम प्रचुरता से मिलता है। हमारे शरीर में भी जीवित कोशिकाओं द्वारा सैकड़ों प्रकार के एन्जाइम तैयार किये जाते हैं जो कोशिकाओं के अन्दर कार्य करते हैं। पाचन प्रक्रिया में एन्जाइम पृथक् ढंग से उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। पाचक एन्जाइम ग्रंथियों द्वारा निर्मित किये जाते हैं। पाचन क्षेत्र में आहार के पहुँचते ही ये अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। एन्जाइम का एक अणु आहार के विशेष खाद्य-पोषक तत्त्व पर कार्य कर उसे हजारों अणुओं में विभक्त कर पाचन-प्रक्रिया को सरल कर देते हैं।

ये एन्जाइम, जटिल रासायनिक क्रिया में स्वयं सीधे भाग नहीं लेते हैं लेकिन इनकी उपस्थिति से पाचन की जैव-रासायनिक प्रक्रिया सरल हो जाती है। इस प्रकार ये उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। पाचन-प्रणाली का सीधा सम्बन्ध स्नायु-संस्थान से है। आपने अनुभव किया होगा कि पेट भरा हुआ है, खाना भी नहीं खा रहे हैं लेकिन आप अपने मनपसंद आहार की कल्पना करते ही उसकी गंध तथा स्वाद भी लेने लगते हैं। परिणामस्वरूप पाचक रसों, एन्जाइमों तथा हार्मोनों का स्राव बढ़ जाता है। मनपसन्द भोजन की कल्पना मात्र से स्नायु-संस्थान की उत्तेजना के कारण उनसे सम्बन्धित पाचन संस्थान के अंग-यथा आँखें, सूँघने तथा स्वाद की कोशिकाएँ, पैंक्रियास, यकृत, आमाशय आदि ग्रन्थियाँ, इन्सुलिन स्राव, पिट्राइलिन इत्यादि सभी उत्तेजित हो जाते हैं। आपको यदि भरोसा न हो तो जरा नीबू, इमली या रसगुल्ले की कल्पना करके देखें। आ गया न मुँह में पानी।

मुँह में चबाया हुआ आहार गले द्वारा आमाशय में उतरता है। यह भी एक जटिल प्रक्रिया है। मोटी माँसपेशियों से निर्मित जिह्वा देवी भाँति-भाँति के आकार ग्रहण करती है तब जाकर भोजन गले तथा भोजन नली में पहुँचता है। निगलते समय निरीक्षण कीजिए, आपको पता चल जायेगा। भोजन को बिना चबाये जल्दी जल्दी खाने से गले की नाजुक झिल्लियाँ उत्तेजित भी हो जाती हैं। गले के पास श्वास नली का द्वार होता है, भोजन इस नली में न चला जाय, इसलिए यह द्वार एपीग्लोटिस कपाट से बन्द रहता है। जल्दी-जल्दी खाने या खाँसने के समय श्वासन से यह कपाट खुल जाता है जिससे

भोजन श्वास नली में चला जाता है, जो पुनः खाँसी द्वारा मुँह या नाक से बाहर निकाल दिया जाता है।

डायफ्राम को पार करती हुई आहार नाल आमाशय का रूप धारण करती है। आमाशय काफी चौड़ी तथा मोटी माँसपेशी-संरचना है। इसकी क्षमता एक से 3 लीटर तक होती है। आमाशय में जिस द्वार से भोजन प्रवेश करता है उसे कार्डियक कपाट कहते हैं। आमाशय में काफी मात्रा में भोजन समा सकता है। भोजन के यहाँ पहुँचने के 20 मिनट बाद आमाशय के पाचक रसों द्वारा, गूँथने तथा मथने का कार्य शुरू होता है। 20 मिनट तक मुँह के पाचक रसों की पाचन क्रिया आहार पर चलती रहती है। आमाशय के भीतरी भाग श्लेष्मिक झिल्ली में अनेक जठर-ग्रंथियाँ (वयस्क व्यक्ति में 7 करोड़ तक) होती हैं। जिनसे काफी मात्रा में प्रतिदिन करीब 1½ से 2½ लीटर जठर रस निकलता है। ये भोजन के प्रोटीन को अच्छी तरह पचा देते हैं। थोड़ी मात्रा में गैस्ट्रिक लाइपेज भी निकलता है जो दूध के वसा को पचाने में सहायक है। इसके अतिरिक्त आमाशय के रसों में प्रमुख-तया हाइड्रोक्लोरिक एसिड, रेनिन तथा पेप्सिन एन्जाइम होते हैं। रेनिन एन्जाइम बच्चों में दूध को दही बनाता है। आमाशय में विटामिन बी$_{12}$ के अवशोषण के लिए इन्ट्रिन्जिक फैक्टर का भी निर्माण होता है। इस फैक्टर की कमी से भयंकर रक्तहीनता की बीमारी होती है। बच्चों में दूध की शर्करा को पचाने के लिए गैस्ट्रिक एमाइलेस भी निकलता है। भूख एवं आहार के अनुसार जठर रस निकलता है। स्वादिष्ट मनोनुकूल भोजन ज्यादा रस पैदा करते हैं। रस को पैदा करने में व्यक्ति की मानसिक स्थिति भी जिम्मेवार है। निरन्तर तनाव, दबाव की स्थिति में जठर रस ज्यादा निक-लता है जिससे हाइपर एसिडीटी, अल्सर तथा गैस्ट्राइटिस हो जाता है। प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि माँसाहार जठर रस को ज्यादा निकालते हैं, वहीं वसा-संयुक्त खाद्य तथा तले-भुने आहार जठर रस-निष्कासन में विरोधी प्रभाव डालते हैं, फलतः वह कम निकलता है। सामान्य खाद्य पदार्थ 4 घंटे में आमाशय द्वारा पच कर आँतों में चला जाता है, लेकिन वसा वाले आहारों के पचने में 8 से 9 घंटे लग जाते हैं। भोजन को अच्छी तरह पचने

के लिए आमाशय स्वतः संकुचित एवं विस्फारित होता रहता है। इस क्रिया से प्रत्येक आहार-तत्त्व पाचक रसों से अच्छी तरह घुल मिल कर पचते हैं।

निरन्तर सर्पिल गति के कारण बचा हुआ आहार (काइम) जठर निर्गम द्वार से छोटी आँत के ग्रहणी वाले हिस्से में जमा होता रहता है। मुख्य पाचन का कार्य यहीं पर होता है। यहाँ अनेक प्रकार के एन्जाइम तथा पाचक रस काइम को पचाने के लिए मिलाये जाते हैं। अनेक अद्भुत रासायनिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। यहाँ पर बची हुए शर्करा, प्रोटीन तथा वसा को पचाने के लिए क्लोम ग्रंथि से क्रमशः एमिलॉप्सिन, ट्रिप्सिन स्टीएप्सीन एन्जाइम निकलते हैं। स्टीएप्सीन या लाइपेज एन्जाइम यकृत से आए पित्त रस की सहायता से वसा को फैटी एसिड तथा ग्लिसरॉल में बदल देता है। एमिलॉप्सिन एन्जाइम बचे हुए कार्बोज को ग्लूकोज में तथा ट्रिप्सिन एन्जाइम बचे हुए प्रोटीन को पेप्टोन में बदल देता है। आमाशय में आहार तथा पाचक रसों के अच्छी तरह मिलने के बाद ही क्लोम एन्जाइम रसों का पाचन-कार्य अच्छी तरह हो पाता है। आमाशय से पाचक रस जब कम निकलते हैं यानि हाइपोएसिडिटी की स्थिति में पाचन अच्छी तरह नहीं होने से अजीर्ण की स्थिति पैदा होती है। आँतों में कुछ हार्मोन भी पैदा होते हैं जो सीधे रक्तसंचार द्वारा भिभिन्न पाचक रस व एन्जाइम उत्पादक अंगों पर प्रभाव डाल कर रस-निकालने की प्रेरणा देते हैं। 1902 में बेलिस तथा स्टालिंग ने "सेक्रेटीन" नामक हार्मोन की खोज की, जो क्लोम ग्रंथि को रस बनाने व निकालने के लिए प्रेरित करता है। कोलेसिस्टोकाइनिन नामक दूसरा हार्मोन यकृत में पहुंच कर पित्ताशय पर आंकुचन-प्रभाव डाल कर पित्त को निकालता है।

यकृत, बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंग है। इसमें करीब 500 प्रकार के जीवनो-पयोगी रसायन बनते हैं। यह शरीर का पावर हाउस है। पचने के बाद जब खाद्य-वस्तु रक्त-प्रवाह द्वारा सोख ली जाती है उस स्थिति में अतिरिक्त ऊर्जा का मुख्य स्रोत ग्लूकोज को ग्लाइकोजिन के रूप में यकृत द्वारा संचित किया जाता है। आकस्मिक आवश्यकता पड़ने पर यही ग्लाइकोजिन ग्लूकोज में परिवर्तित हो जाता है और ऊर्जा तथा शक्ति के रूप में

आता है । इस कार्य में क्लोम ग्रंथि से निकलने वाले हार्मोन इंसुलिन तथा ग्लूकोजन काम में आते हैं।

यकृत-स्थित पित्ताशय से सुनहले पीले रंग का पित्त निकलता है, जो बाद में हरे रंग में बदल जाता है। यह वसा को पचाने में सहायक है। पित्त, प्रोटीन से उत्पन्न यूरिया तथा यूरिक एसिड को अलग कर देता है जो गुर्दों द्वारा बाहर निकाल लिया जाता है। पित्त जीव-विषों (toxins) को समाप्त कर आँतों में सड़न-क्रिया को रोकता है।

ग्रहणी के बाद की छोटी आँतों (इलियम, इस्चियम) की दीवारों में लाखों की संख्या में नन्हीं-नन्हीं ग्रंथियाँ होती हैं। इनसे अनेक पाचक रस तथा एन्जाइम निकलते हैं जो बचे हुए भोजन-तत्त्व पर क्रिया करके उसे अच्छी तरह पचाते हैं तथा इन्हें अवशोषण एवं सात्म्यीकरण योग्य बनाते हैं। ये आन्त्रिक रस निम्न हैं :—

(1) **एरेप्सिन** :—यह एक एन्जाइम है जो जठर रस तथा स्टिएप्सिन द्वारा पचे हुए प्रोटीन से निर्मित पेप्टोन को एमिनो एसिड में बदलता है।

(2) एण्टरोकाइनेज :—क्लोम ग्रंथि द्वारा स्रावित एन्जाइम ट्रिप्सोनोजिन को ट्रिप्सीन में बदलता है। (3) माल्टेस। (4) सुक्रेस।

(5) लैक्टेस आदि एन्जाइम विभिन्न कार्बोहाइड्रेट को ग्लूकोस में परिवर्तित करते हैं।

(6) न्यून मात्रा में लाइपेस भी निकलता है जो बचे हुए वसा को फैटी एसिड तथा ग्लिसरॉल में बदलता है।

(7) न्यूक्लियेस न्यूक्लिसाइडेस आदि एन्जाइम न्यूक्लिक एसिड तथा न्यूक्लिओटाइड्स पर क्रिया करके न्यूक्लिओसाइड्स में बदल देते हैं।

कार्बोज, प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण तथा जल का कुछ अंश मुँह एवं आमाशय में ही पच कर सीधे रक्त में मिल जाता है परन्तु अवशोषण का प्रमुख कार्य छोटी आँत में ही होता है। छोटी आँत का डिसेक्शन कर माइक्रोस्कोप द्वारा देखने पर उसमें एक-एक मि. मी. के लम्बे असंख्य रोम सदृश आँत-अंकुर दिखाई देते हैं। इनकी संख्या 40 लाख होती है। इन आँत-अंकुरों में अनेक रक्त-वाहिकाएँ, तंत्रिका-तन्तु तथा लसिका

वाहिकाएँ होती है । रक्त-वाहिकाओं द्वारा ग्लूकोस व एमिनो एसिड शोषि हो जाते हैं । ये रक्तकोशिकाएँ परस्पर मिल कर शिराएँ बनाती हैं । आँ तथा आमाशय से आने वाली शिराएँ मिल कर बड़ी शिरा पोर्टल शि बनाती है । यह अवचूषित आहारों को यकृत में ले जाती है, जहाँ ये विभ होकर यकृत धमनी की कोशिकाओं में मिल जाती है । इस प्रकार से कार्बो प्रोटीन, विभिन्न विटामिन तथा खनिज लवण आदि पोषक तत्त्व यकृ से होते हुए महाशिरा द्वारा दूसरी वाहिकाओं तथा रक्त संचार में मि जाते हैं । तभी विभिन्न अंगों तथा विभिन्न अवयवों में आवश्यकतानुसा पहुँच कर उनका निर्माण करते हैं । चिकनाई के कारण पचे हु वसा-पदार्थों का अवशोषण सूक्ष्म रक्तवाहिनियों द्वारा नहीं हो पाता है इसलिए आँतों में स्थित सूक्ष्म बारीक पायस लसिकाएँ (Lacteals) पचि वसाओं का अवशोषण करती हैं । ये लसिकाएँ मिल कर लसिका-वाहि बनाती हैं जो वक्षीय-वाहिनी द्वारा ग्रीवा के पास ऊर्ध्व महाशिरा में खुल है । आँतों की दीवारों में लम्बी तथा गोल विभिन्न माँसपेशियों की चिक कोशिकाएँ होती हैं । इन स्नायुओं के कारण आँतें कभी विश्राम पाती तो कभी संकुचित होती हैं । इस प्रकार से इनके लयात्मक स्पंदन से भोज निरन्तर गतिशील होने के कारण अच्छी तरह पचता है तथा अवशोषि एवं सात्म्य होता है । छोटी आँत की कुल लम्बाई 5 से 7 मीटर होती है इसके द्वारा भोजन का निरन्तर अवशोषण नहीं होने पर भोजन सड़ जा है । अब छोटी आँत से अवशिष्ट भोज्यपदार्थ त्रिकांत्र कपाट को खोल क धीरे-धीरे बड़ी आँत में उँड़ेला जाता है । छोटी एवं बड़ी आँत मिलन स्थल के पास ही अपेंडिक्स होता है । परिशोधित आहार कारण अपेंडिक्स में जलन, सूजन तथा अनेक प्रकार के पैथोजेनि बैक्टिरिया का ओवर ग्रोथ हो जाता है । मूर्खता के कारण शल्य-चिकि द्वारा अपेंडिक्स को निकाल दिया जाता है । हॉल ही में किये गये शो से यह बात स्पष्ट हो गई है कि अपेंडिसाइटिस का मूल कारण परिशोधि (रिफाइण्ड) आहार लेने के कारण नाना प्रकार के कीटाणु पैदा होक अपेंडिक्स को संक्रमित करना है । बड़ी आँत 1.5 से 2 मीटर लम्बी होती हैं । इसके तीन भाग हैं । दाहिनी ओर नीचे से ऊपर यकृत के निम्न सिरे त

का भाग आरोही, (एसेंडिंग) यकृत के निम्न हिस्से से प्लीहा तक का भाग अनुप्रस्थ (ट्रांसवर्स) तथा प्लीहा से नीचे की और मुड़ा हुआ अवरोही (डिसेण्डिग) बड़ी आँत कहलाता है। अवरोही बड़ी आँत आगे की ओर 25 से. मी. नलिकाकार मलद्वार का हिस्सा बनाती है। इसकी दीवार में पेशी तन्तुओं, पेशी सूत्रों की संख्या अधिक होती है। इनसे संकोचन पेशी निर्मित होती है जो मल को बाँधे रखती है, सिर्फ मल-त्याग के समय ही खुलती है।

बड़ी आँत में करोड़ों की संख्या में मित्र-जीवाणु बैक्टिरियल फ्लोरा तथा शत्रु जीवाणु पैथोजैनिक बैक्टिरिया होते हैं। मित्र-जीवाणु विटामिन बी ग्रुप के कुछ महत्त्वपूर्ण विटामिनों का निर्माण करते हैं तथा पैथोजेनिक बैक्टिरिया पर नियंत्रण रखते हैं। अधिक जुलाब, एण्टीबायोटिक औषधियों तथा गलत खान-पान के कारण ये बैक्टिरियल फ्लोरा नष्ट होने लगते हैं। पैथोजेनिक बैक्टिरिया का तेजी से सम्वर्द्धन होता है जो बचे-खुचे बैक्टिरियल फ्लोरा पर हावी होकर अनेकानेक टॉक्सिन तथा टॉक्सिक आर्गेनिज्म पैदा करते हैं। इतना ही नहीं, ये आहार-तत्त्वों विशेषतः कुछ एमिनो एसिड पर प्रतिक्रिया कर "बायोजेनिक एमाइंस" जैसे—ट्रेप्टोफिन को-ट्रिप्टेमाइन, हिस्टीडाइन को हिस्टेमाइन में परिवर्तित कर देते हैं जो काफी घातक जीव-विष होते हैं। प्रोटीन की चयापचय क्रिया से इंडोल तथा स्कैटोल इत्यादि विषैले पदार्थ भी बनते हैं। इन सभी जीव-विषों के कारण अनेक जहरीली गैसें भी बनती हैं। ये सभी हानिकारक हैं। जीव-विषों का निर्माण गलत खान-पान, भोजन के गलत संयोजन (Wrong Combination) तथा परिशोधित आहार के प्रयोग से अत्यधिक होता है। इसलिये एक समय में एक ही प्रकार के आहार को, जहाँ तक हो सके बिना बिगाड़े, प्राकृतिक रूप से ग्रहण करना चाहिये।

बड़ी आँत में अवशिष्ट खाद्य पदार्थों में सेलुलोज की मात्रा अधिक होती है जो मल-निष्कासन के लिये झाड़ू का काम करता है। जिस आहार में, विशेषतया परिष्कृत आहार में सेलुलोज की मात्रा कम होती है, वह आहार कब्ज के साथ-साथ, आँतों की बीमारियाँ पैदा करता है।

बिस्कुट, ब्रेड, बिना छिलके की दाल, शक्कर रहित अंडा, कणीमुक्त चाँवल चीनी, साफ्टड्रिंक परिशोधित आहार है। बड़ी आंत का मुख्य कार्य मल का निर्माण तथा जल का अवशोषण है। प्रतिदिन 4 लीटर जल का अवशोषण तथा 150 से 200 ग्राम मल का निर्माण होता है। मल को चिकना केलाकार बनाने तथा अच्छी तरह निष्कासन के लिए बड़ी आँत श्लेष्मा का निर्माण करती है। मल के साथ कम मात्रा में श्लेष्मा आना सामान्य है लेकिन अधिक मात्रा में लोंदा का लोंदा मल निकलना पेचिश व आंत्रशोथ की निशानी है। अधिकांशतः आहार के अपचित भाग, श्लेष्मा, मृत उपकला कोशिकाएँ तथा जीवाणुओं के संयोग से मल का निर्माण होता है। कुल मल का $\frac{1}{3}$ भाग जीवाणुओं से बनता है। मल-विसर्जन का नियन्त्रण स्नायु-संस्थान द्वारा होता है। जब मलाशय की दीवारों पर मल के दबाव की तीव्रता 20 m m Hg पर पहुँचता है, उस समय प्रतिवर्त्त प्रभाव के कारण रीढ़ की दूसरी, तीसरी तथा चौथी सेक्रम प्रतिवर्त्त तथा प्रमस्तिष्क (वल्कुट) हाइपोथैलमस द्वारा संदेश प्राप्त कर मल विसर्जन की अनुभूति होती है। सामान्यतया 18 से 20 घंटे में भोजन पच कर उसका अवशिष्ट मल-पदार्थ बाहर निकल जाता है। मल को रोकने का नियंत्रण हाइपोथैलमस द्वारा होता है।

12 | विष एवं विजातीय-पदार्थ-निष्कासक-संस्थान

शरीर में निरंतर ऐच्छिक तथा अनैच्छिक कार्य चलता रहता है इन कार्यों में कोशिकाओं की टूट-फूट एवं सृजन-निर्माण का कार्य भी चलता है। इन कार्यों से कुछ व्यर्थ के अवशिष्ट पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त इन कार्यों के सुसंचालन के लिए हम संतुलित खाद्य-पदार्थ ग्रहण करते हैं। उनके पाचन, अवशोषण तथा सात्म्यीकरण से भी मल-मूत्र के रूप में विजातीय पदार्थ बनते हैं। ये विजातीय पदार्थ मल-मूत्र, पसीने व श्वास के रूप में निकलते हैं। इन विषाक्त पदार्थों में कार्बनडायऑक्साइड, जल, यूरिया तथा यूरिक एसिड आदि होते हैं। शरीर से इन विषाक्त पदार्थों को बाहर निकाल कर निर्मल बनाने के लिए प्रकृति ने 4 निष्कासन द्वार बनाए हैं—

(1) बड़ी आँत (2) गुर्दे (3) फेफड़े (4) त्वचा

बड़ी आँत :—शरीर से विकार एवं विजातीय पदार्थ निकालने का प्रमुख अंग है। कब्ज की स्थिति में बड़ी आँत की विष-निष्कासन क्षमता कमजोर हो जाती है। कब्ज के कारण बड़ी आँत में करोड़ों जीव-विष (toxin or toxic organism) पैदा होते हैं। ये रक्त संचार द्वारा यकृत तथा अन्य संस्थानों में पहुँच कर उन्हें क्षतिग्रस्त कर डालते हैं अतः सुबह-शाम पाखाना जाने की आदत डालनी चाहिए। समय पर पाखाना नहीं होने से ही सभी प्रकार के रोग होते हैं।

गुर्दे :—निम्न वक्षास्थि के पास रीढ़ के दोनों तरफ सेम के बीच के आकार के होते हैं। इनका वजन सौ-सौ ग्राम, लम्बाई 10 सें. मी. एवं चौड़ाई 6 सें. मी होती है। गुर्दों के बाह्य भाग को कॉर्टेक्स तथा आन्तरिक भाग को मेड्यूला कहते हैं। प्रत्येक गुर्दे से 35 सें. मी. लम्बी मूत्रवाहक नली मूत्राशय में जाती है। इनके ऊपर का भाग कीप के आकार का होता है। जिनसे छन कर पेशाव मूत्राशय में जमा होता है। मूत्राशय के भर जाने के बाद यह सिकुड़ता है जिससे पेशाब बाहर निकल जाता है। मूत्रमार्ग पेशीय-सूत्रों द्वारा बन्द रहता है, जिस पर ऐच्छिक माँस-पेशियों का नियंत्रण रहता है। मूत्राशय में 350 से 500 मि ली. मूत्र जमा हो सकता है। गुर्दे रक्त को साफ करते हैं। यकृत में बना यूरिया, पेशियों द्वारा त्यक्त यूरिक एसिड, सोडियम आदि लवण जहरीले होते हैं। इनका निष्कासन नहीं होने पर शरीर के लिए घातक सिद्ध होते हैं। गुर्दे इन्हें खून से छान कर अलग कर पेशाब द्वारा बाहर निकाल देते हैं। इस क्रिया से रक्त शुद्ध रहता है। हमारे गलत खान-पान विशेषतः चटपटे आहार, शराब, तम्बाकू, सिगरेट तथा घातक औषधियों के निरंतर प्रभाव से गुर्दों की कार्यक्षमता कम (फेल) होने लगती है। यह मृत्यु का कारण भी बनती है। मूत्र द्वारा 60 ग्राम कार्बनिक तथा अकार्बनिक तत्त्व निकलता है। इसमें 20 से 30 ग्राम यूरिया 10 से 15 ग्राम लवण होता है। शाकाहारियों का पेशाब क्षारीय होता है जबकि माँसाहारियों का क्षीण अम्लीय होता है। सामान्यतः स्वस्थ व्यक्ति के पेशाब में प्रोटीन, शर्करा, रक्त, पस सेल्स आदि नहीं होते हैं।

फेफड़े :—छाती के दायीं तथा बायीं तरफ होते हैं। प्रत्येक फेफड़े में

300 से 400 करोड़ वायुकोष मधुमक्खी के छत्ते की तरह होते हैं। प्रत्येक वायुकोष सूक्ष्म रक्तवाहिनियों से घिरा रहता है। इन वाहिनियों द्वारा वायु वितरण सुगमता से होता है फलतः अशुद्ध रक्त शुद्ध होता है। अशुद्ध रक्त लाल रक्त कोशिकाओं की हिमोग्लोबिन वायु के ऑक्सीजन से मिलकर ऑक्सीहिमोग्लोबिन बनाती है। सामान्य श्वास की स्थिति में 90% हिमोग्लोबिन ऑक्सीहिमोग्लोबिन में बदल जाती है। यही कारण है कि रक्त कोशिकाओं में रक्त प्लाजमा की अपेक्षा 60 गुना ऑक्सीजन होता है। इसी के चलते ऊतकों में गैस विनिमय के लिए पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन मिल जाती है। रक्त-स्थित घातक गैसें झिल्लियों से छन कर वायु कोषों में चली जाती हैं जो वायुनलियों से होकर श्वास नली द्वारा नाक से बाहर फेंक दी जाती है। इस प्रकार फेफड़ों से शरीर के अवांछित गैसीय विकार बाहर निकलते हैं। यदि ये कार्बनडाइऑक्साइड आदि विकार अच्छी तरह नहीं निकलें तो व्यक्ति सुस्त व आलस्य तथा आत्म विषाक्तता से पीड़ित हो जाता है।

त्वचा :—शरीर के समस्त अवयवों की रक्षा त्वचा करती है। इसके मुख्यतः दो भाग हैं। बाह्य त्वचा की कोशिकाएँ निरन्तर घिसती-पिटती हैं तथा उनकी जगह दूसरी कोशिकाएँ आ जाती हैं। सूक्ष्मदर्शी यन्त्र द्वारा देखने पर त्वचा में अनेक छोटे-छोटे रोमकूप दिखाई पड़ते हैं। एक वर्ग सें.मी. में 500 से 600 तक छिद्र होते हैं। प्रत्येक छिद्र सूक्ष्म स्वेद नलिका (sweet duct) का मुँह है। यह नलिका दूसरी तरफ स्वेद ग्रंथि से जुड़ी होती है। इसके चारों तरफ सूक्ष्म रक्त-वाहिनियों का जाल होता है। रक्त के साथ अवशिष्ट लवण सोडियम क्लोराइड, कार्बोलिक एसिड आदि विजातीय पदार्थ स्वेद ग्रंथि द्वारा छान कर पसीने के रूप में बाहर निकाल दिये जाते हैं। कभी-कभी ये लवण स्वेद नलिका के मुँह पर जमा होकर अथवा लोशन पाउडर क्रीम आदि लगाने से ये रोमकूप बन्द हो जाते हैं। खुरदरे रोंयेदार तौलिये से स्पंज करने तथा स्पंज के बाद स्नान करने अथवा स्नान करते हुए स्पंज करने से रोमकूप साफ हो जाते हैं। धूप-स्नान व शारीरिक श्रम से, दौड़ने से तथा गर्मी के दिनों में पसीना निकलता रहता है। अशक्त लोगों को धूप-स्नान के दौरान स्पंज करके त्वचा की निष्कासन-क्षमता बनाये रखना चाहिए। पसीना

निकलना शरीर के लिए अति आवश्यक है। पसीने के रूप में शरीर की गन्दगी बाहर निकलती है तथा शरीर का तापमान सामान्य रहता है। प्रायः शरीर से पसीना निकल कर स्वतः उड़ता रहता है। त्वचा में सिबेसियस ग्रंथियाँ भी होती हैं जिनसे तैलीय पदार्थ निकलता है। इससे त्वचा मुलायम बनी रहती है। बाल तथा नाखून बाह्य त्वचा के रूप हैं।

उपर्युक्त विष-निष्कासक अंगों से निकलने वाले विषों की मात्रा ग्राम में।

मल निष्कासक अंग	पानी	विभिन्न विजातीय पदार्थ	नाइट्रोजन युक्त तत्त्व	कार्बनडाई-ऑक्साइड
आँत	130 मि. ली.	70-100	2	30
गुर्दे	1500 मि. ली.	60- 70	16	10
फेफड़े	320 मि. ली.	770	0	210
त्वचा	650 मि. ली.	45- 50	6	6

महिलाओं में माहवारी के रूप में भी विजातीय पदार्थ बाहर निकलते हैं। यह पाँचवा विष-निष्कासक संस्थान प्रकृति ने महिलाओं में विशेष रूप से दे रखा है।

उपर्युक्त विष-निष्कासक अंगों में किसी प्रकार की विकृति आने पर शरीर में टॉक्सिक विजातीय पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है तथा शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो जाती है। रक्त तथा लिम्फ संचार एवं उसके घटकों में विषम असंतुलन आ जाता है। शरीर में संचित विष को प्रकृति जब किसी अंग से निकालना चाहती है तो उसे हम उस अंग के अनुसार रोग का नामकरण कर देते हैं। जैसे नाक से निकलता टॉक्सिक पदार्थ जुकाम, त्वचा से निकलता विष त्वचा रोग कहलाता है। पर इन सबका एक ही कारण है "विष का संचय" तथा उसके निष्कासन में अवरोध। प्राकृतिक चिकित्सा में आहार, विहार एवं चिन्तन को सम्यक् कर तथा मिट्टी, पानी, धूप, वायु तथा आकाश (उपवास) चिकित्सा द्वारा शरीर में संचित विष को बाहर निकाला जाता है तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाया जाता है। यही कारण है कि प्राकृतिक चिकित्सा में सभी रोग साध्य हैं।

13 | चयापचय क्रिया

भोजन का ग्रहण-मुँह, पाचन-आमाशय, आँतों तथा यकृत आदि पाचन संस्थानों द्वारा; शरीर का पोषण तथा निर्माण परिवहन तन्त्र द्वारा, ऑक्सी-करण तथा ऑक्सीजन वितरण श्वसन क्रिया द्वारा, फेफड़ों द्वारा कार्बन डाइ-ऑक्साइड. बड़ी आँत, गुर्दे तथा त्वचा द्वारा काफी मात्रा में जहरीले विजा-तीय पदार्थ, नाइट्रोजनस पदार्थ, अनावश्यक लवणों आदि का निष्कासन कार्य होता रहता है। सरल शब्दों में भोजन का पाचन, अवशोषण, सात्मी-करण, निवर्तन या निर्माण, परिवर्तन या क्षति तथा उत्सर्जन, इन सभी सम्मि-लित क्रियाओं को चयापचय क्रिया कहते हैं।

भोजन को जैव-ऊतकों में रूपान्तरित होने, ऊर्जा का उत्पादन, कोशिकाओं के आन्तरिक जटिल पदार्थों, एन्जाइम, हार्मोन्स प्लाज्मा, रक्त आदि जटिल जैविक तत्त्वों का निर्माण आदि अनेक सृजनात्मक कार्य शरीर में चलते रहते हैं। चयापचय के अंतिम उत्पाद, जिसे शरीर उपयोग नहीं कर पाता है, उसे उत्सर्जी अंगों द्वारा बाहर फेंक दिया जाता हैं। चयापचय क्रिया में प्रोटीन, वसा, कार्बोज, खनिज लवण, विटामिन, ऑक्सीजन, जल आदि सम्मिलित आहार भाग होते हैं। प्रत्येक आहार तत्त्व की चयापचय क्रिया अन्तर्सम्बन्धित है। अंगों एव ऊतकों में चयापचय क्रिया का नियंत्रण स्नायु-संस्थान तथा अन्तःस्रावी-ग्रंथियों द्वारा होता है।

कार्बोहाइड्रेट की चयापचय क्रिया :—आहार नाल में कार्बोहाइड्रेट तथा विभिन्न सैकेराइड पर लार, क्लोमग्रंथि तथा आँतों में स्थित विभिन्न पाचक व एन्जाइम क्रिया करके ग्लूकोस में बदल देते हैं। छोटी आँत में ग्लूकोस अवचूषित होकर विभिन्न अंगों में जमा हो जाता है। यकृत पेशियों में ग्लूकोस स्टार्च ग्लाइकोजिन में परिवर्तित होकर जमा रहता है। यकृत में उप-ग्लाइकोजिन आपातकाल के लिए आरक्षित रहता है। आवश्यकता पड़ने पर यह ग्लूकोस में परिवर्तित होकर रक्त-प्रवाह में चला जाता है। पेशी तथा अन्य अंगों में संचित ग्लाइकोजिन प्रतिदिन ऊर्जा के काम आता है। कार्य करते समय पेशीय ग्लाइकोजिन विघटित होकर यांत्रिक कार्य तथा ऊर्जा में रूपान्तरित हो जाता है। कार्बोहाइड्रेट कम मिलने पर शरीर उत

पूर्ति वसा तथा प्रोटीन से करता है। कार्बोहाइड्रेट का ऊर्जा में रूपान्तरण अति-शीघ्रता से होता है। अतः यह ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। रक्त में ग्लूकोस की मात्रा 0·1 से 0.12 प्रतिशत होनी ही चाहिए। ऊतकों में ग्लूकोस के ऑक्सीकरण सथा ग्लूकोस को ग्लाइकोजिन में परिवर्तित करने में इंसुलिन हार्मोन की आवश्यकता होती है। यह हार्मोन क्लोम ग्रंथि से मिलता है। पैंक्रियास का दूसरा हार्मोन ग्लूकेगॉन ग्लाइकोजिन को ग्लूकोस में बदलता है। कार्बोहाइड्रेट विघटन का अन्तिम उत्पाद कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल है जिसे उत्सर्जी अंगों द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

प्रोटीन का चयापचय :—आमाशय, क्लोम ग्रंथि तथा आँतों में स्थित एन्जाइम के प्रभाव से प्रोटीन एमीनो-एसिड में रूपान्तरित होकर आँतों द्वारा अवशोषित होते हैं तथा रक्त-प्रवाह में मिल कर सभी जगह वितरित हो जाते हैं। विभिन्न अंगों तथा ऊतकों की कोशिकाओं में प्राणिज प्रोटीन के रूप में जमा होकर विभिन्न अंगों, रसों, हार्मोनों तथा एन्जाइम आदि के निर्माण में काम आते हैं। बचा हुआ प्रोटीन ऊर्जा के रूप में काम आता है। प्रयोगों द्वारा यह बात सामने आयी है कि अतिरिक्त प्रोटीन ग्लूकोस में बदल जाता है जिसका ऑक्सीकरण तीव्रता से होता है। प्रोटीन-विघटन का अंतिम उत्पाद अमोनिया, यूरिक एसिड इत्यादि नाइट्रोजिनस पदार्थ, कार्बनडाइऑक्साइड तथा जल हैं। अमोनिया एक विषैली गैस है जो यकृत द्वारा यूरिया में रूपान्तरित हो जाती है। ये अंतिम उत्पाद उत्सर्जी अंगों द्वारा बाहर निकाल दिए जाते हैं।

प्रतिदिन हमें 70 से 100 ग्राम प्रोटीन चाहिए। प्रोटीन कम मात्रा में जमा होता है। यह अवयवों तथा ऊतकों द्वारा पूर्ण रूप से सात्म्य हो जाता है। सात्मीकृत प्रोटीन टूट-फूट एवं विघटित प्रोटीनों की क्षति-पूर्ति करता है। बच्चों में सभी अंगों के तीव्रता से विकास के कारण प्रोटीन का निर्माण व संश्लेषण, विघटन से अधिक होता है। आहार में उपस्थित नाइट्रोजन की मात्रा से प्रोटीन की मात्रा ज्ञात की जाती है। वयस्कों में नाइट्रोजन की मात्रा संतुलित होती है अर्थात् निष्कासित नाइट्रोजन की मात्रा अन्तर्गृहीत नाइट्रोजन की मात्रा के बराबर होती है। विकासशील बच्चों में नाइट्रोजन का संतुलन

धनात्मक अर्थात् गृहीत नाइट्रोजन की मात्रा अधिक तथा विभिन्न तीव्र रोगों में नाइट्रोजन का संतुलन ऋणात्मक अर्थात् निष्कासित नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है।

वसा का चयापचय :—आँतों तथा क्लोमग्रंथि में उपस्थित एन्जाइमों तथा पित्ताशय के पित्त के प्रभाव से वसा का रूपान्तरण ग्लिसरॉल तथा वसाम्लों में होता है। इस प्रकार से यह प्राणिज वसा लसिका में तथा लसिका से रक्त में मिल कर समस्त अंगों में वितरित हो जाती है। विभिन्न ऊतकों के निर्माण के समय कुछ वसा ऑक्सीकृत होकर अधिक मात्रा में ऊर्जा प्रदान करती है। वसा के विघटन का अंतिम उत्पाद कार्बनडाइऑक्साइड तथा जल है। अतिरिक्त वसा विभिन्न अंगों में जमा रहती है जो एमरजेन्सी में काम आती है। अधिक मात्रा में कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन खाने से वह भी वसा में रूपान्तरित हो जाती है।

जल का चयापचय :—जल का मुख्य अवशोषण छोटी तथा बड़ी आँत द्वारा होता है। यह लवणों तथा अन्य पोषक तत्त्वों के साथ रक्त-सचार द्वारा सभी कोशिकाओं तथा ऊतकों में पहुँच जाता है। कार्बनिक पदार्थों के विघटन से भी ऊतकों में जल बनता है। अन्य पोषक तत्त्वों के विघटन से भी ऊतकों में जल बनता है। अन्य पोषक तत्त्वों के विघटन से उत्पन्न अंतिम उत्पादों के साथ वह रक्त तथा लसिका में चला जाता है। जल का निष्कासन गुर्दे, प्रश्वास, त्वचा तथा मल द्वारा होता है। शरीर के कुल वजन का करीब 70 प्रतिशत जल ही है। प्राणियों की सभी कोशिकाओं, ऊत्तकों आदि का मूल तत्त्व जल ही है। कोशिकाओं के अन्दर रासायनिक द्रव के रूप में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, अकार्बनिक लवणों का कोलॉयडी रूप, माइटोकोण्ड्रिया, एन्जाइम, न्यूक्लीक एसिड, डी. एन. ए., आर. एन. ए., न्यूक्लियस आदि विभिन्न पदार्थों के साथ मिला होता है। कोशिका के बाहर ऊतक द्रव का आधार निर्मित करता है। यह अनेक कार्बनिक तथा अकार्बनिक यौगिकों का विलायक है। पोषक तत्त्वों के अवशोषण, पाचन, सात्म्यीकरण तथा उन्हें एक-एक कोशिकाओं में ले जाने, विजातीय विषाक्त पदार्थों के निष्कासन तथा अन्य चयापचय क्रिया के लिए जल का विशेष महत्व है।

लवणों का चयापचय :—शरीर का चौथाई भाग खनिज लवण होता है। इनका अवशोषण आँतों द्वारा तथा निष्कासन मल, मूत्र पसीने द्वारा होता है। जल तथा खनिज लवणों की चयापचय क्रिया अन्तंसंबंधित है। लवण समस्त महत्वपूर्ण कार्यों को प्रभावित करते हैं तथा अनेक संस्थानों के मुख्य घटक हैं। सल्फर तथा जिंक, क्लोम ग्रंथि के हार्मोन-निर्माण, लोहा तथा कोबाल्ट रक्त तथा ऑक्सीकरण के लिए उपयोगी हैं, वहीं ट्रिप्सिन-एन्जाइम क्रोमियम के सहयोग से बनता है। अनेक खनिज लवणों के आयन रक्त प्लाज्मा, ऊतक द्रव तथा लसिका में होते हैं। रक्त तथा ऊतकों में उपस्थित लवणों (विशेषत: सोडियम, पोटैशियम आदि) की मात्रा पर जल की मात्रा निर्भर करती है। ऊतकों में लवणों की मात्रा स्थायी तथा निश्चित् अनुपात में रहने के कारण ही ये ऑस्मस दाब तथा तथा अम्ल क्षार संतुलन को सामान्य बनाये रखते हैं।

चयापचय की गड़बड़ी के कारण गठिया, मोटापा, मधुमेह आदि अनेक रोग होते हैं। चयापचय का सीधा सम्बन्ध हमारे स्वास्थ्य से है। रिदमिक चयापचय की क्रिया अन्तर्गृहीत आहार की अच्छी गुणवत्ता पर निर्भर करती है। गलत खान-पान चयापचय क्रिया को अव्यवस्थित कर देता है। निष्कासन एवं निर्माण की क्रिया अस्त-व्यस्त हो जाती है।

14 | ऊर्जा चयापचय

शरीर के आन्तरिक तथा बाह्य अवयवों द्वारा पेशी कार्य, ग्रंथियों की स्रवण क्रिया, तंत्रिका क्रिया, हृदय स्पन्दन आदि अनेक कार्य सम्पादित होते हैं। इनमें ऊर्जा का निरन्तर व्यय होता है तथा दूसरी ओर ऊर्जा भी उत्पन्न होती है। यह क्रिया बराबर चलती रहती है। हमें ऊर्जा की उपलब्धि आहार से होती है। विभिन्न एन्जाइमों की सहायता से आहार को शरीर की कोशिकाओं एवं ऊतकों के अनुकूल बनाया जाता है। इस कार्य में भी ऊर्जा का व्यय होता है। प्राणी में बनने वाली ऊष्मा की मात्रा द्वारा चयापचय की तीव्रता नापी जाती है। ऊर्जा कार्य करने की शक्ति है जिसकी माप कैलोरी है। यह ईंधन मूल्य की एक ईकाई की मानक माप है। एक ग्राम पानी का तापमान $1^{\circ}C$ बढ़ाने के लिए जितने ताप की आवश्यकता

होती है, वह कैलोरी कहलाती है। जैसे एक ग्राम पानी का तापमान 37°C है। उसे 38°C तक बढ़ाने के लिए एक कैलोरी, 39°C तक बढ़ाने के लिए 2 कैलोरी ताप चाहिए। शरीर के ऊतकों तथा कोशिकाओं में ऊर्जा उत्पादक खाद्य तत्त्वों से जो परिवर्त्तन होता है उसे ऊर्जा-चयापचय कहते हैं। ऊतकों में एक ग्राम प्रोटीन का ऑक्सीकरण 4·1 कैलोरी, एक ग्राम कार्बोहाइड्रेट का ऑक्सीकरण 4.3 कैलोरी तथा एक ग्राम वसा का ऑक्सीकरण 9.3 कैलोरी ऊष्मा प्रदान करता है। इस प्रकार खाई जाने वाली आहार की मात्रा जानने से उससे प्राप्त ऊर्जा की मात्रा जान सकते हैं। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि सिर्फ 90% ही अवशोषित पोषक तत्त्व हमारे शरीर के लिए उपयोगी हो पाते हैं, शेष बाहर निकाल दिए जाते हैं। अधिक कैलोरी लेने पर यदि हम उसकी दैनिक खपत नहीं कर पाते हैं तो उस स्थिति में वह चर्बी के रूप में जमा होकर मोटापा बढ़ाती है।

भोजन के 12 से 18 घण्टे बाद गर्म वातावरण में शरीर की पूर्ण विश्राम की स्थिति में रक्त-प्रवाह, श्वासोच्छ्वास, हृदय गति तथा स्नायविक कार्य आदि जैविक क्रियाओं को निरंतर बनाये रखने के लिए आवश्यक मौलिक ऊर्जा की माप आधारीय-ऊर्जा-चयापचय (Basal metabolism) कहलाती है। आधारीय-ऊर्जा-चयापचय का सामान्य सूत्र-व्यक्ति के कुल भार के प्रत्येक पौण्ड के लिए प्रतिदिन प्रतिघंटा ½ कैलोरी की आवश्यकता होती है। जैसे 24 घंटे में 120 पौण्ड वजन वाले व्यक्ति के लिए 1440 कैलोरी चाहिए। सामान्यत: पुरुषों में आधारीय चयापचय के लिए 1000 से 1700 कैलोरी तथा महिलाओं में 1000 से 1500 कैलोरी की आवश्यकता होती है। आधारीय-ऊर्जा-चयापचय लिंग, भार, ऊँचाई तथा वातावरण पर निर्भर करता है।

कार्य अथवा अतिरिक्त ऊर्जा चयापचय :—यह कार्य की प्रकृति तथा अवधि पर निर्भर करता है। जैसे शान्त बैठने की अपेक्षा तेजी से घूमने में ज्यादा कैलोरी की आवश्यकता होती है। कार्य ऊर्जा चयापचय = न्यूनतम (0.45) तथा अधिकतम 2½ × वजन पौण्ड में × किया गया कुल कार्य

घंटे में। उदाहरणस्वरूप 120 पौंड के व्यक्ति को 8 घंटे तक कठिन परिश्रम करने के लिए कार्य चयापचय:—$120 \times 5/2 \times 8 = 2400$ कैलोरी
24 घंटे में कुल आवश्यक ऊर्जा=आधारीय ऊर्जा+कार्य ऊर्जा

$1440 + 2400 = 3840$ कैलोरी

ठण्डे मुल्कों में कैलोरी की खपत बढ़ जाती है। ज्यादा शक्ति चाहिए। मोटे व्यक्तियों को उतना ही आहार लेना चाहिए, जितने से आधारीय ऊर्जा की पूर्ति होती रहे। मोटे लोगों में अतिरिक्त कैलोरी की पूर्ति करने से मोटापा बढ़ता जायेगा। अतः स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से कैलोरी-संतुलन का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

100 पौण्ड से लेकर 160 पौण्ड वजन वाले आम भारतीयों के लिये विभिन्न शारीरिक कार्यों के लिए ऊर्जा-मूल्य :—

विभिन्न प्रकार की श्रम की स्थिति	कैलोरी प्रति तीन पौण्ड वजन प्रति घंटा लगभग (अथवा कैलोरी प्रति मिनट (लगभग))
1- बैठना और खड़े होना	0.85
2- वस्त्र पहनना तथा उतारना हजामत बनाना तथा स्नान करना	1.40
3- घूमना (5 किलोमीटर/घंटा)	2.00
4- दौड़ना, क्रिकेट खेलना इत्यादि	2.50
5- बैठने वाले हल्के घरेलू कार्य (टाइप व सिलाई करना, लिखना, पढ़ना इत्यादि)	0.90
6- हल्के कठिन श्रम	2.50
7- कठिन श्रम	2.75
8- अत्यधिक कठिन श्रम	3 25 से 10

उपर्युक्त कैलोरी सूत्र पर आप ज्ञात कर सकते हैं कि आपको विभिन्न कार्यों के लिए कुल कितनी कैलोरी की आवश्यकता है। आधारीय ऊर्जा तथा कार्य ऊर्जा को जोड़ कर 24 घंटे में कुल कितनी ऊर्जा कैलोरी चाहिए, यह पता लगाया जा सकता है।

160 पौड से अधिक वजन वाले लोगों में कैलोरी-संतुलन बनाये

रखने के लिए मात्र आधारीय ऊर्जा चयापचय के अनुकूल आहार होना चाहिए।

कैलोरी संतुलन के आधार पर क्रमिक आहार से स्थायी वजन घटाइये : वेंडरविल्ट विश्वविद्यालय के वेट मैनेजमेंट प्रोग्राम द्वारा 21 दिन के क्रमिक आहार से अनेक लोगों ने स्थायी रूप से अपना वजन कम किया है। इस अत्याधुनिक शोधपूर्ण वैज्ञानिक आहारक्रम में प्रथम सप्ताह में 3 दिन तक महिलाओं को 600 तथा शेष 4 दिन 900, दूसरे सप्ताह में 1200 तथा तीसरे सप्ताह में पुनः 600/900 कैलोरी का आहार दें। पुरुषों को प्रथम सप्ताह 900/1200, दूसरे सप्ताह 1500/1800 तथा तीसरे सप्ताह में 900/1200 कैलोरी का आहार दें। यह आहार-क्रम लेखक ने एस. एन. लोढ़ा प्राकृतिक चिकित्सालय अजमेर में भी सैकड़ों रोगियों पर प्रयोग किया है। इस आहार-क्रम से 5 से 8 कि.ग्रा तक वजन कम हो जाता है। 21 दिन इस आहार-क्रम को चलाने के बाद 21 दिन तक बन्द रखें और अधिक वजन कम करना हो तो 21 दिन के मध्यान्तर के बाद यह कार्यक्रम चलाते रहें। लम्बे समय तक निराहार द्वारा तेजी से वजन कम करने के बाद यदि हम पूर्ववत् भोजन का 60% भी भोजन करते हैं तो वजन अति शीघ्रता से बढ़ता है। वास्तव में भोजन में कैलोरी की मात्रा कम करने या निराहार रहने से उसी अनुपात में आधारीय चयापचय ऊर्जा की दर-वृद्धि भी मंद हो जाती है। इस स्थिति में संरक्षित ऊर्जा की खपत शरीर स्वतः कम कर देता है। अपने वजन को स्थायी रखने के लिए सामान्यतः पुरुषों को 2200 से 2600 तथा महिलाओं को 1800 से 2200 कैलोरी की आवश्यकता होती है। निराहार की स्थिति में औसत पुरुष 80 कैलोरी तथा स्त्री 60 कैलोरी प्रतिघंटा भस्म करते हैं। कम कैलोरी वाले आहार लेने पर यह दर पुरुषों में 45 से 50 तथा महिलाओं में 35 से 40 कैलोरी प्रति घंटा खपत करते हैं। प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि सामान्यतः 1 किलोमीटर चलने पर प्रति व्यक्ति 100 कैलोरी प्रति घंटा खपत कर पाता है जबकि निराहार की स्थिति में यह दर कम होकर 60 कैलोरी प्रति घंटा रह जाती है। उपर्युक्त क्रमिक आहार से आधारीय चयापचय ऊर्जा

की खपत की दर-गति में कोई अन्तर नहीं पड़ता है । कभी-कभी यह बढ़ा हुआ ही मिलता है । यही कारण है कि वजन की कमी स्थायी रूप से होती है ।

15 सम्यक् संतुलित आहार : स्वास्थ्य एवं सुख का आधार

वनस्पति तथा प्राणि जगत सभी अपनी-अपनी जगह कार्यरत हैं । जीवन धारण करने का अर्थ ही है—कर्म-प्रवृत्त होना । यह कर्म मृत्युपर्यन्त चलता है । कर्म निष्काम हो सकते हैं, जैसे—फूलों का खिलना, सूर्य एवं चन्द्र का उदय होना, झरनों का बहना, रवि-रश्मियों का फैलना । प्रकृति के सभी श्रेष्ठ काम निष्काम ही होते हैं । वेद, उपनिषद्, कृष्ण, बुद्ध एवं महावीर की वाणी निष्काम कर्म के उदाहरण हैं । ये वाणी झरी है, वही है जैसे फूल की सुगंध अचाह होकर सृष्टि को सुरभित करती है । प्रत्येक प्राणी का जीवन कर्म-प्रधान है । कार्य-सम्पादन हेतु ऊर्जा की आवश्यकता होती है । विश्राम स्थिति में भी शरीर में अनेक कार्य चलते रहते हैं । प्रत्येक स्थिति में ऊर्जा की आवश्यकता होती है । यह ऊर्जा हमें आहार द्वारा मिलती है । जैसाकि बताया गया है, ऊर्जा की माप कैलोरी में होती है । विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार प्रतिदिन 2500 से 3500 कैलोरी की आवश्यकता होती है । यह शक्ति सभी प्रकार के संतुलित आहार से हमें मिलनी चाहिए । एक ही प्रकार के आहार से कुल कैलोरी की पूर्ति नहीं की जाय, क्योंकि कैलोरी को उपयोगी बनाने के लिए विविध प्रकार के आहार-तत्त्वों की आवश्यकता होती ही है । एक के अभाव में दूसरे से पूर्ति नहीं हो सकती । इसी दृष्टि से संतुलित सम्यक् आहार की उपादेयता है ।

संतुलित आहार की निश्चित् परिभाषा नहीं की जा सकती । एक का संतुलित आहार दूसरे के लिए असंतुलित भी हो सकता है । आहार के संबंध में वैज्ञानिक जानकारी एवं समझ होना अति आवश्यक है । आहार की वैज्ञानिक जानकारी के बाद अपने स्वास्थ्य-संरक्षण एवं रोग-निवारण की दृष्टि से आहार का चुनाव किया जावे । आयु, लिंग, जलवायु, शरीर के

आकार-प्रकार, परिश्रम, पेशा, पाचन-क्षमता एवं रोग की स्थिति के अनु
संतुलित आहार का चुनाव करना चाहिए ।

(1) **आयु के अनुसार** :—विकासशील बच्चों को उनकी सम्यक् वृद्धि
विकास के लिए प्रचुर मात्रा में संतुलित पोषक तत्त्वों की आवश्यकता
है । ऊर्जा एवं गर्मी के अतिरिक्त माँसपेशियों, अस्थियों आदि सभी अं
पूर्ण विकास के लिए अतिरिक्त प्रोटीन, कैल्शियम, फॉस्फोरस आदि
लवण, विटामिन, वसा इत्यादि पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है।
वृद्धि के साथ-साथ भोजन की मात्रा को कम कर उसकी गुणवत्ता पर
देना चाहिए । 15 से 25 साल की उम्र में जो हम खाते हैं, वही
40 साल की उम्र में भी खाएँ, ऐसा करना मूर्खता तथा स्वास्थ्य-घातक
बचपन में सृजन का कार्य अधिक होने से प्रोटीन व कैल्शियम की
अधिक होती है। ढलती उम्र में भी छीजन का काम अधिक
अतः छीजन की क्रिया कम हो, इसके लिए अधिक एन्जाइम एवं वि
युक्त आहार जरूरी हैं, लेकिन बुढ़ापे में दाल वाली चीजें कम खायें,
अनाज एवं फलों का सेवन ज्यादा करें ।

(2) **लिंग के अनुसार** :—प्रायः महिलाओं को उनकी संरचना के
सार पुरुषों की अपेक्षा कम कैलोरी के आहार की आवश्यकता हो
महिलाओं का कुल श्रम, वजन तथा लम्बाई पुरुषों की अपेक्षा कम हो
गर्भावस्था तथा स्तनपान अवस्था में भोजन की गुणवत्ता तथा मात्रा
बढ़ानी चाहिए ।

(3) **जलवायु के अनुसार** :—आहार की खपत जलवायु पर नि
करती है । ठण्डे प्रदेश के लोग अधिक कैलोरी की खपत करते हैं।
अमेरिका आदि ठण्डे मुल्कों के निवासियों को भारत, चीन आदि गर्म
की अपेक्षा अधिक कैलोरी युक्त आहार चाहिए । ठण्ड के कारण
ऊर्जा एवं ताप की आवश्यकता होती है तथा जैविक ऊर्जा का उप
अधिक होता है । इसलिए ठण्डे मुल्क के प्राणी ज्यादा सक्रिय होते हैं।
मुल्कों में भी जाड़ों की ऋतु में भूख अधिक लगने तथा कैलोरी अधिक
होने से भोजन की खपत बढ़ जाती है । यही कारण है कि कथित

आहार लड्डू, घी, इत्यादि का प्रयोग जाड़े की ऋतु में बढ़ जाता है।

(4) **शरीर के आकार-प्रकार के अनुसार :**—लम्बे-चौड़े तथा मोटे व्यक्तियों को ज्यादा भोजन की आवश्यकता होती है क्योंकि इनके प्रत्येक अवयवों की संरचना भी उसी प्रकार की होती है। प्रत्येक अवयवों के स्वस्थ विकास एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से वैसा ही आहार चाहिए।

(5) **परिश्रम तथा पेशे के अनुसार :**—अधिक श्रम करने वाले मजदूर, किसान आदि में ऊर्जा कैलोरी की खपत ज्यादा होती है अतः उसकी पूर्ति करने के लिए अधिक कार्बोजयुक्त आहार चाहिए। मानसिक कार्य करने वाले वकील, चिकित्सक, प्राध्यापक इत्यादि पेशे वालों के लिए प्रोटीनयुक्त आहार चाहिए।

(6) **पाचन क्षमता के अनुसार :**—आहार की खपत या उपयोग पाचन क्षमता पर भी निर्भर करता है। यदि पाचन तथा अवशोषण की क्षमता काफी कमजोर या क्षीण हो जावे तो उस स्थिति में पोषक तथा तथा प्रचुर कैलोरीयुक्त आहार लेने से शरीर जर्जर एवं अस्वस्थ हो जाता है। आहार अपनी पाचन-क्षमता के अनुसार ही लेना चाहिए।

(7) **रोग की स्थिति के अनुसार :**—मोटे व्यक्ति अवस्था के अनुसार अधिक कैलोरी युक्त आहार लेने से मोटापे से पीड़ित होते हैं। साथ ही साथ मोटापाजन्य पचपन बीमारियों से ग्रस्त होते हैं। मोटे लोगों को अपना कैलोरी संतुलन बनाये रखने के लिए कम कैलोरी-युक्त आहार लेना चाहिए। ठीक इसी प्रकार हृदय रोग, मधुमेह, रक्तचाप, गठिया आदि विभिन्न रोगों की स्थिति में आहार में गुणात्मक परिवर्तन होता है। मधुमेह में संतृप्त कार्बोज चीनी, मैदा इत्यादि तथा हृदय रोग, उच्च रक्तचाप में डालडा, घी, माँस, मछली अण्डा इत्यादि संतृप्त वसाम्ल हानिकारक हैं।

16 | आहार को संतुलित, सम्यक् तथा बोधपूर्ण बनाने के सिद्धान्त :

(1) ऊर्जा उत्पादक आहार कार्बोहाइड्रेट; वृद्धिकारक, क्षतिपूरक तथा सृजनहार आहार प्रोटीन; प्रतिरक्षात्मक, पाचक रस व एन्जाइम उत्प्रेरक तथा ऑस्मोसिस दाब-नियंत्रक आहार विटामिन तथा खनिज लवण, ऊष्मा

एवं चर्बी-उत्पादक प्रहार रक्षक आहार-वसा, जीवन-संचालक जल ... प्राणाधार ऑक्सीजन हमारे आहार में संतुलित अनुपात तथा पर्याप्त मात्रा ... होने चाहिए। इन तत्त्वों की कमी तथा अधिकता रोगोत्पादक होती है।

(2) सुरुचिपूर्ण, मनमोहक, आकर्षक तथा रोचक आहार ही स्वास्थ्य ... प्रदान करते हैं अतः आहार को अच्छी तरह सजा कर तथा प्रतिदिन बदल-बदल कर खाने से आहार के प्रति रुचि बनी रहती है। विविध भाँति के अपक्व आहार-गाजर, मूली, पालक, पत्तागोभी, फूलगोभी, अंगूर, टमाटर, ... अमरूद, इत्यादि; अंकुरित अनाजों में मूँग, चना, गेहूँ, मेथी, मोठ आदि विभिन्न प्रकार के लाल, पीले, बैंगनी, नीले, हरे, सफेद आदि नैसर्गिक रंग ... अनेक प्रकार के रसंयुक्त होने से स्वादपूर्ण देखने में बेहद आर्कषक एवं मनमोहक होते हैं। इस प्रकार के सुरुचिपूर्ण मनभावन आहार पाचक रसों के उत्पादन में सहायक तथा स्वयं पाचक-रस एवं एन्जाइमयुक्त होते हैं।

(3) संतुलित आहार संदूषित एवं प्रदूषित नहीं होना चाहिए। ... कम्पोस्ट खाद से उत्पन्न आहार ही स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। आहार को सुरक्षित कर रखते, खाते एवं बनाते समय मक्खियों, कीड़ों-मकोड़ों, मच्छरों, धूल कणों तथा अन्य गन्दगियों तथा संक्रामक कीटाणुओं से बचाना चाहिए। कुत्तों, बिल्लीं, खरगोश, चूहों तथा अन्य पालतू जानवरों की पहुँच से भोजन को बचाना चाहिए। इनके कारण भी अनेक रोगों का संक्रमण होता है।

(4) आहार पचने में सुपाच्य हो, इसका भी ध्यान रहे। सभी प्रकार के अंकुरित अनाजों में अनेक प्रकार के एन्जाइम, विटामिन आदि पोषक तत्त्वों के बढ़ जाने से वे पचने में हल्के हो जाते हैं। अंकुरित करने से कार्बोहाइड्रेट एवं प्रोटीन में गुणात्मक परिवर्तन होने से उनकी गुणवत्ता एवं सुपाच्यता बढ़ जाती है। उसी प्रकार जो आहार दुष्पाच्य एवं कठिन हो तो उनके पोषक तत्त्वों का संरक्षण करते हुए उबाल कर या रस अथवा सूप के रूप में प्रयोग करें।

(5) सुपाच्य एवं श्रेष्ठ किस्म का प्रोटीन दूध तथा अंकुरित अनाजों में मिलता है। एक भ्रान्त धारणा है कि माँस में ही श्रेष्ठ प्रोटीन है। विश्व की विभिन्न खाद्य-प्रयोगशालाओं में किये विभिन्न प्रयोगों से यह बात स्पष्ट

गई है कि सोयाबीन, मूँग, मूँगफली, चना, गेहूँ आदि अनाजों के अंकुरण का प्रोटीन माँस के प्रोटीन से भी श्रेष्ठ है। अत्यधिक माँसाहार रक्त में यूरिक एसिड तथा अन्य विषाक्त पदार्थों को निर्मित कर गठिया, कैंसर आदि रोग पैदा करते हैं। अंकुरित अनाजों से किसी प्रकार के शारीरिक उपद्रव नहीं होते हैं।

शरीर की विभिन्न स्थितियों में प्रति मिनिट कैलोरी की आवश्यकता निम्न होती है :—

पूर्ण विश्राम में 0·7 से 1.2 योगासन के समय 0·8 से 3 कैलोरी, ध्यान में 0·2 से 0 6, पत्र लिखना 1·9, ताश खेलना 2·1, साइकिल चलाना 6·2 मोटरस साइकिल चलाना 3.3, कार चलाना 3·2, आराम से बैठना 1 4, टेलिफोनतथा वेतार सुनना या बातें करना 1·9 से 2·25, लिखना पढ़ना 1·2 से 1·9, खाना बनाना, 2·4, फर्श पोंछना 5·2, प्लेट धोना 1·4, नाचना 5.2 तैरना 9 6, खिड़की साफ करना 4·4, मशीन चलाना 4·5, कोयला खोदना 5 0 से 10·5, पेड़ काटना 8.4 से 12 7, सामान्य फैक्ट्री का काम 3.3 कैलोरी प्रति मिनिट ऊर्जा की आवश्यकता होती है। उपर्युक्त विभिन्न शारीरिक परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित ऊर्जा (कैलोरी) का संतुलित आहार प्रयोग करें।

बच्चों का सम्यक् संतुलित आहार

स्वस्थ बच्चे, राष्ट्र की परम निधि हैं। उस परम निधि को हमारी अपंग सरकारी स्वास्थ्य सेवाएँ सुरक्षा नहीं दे पा रही हैं। अज्ञानता के कारण माता पिता नन्हे शिशुओं की न तो उचित देखभाल कर पाते हैं और न गर्भवती या दूध पिलाने वाली माताओं के पोषण पर ध्यान दिया जाता है। इसके दुष्परिणामस्वरूप भारत में 81 से 87 शिशु प्रति हजार मर जाते हैं। स्वीडन में यह दर 14·2, आस्ट्रेलिया में 19·1 तथा अमेरिका में 24·8 है। एक से चार वर्ष की आयु में प्रोटीन तथा कैलोरी संबंधी कुपोषण के कारण मरने वाले बच्चों की संख्या 1951 में एक हजार में 33 थी जो अब 12 रह गई है।

हमारे देश में स्कूल जाने की उम्र तक 18·7 प्रतिशत बच्चे कालकवलि हो जाते हैं। कुपोषण के कारण विभिन्न स्थितियों में मरने वाले बच्चों की दर यह है:-समय से पूर्व जन्म से 33%, श्वसन संबंधी रोगों से 18·2%, आंत्र से सम्बद्ध 11%, ज्वर से 4·1%, अभावजन्य रोग से 1.2%, इन्फेक्शन से 1·8%, मूत्र कष्ट से 0·6%, हृदय रोग से 0·5%, जख्म तथा दुर्घटना से 0·2%, घृणित रोग से 0 1%।

आन्ध्रप्रदेश के ग्रामीण अंचलों में कुपोषण के शिकार बच्चों के तुलनात्मक अध्ययन एवं सर्वेक्षण से निम्न बातें स्पष्ट हुई हैं—

(i) 20% बच्चों की लम्बाई, 40 से 50% बच्चों का वजन, 9% बच्चों का सिर, 30% बच्चों की त्वचा की मोटाई तथा 40% में हिमोग्लोबिन औसत माप से काफी कम था। बच्चों के स्वस्थ एवं संतुलित विकास के लिए निम्न संतुलित जैविक आहार का प्रयोग करें। शहरों में मजदूर-वर्गों के बच्चों की उपर्युक्त स्थिति है।

नवजात शिशु का सर्वश्रेष्ठ आहार माँ का दूध है। माँ के दूध में दुग्ध शर्करा, विटामिन सी, एन्जाइम, रोग-प्रतिरोधक तत्त्व, विटामिन ए, बी ग्रुप के सभी विटामिन, लोहा तथा अन्य पोषक तत्त्व श्रेष्ठ गुणवत्ता के होते हैं। माँ का दूध बच्चों के शरीर में शीघ्र अवचूषित होकर ऊर्जा एवं शक्ति प्रदान करता है। वह शिशु के एक-एक अंग का पोषण करने वाला, सभी प्रकार के रोगाणुओं, विषाणुओं तथा फफूँद से बचाने वाला है। बच्चों के सम्यक् विकास की दृष्टि से माँ के दूध का कोई विकल्प नहीं है। माँ के प्रथम दूध का खिस (कॉलेस्ट्रोया) विशेष रूप से रोग-अवरोधक है। जो माताऐं अज्ञानतावश दूध नहीं पिलातीं, उन्हें स्तन कैंसर होने की प्रबल संभावना रहती है। उनका नैसर्गिक सौन्दर्य भी चौपट हो जाता है। माँ का दूध, माँ के लिए विजातीय पदार्थ है अतः प्रकृति उसे शरीर से निकालना चाहती है। पर शिशु के लिए वह अमृत-तुल्य आहार है। माँ अपने स्तन से सिर्फ दूध ही नहीं पिलाती, बल्कि ममता, दुलार एवं प्रेम का आस्वादन भी कराती है। इससे बच्चे की उदरपूर्ति के साथ-साथ उसका हृदय तृप्त, मस्तिष्क व मानस उत्फुल्लता एवं प्रफुल्लता से प्लावित रहता

है । कुछ मानसिक प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि जिन बच्चों को माँ का प्रेमपूर्ण दूध, प्यार-दुलार व ममत्त्व नहीं मिलता, वे बड़े होने पर उद्दण्ड अपराधी, व्यभिचारी तथा बलात्कारी बनते हैं।

माँ का दूध विकारग्रस्त होने अथवा माँ की मृत्यु हो जाने के बाद बकरी के दूध में पानी मिला कर देना चाहिए। बकरी का दूध नहीं मिलने पर गाय के दूध में पानी मिला कर दे सकते हैं । 7 साल के बाद दूध में पानी न मिला कर सीधे पिलाएं। डिब्बाबन्द शिशु-आहार या दूध पाउडर काफी हानिकारक हैं । इन आहारों में जबर्दस्त संक्रमण तथा अभावजन्य रोग होते हैं। किसी प्रकार दूध न मिलने पर जीवन बचाने के लिए अंतिम रूप में ही डिब्बाबन्द आहारों का उपयोग करना चाहिए । शिशु को कम से कम 6 से 9 माह तक सिर्फ माँ का ही दूध मिलना चाहिए । एक औंस (28.35 ग्राम) दूध में 20 कैलोरी ऊर्जा होती है। प्रतिदिन 600 मि.ली. दूध नवजात शिशु को मिलना चाहिए । एक स्वस्थ भारतीय माँ से 500 से 860 मि.ली. दूध निकलता है। रोने पर बार-बार बच्चे को दूध पिलाना मूर्खता है । बच्चे के स्वास्थ्य-संवर्द्धन की दृष्टि से दूध पिलाने में 3½ घंटे का अन्तराल रहे । प्रातः 6 बजे से दूध पिलाना प्रारम्भ करके रात्रि 10 बजे तक दूध पिलाएं । एक समय में 20 से 25 मिनट तक दूध पिलाएं । प्रथम 3 मास तक ½ चम्मच शहद+2-3 बूंद नींबू रस + 35 मि.ली. पानी में मिला कर 3-3 घंटे के अंतराल पर पिलाएं। 3 से 6 मास में एक चम्मच शहद तथा 6 मास के बाद 2 चम्मच शहद 5-10 बूंद नींबू रस 70 सी.सी. पानी में मिला कर 3-3 घंटे के अंतराल पर दें। 6 मास के बाद बच्चे को गाय या बकरी का दूध प्रारम्भ करें।

तीन माह बाद शिशु को एक से दो चम्मच संतरे का रस दिन में तीन बार ½ चम्मच शहद मिला कर दें । 6 मास से गाजर, टमाटर, सेब आदि फलों का रस व केला आदि दें। शिशुओं को कभी-कभी इन्जाइमेटिक रेजुवेलक वाटर शहद मिला कर दें । 9 माह के बाद ठोस आहार, जौ गेहूँ चाँवल आदि का दलिया, माँड, उबला हुआ आलू, शकरन्द, लौकी, गाज[illegible] इत्यादि आवश्यकतानुसार दें । माँ के दूध में विटामिन सी. बी. एवं अ[illegible]

तत्त्व कम होता है जिसकी पूर्ति उपर्युक्त जैविक आहार से करें। माँ के आहार में कच्चे ताजे फल एवं सब्जियाँ, अंकुरित अनाज तथा इनके रस प्रचुरता से होना चाहिए। शिशुओं को शहद पिलाने के बाद माँ का दूध पिलायें। 1½ घंटे पश्चात् संतरे का रस दें। 9 मास के बच्चों को दाँत निकलने के बाद ठोस फल, अंकुरित अनाज तथा इसका दलिया आदि ठोस आहार दें। बच्चों को ठूँस-ठूँस कर न खिलाएँ। प्रारम्भ से ही बच्चों को पर्याप्त मात्रा में जल पिलाने तथा सुबह-शाम समय पर पाखाना जाने की आदत डालें। बच्चों के संतुलित आहार में उनकी उम्र के अनुसार निम्न प्रोटीन तथा कैलोरी शरीर के प्रति कि.ग्रा. वजन के हिसाब से मिल जाये, इस बात का विशेष ध्यान रखें।

उम्र	कैलोरी/कि.ग्रा.	प्रोटीन/कि.ग्रा.
0–3 माह	120	2.22
3–6 माह	115	1.88
6–9 माह	110	1.63
9–12 माह	105	1.44
1–2 वर्ष	114	1.25
2–3 वर्ष	107	1.15
3–4 वर्ष	103	1.10
4–5 वर्ष	100	0.95
5–10 वर्ष	81	0.89

विभिन्न प्रयोगों से ज्ञात हो चुका है कि मूँग, मोठ आदि अंकुरित अनाज तथा इनके दूध, मौसमानुसार मिलने वाले ताजे फल एवं सब्जियाँ तथा इनके रस व सलाद बच्चों के लिए श्रेष्ठ आहार हैं। बच्चों को बचपन से ही ऐसे आहार खाने की आदत डालनी चाहिए। मेरी तीन

बच्चियाँ प्रज्ञा (9) दिव्या (7) सौम्या (4) इस प्रकार का आहार बड़े चाव से खाती हैं । उन्हें आज तक न कोई दवा दी गई, न इन्जेक्शन व न उन्हें टीका ही लगवाया गया । टॉफी, विस्कुट, ब्रेड केक, गोलियाँ, साफ्ट ड्रिंक आदि कन्फेकशनरी तथा सिंथेटिक आहार बच्चों के मोहक दुश्मन हैं। टेलिविजन द्वारा इन आहारों को जिस प्रकार प्रचारित किया जाता है, वह भावी पीढ़ी के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए सबसे बड़ा खतरा है।

विटामिन डी. की प्राप्ति के लिए प्रातःकालीन धूप में लिटा कर शिशु की मालिश करें । सिर को तौलिये से ढ़ँक कर प्रतिदिन 15 से 30 मिनट तक धूप-स्नान दें । जन्म के तीसरे महीने से संतरे के रस में कॉड-लीवर ग्रायल मिला कर समानुपात में एक चम्मच प्रति दिन दें । इससे विटामिन ए. डी तथा सी. की पूर्ति होती है और बच्चों की हड्डियों का विकास अच्छी तरह होता है । बच्चे को अण्डा, माँस, मछली इत्यादि देने की ग्रावश्यकता नहीं है। उपर्युक्त आहार से सभी प्रकार के पोषक एवं जीवनरक्षक तत्त्वों की पूर्ति हो जाती है । गरीब माताएें अंकुरित अनाज का दूध गर्भावस्था एवं प्रसव के पूर्व तथा बाद में पर्याप्त मात्रा में लें। मौसमानुसार मिलने वाले ताजे सस्ते अमरूद, टमाटर, गाजर ग्रादि फल एवं सब्जियाँ कच्ची ही खानी चाहिए। इससे माताग्रों में सभी प्रकार के पोषक तत्त्वों की पूर्ति हो जाती है। कुछ बच्चे विशेषत: ग्रामीण अंचलों में अपनी माँ का दूध 2-3 साल की उम्र तक पीते रहते हैं । इसमें घबराने जैसी बात नहीं है । ऐसे बच्चों को अपनी माँ के दूध के ग्रतिरिक्त अन्य उपर्युक्त आहार भी ग्रवश्य देना चाहिए, ताकि कुपोषण नहीं हो । बच्चों द्वारा माँ का दूध अधिक दिनों तक पीना माँ के स्वास्थ्य के लिए भी फायदेमन्द है । ऐसी माताओं का माहवारी चक्र सामान्य रहता है । वे बार-बार गर्भवती नहीं होतीं तथा हार्मोन-स्राव व्यवस्थित होने से तनाव-मुक्त रहती हैं । 9 माह से लेकर 15 वर्ष तक के बच्चों का जीवन-दायक संतुलित आहार का सामान्य चार्ट निम्नलिखित है—

समय		9 से 12 माह	1 से 5 वर्ष	5 से 10 वर्ष	10 से 15 वर्ष
6.00	प्रातः	स्तनपान 20 मिनट	नींबू+पानी+शहद	नींबू+पानी+शहद	नींबू+पानी+शहद
7.30	प्रातः	कॉड लीवर आयल 1 चम्मच+1 चम्मच संतरे का रस	300 सी सी. दूध तथा फल मौसमानुसार 200 ग्राम	दूध+फल 300 ग्राम मौसमानुसार	दूध+फल 400 ग्रा. मौसमानुसार
10.00	प्रातः	50 सी.सी. फल का रस	200 सी.सी. फल का रस	250 सी.सी. फल का रस	300 सी.सी. फल का रस
11.00	प्रातः	स्तनपान 15 मिनट	—	—	—
12.30 मध्याह्न काल का भोजन	दोपहर	दलिया 25 ग्राम उबली सब्जी 25 ग्राम+सूप	1-2 रोटी/चाँवल	2-3 रोटी/चाँवल	2-3 रोटी/चाँवल
			+उबली सब्जी 200 ग्रा.	250 ग्राम	300 ग्राम
			+सलाद 100 ग्राम	150 ग्राम	200 ग्राम
			+अंकुरित अनाज 20 ग्रा.	30 ग्राम	50 ग्राम
			+दही 80 ग्राम	100 ग्राम	125 ग्राम
			+मक्खन 20 ग्राम	25 ग्राम	25 ग्राम
			+दाल 20 ग्राम	25 ग्राम	25 ग्राम
3.30	सायं	मौसमानुसार सब्जियों का रस 50 सी.सी.+½ चम्मच शहद	मौसमानुसार सब्जियों का रस 150 सी.सी.	मौसमानुसार सब्जियों का रस 200 सी.सी.	मौसमानुसार सब्जियों का रस 225 सी.सी.

5.30	सायं	स्तनपान	मौसमानुसार फल अथवा अनाजों का दूध 150 सी सी.	5 से 15 साल के बच्चों के लिए फल या अंकुरित बीज का दूध दें।
7.30	सायं	गाय या बकरी का दूध+फल चबानेके लिए।	रोटी/चाँवल उबली सब्जी सलाद मक्खन दाल	रोटी/चाँवल, उबली सब्जी, मक्खन, सलाद, दाल इत्यादि
9.30	रात्रि	स्तनपान 25 मिनट	दूध 200 सी सी.	दूध 300 सी सी. 350 सी सी.

उपर्युक्त तालिका पर्याप्त पोषण तथा संतुलित जीवनदायक आहार का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। बच्चों के आहार-क्रम में क्रमशः धीरे-धीरे वृद्धि करनी चाहिए। उपर्युक्त तालिका में निर्देशित आहार परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है। जैसे-जैसे उम्र बढ़े, वैसे-वैसे प्रोटीन, कार्बोज तथा वसा की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाएं। भोजन की समाप्ति के बाद बच्चों को सेब, अमरूद आदि ठोस फल खाने को दें।

एक से अठारह साल तक के बच्चों को मुख्य पोषक तत्त्वों की सम्यक् आवश्यकता निम्न प्रकार है—

	बच्चे (वर्ष)		←——लड़के (वर्ष)——→				←——लड़कियाँ——→			
मुख्य तत्त्व	1–3	3–5	5–9	9–12	12–15	15–18	5–9	9–12	12–15	15–18
1- प्रोटीन ग्राम.	40.	50.	52	60	75	85	48	55	62	58
2- कैल्सियम ग्राम	1.1	1	0.8	1.1	1.4	1.4	0.8	1.1	1.3	1.3
3- लोहा मि.ग्रा.	7.	10	12	15	15	15	12	15	15	15
4- विटामिन ए. (आई. यू.)	2000	2500	3500	4500	5000	5000	3500	4500	5000	5000
5- थायमिन मि.ग्रा.	0.6	0.8	0.8	1.0	1.2	1.4	0.7	0 9	1.	0 9
6- रिबोफ्लेविन (मि. ग्रा.)	0.9	1.0	1.3	1.0	1 8	2.2	1.2	1.3	1.5	1.3

नायसिन	6.	8 0	14	16	20	21	13	15	17	15
7- फॉलिक एसिड (मि ग्रा.)	50	60	70	80	90	100	50	60	60	80
8- एस्कोर्बिक एसिड (मि. ग्रा.)	35	45	60	70	80	80	60	80	80	70
9- विटामिन डी. (मा. ग्रा.)	400	400	400	400	400	400	400	400	400	400
10- ऊर्जा (कैलोरी	85/kg		2100	2400	3000	3400	1900	2200	2500	3200

वयस्कों के लिए जीवनदायक संतुलित आहार-तालिका

सोकर उठने के बाद — एक नींबू+एक ग्लास पानी+2 चम्मच शहद

प्रातःकालीन नाश्ता — फल या सब्जी (कच्ची) 500 ग्राम+दूध एक पाव अथवा मौसमानुसार फल +अंकुरित अनाजों का दूध अथवा रात्रि का भीगा हुआ मुनक्का, खजूर अंजीर और दूध एक पाव।

दोपहर का भोजन — चाँवल 50 ग्राम+3–5 रोटियाँ (प्रति रोटी 50 ग्राम आटे की) +उबली सब्जी 400 ग्राम+सलाद कच्ची सागभाजी 200+अंकुरित अनाज 50 ग्राम+मक्खन 30 ग्राम+दही 100 ग्राम (दूध या सोयाबिन का)

मध्याह्न काल — मौसमानुसार सस्ते फल एवं ताजी कच्ची सब्जियाँ 250 से 500 ग्राम

सायंकालीन — चाँवल, 3-4 रोटियाँ (प्रति रोटी 50 ग्राम आटे की)+उबली सब्जी 300 ग्राम +सलाद 200 ग्राम + दाल 30 ग्राम+अंकुरित अनाज 25-30 ग्राम+ मक्खन 25-50 ग्राम।

सोने से एक घंटे पूर्व — दूध 300 से 400 मि ली.।

अत्यधिक श्रम करने वाले मजदूर अपने आहार में दाल, रोटी तथा मक्खन की मात्रा बढ़ादें। प्रश्न उठता है कि गरीब मजदूर तथा किसान महँगे फल, मक्खन एवं सब्जियों का प्रयोग कैसे करें। आत्मचिन्तन तथा विवेक का सदुपयोग करते हुए स्वास्थ्यघाती आदतों से मुक्त होकर उनसे बचें। पैसे का उपयोग स्वास्थ्यदायक आहार पर खर्च करें। एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि आम मजदूर औसतन प्रतिदिन 5 से 25 रुपये बीड़ी, तम्बाकू जर्दा, शराब तथा अन्य नशीली अखाद्य चीजों पर खर्च करता है। आम आदमी औषधियों एवं चिकित्सकों पर 100 से 150 रुपये प्रतिमाह खर्च करता है। इन पैसों को बचा कर उपर्युक्त आहार का प्रयोग करें तो इन जीवन-घाती औषधियों एवं दुर्व्यसनों से मुक्त रह कर सदैव स्वस्थ रह सकता है। खेतिहर मजदूर तथा किसान अपने खेत के कुछ हिस्सों में कच्ची खाई जाने वाली टमाटर, पालक, गाजर, शलगम, मूली, लौकी इत्यादि सब्जियाँ अवश्य पैदा करें और उनका उपयोग स्वयं तथा अपने परिवार के लिए करें। उन्हें बेच कर जीवनघाती आहारों को न खरीदें। गोपालन को बढ़ावा दें, दूध से दही बना कर मक्खन निकालें एवं छाछ बनायें। छाछ बहुत ही उपयोगी आहार है।

गर्भवती तथा दूध पिलाने वाली माताओं का आहार :

5·00 प्रात: —एक नींबू + एक ग्लास पानी + 2 चम्मच शहद या अमृता
7·30 प्रात: —गाजर, चुकन्दर, पालक, टमाटर इत्यादि उपलब्ध मौसम अनुसार सब्जियों का रस
9.00 प्रात: —एक गिलास दूध + फल (250 ग्राम) + अमृता 50 ग्राम
11·30 प्रात: —3 से 5 रोटी + सब्जी 300 से 400 ग्राम + अंकुरित अनाज 50 ग्राम + दही 200 ग्राम + सलाद 200 ग्राम + मक्खन 25 ग्राम + दाल 35 ग्राम
2.00 अपराह्न—पपीता एवं अनन्नास का कम प्रयोग करते हुए अन्य सभी प्रकार के मौसम अनुसार फल एवं सब्जियाँ खायें।
4.30 सायं —फल या सब्जी का रस एक गिलास 300 सी. सी.
7.30 सायं —2-3 रोटी + उबली सब्जी + सलाद + अंकुरित अनाज + दाल 35 ग्राम।
9.00 रात्रि —दूध 300 सी. सी.

गर्भावस्था तथा दूध पिलाने की स्थिति में अतिरिक्त ऊर्जा, विटामिन, खनिज-लवण तथा प्रोटीन की आवश्यकता होती है अतः इनकी पूर्ति के लिए उपर्युक्त आहार उपयुक्त है। गर्भावस्था के समय पालक टमाटर का रस तथा दूध पिलाने की स्थिति में गाजर का रस तथा रिजका व चना का अंकुरण अत्यधिक उपयोगी है। इन दोनों स्थितियों में अतिरिक्त ऊर्जा की पूर्ति हेतु गरिष्ठ भोजन हानिकारक है। भोजन की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान रखें। कम मात्रा में भी श्रेष्ठ गुणवत्ता का आहार प्रत्येक स्थिति में स्वास्थ्य-वर्द्धक है।

विभिन्न अवस्थाओं में प्रत्येक भारतीय के लिए दैनिक पोषक तत्वों की आवश्यकता :—

	हल्का श्रम पुरुष	सामान्य श्रम(पु.)	अत्यधिक श्रम (पु)	हल्का श्रम महिला	सामान्य श्रम (म.)	कठिन श्रम (म)	गर्भावस्था	दुग्धस्रवणावस्था
ऊर्जा (कैलोरी)	2400	2800	3900	1900	2200	3000	3300	3700
प्रोटीन (ग्राम)	55	55	55	45	45	45	55	65
कैल्शियम (ग्राम)	0·40	0 45	0.50	0·40	0.45	0.50	1.00	1.00
लोहा (मि. ग्राम)	20	20	20	30	30	30	40	30
विटामिन ए (रेटिनॉल)(मा ग्रा.)	750	750	750	750	750	750	750	1150
विटा. ए (मा ग्रा.) (कैरोटिन)	3000	3000	3000	3000	3000	3000	3000	4650
थायमिन (मि.ग्रा.)	1.20	1.40	2 00	1 00	1.10	1·50	1·70	1·90
रिबोफ्लेविन (मि. ग्रा)	1.30	1.50	2.20	1.0	1.20	1.70	1.90	2·10
नायसिन (मि.ग्रा.)	16.00	19.00	26.00	13.00	15.00	20.00	22 00	25.00
अस्कोर्बिक एसिड (मि.ग्रा.)	50 00	50.00	50.00	50 00	50 00	50.00	50.00	80.00
फॉलिक एसिड (मा ग्रा)	100	100	100	100	100	100	200	300
विटामिन बी$_{12}$ (मा ग्रा)	1·0	1	1	1	1	1	1.50	1.50
विटामिन डी	200	200	200	200	200	200	200	200

औसत भारतीयों द्वारा खाए जाने वाले आहार की पोषण-क्षमता अनाज 540 ग्राम, दालें 12 ग्राम, पत्ते वाली सब्जी 7 ग्राम, जड़ मूल वाली आलू गाजर आदि सब्जी 7 ग्राम, अन्य हरी सब्जियाँ 85 ग्राम, दूध 80 ग्राम माँस, मछली, अंडा 5 ग्राम, तेल, घी इत्यादि वसा 15 ग्राम, चीनी तथा गुड़ 13 ग्राम, फल 5 ग्राम से 57 ग्राम प्रोटीन, 490 ग्राम, कार्बोज, कैल्सियम 360 मि ग्रा., लोहा 24 मि. ग्रा., 340 मा. ग्रा. विटामिन ए., 0·6 मि. ग्राम रिबोफ्लेविन, 0.7 मि. ग्रा. थायमिन तथा 2400 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।

ठीक इसी प्रकार 200 ग्राम गेहूँ, चाँवल इत्यादि अनाज 200 ग्राम, मडुवा बाजरा बाजरी आदि नन्हे दाने वाले अनाज 200 ग्राम, विभिन्न दालें 70 ग्राम, पत्तीदार सब्जियाँ 100 ग्राम, अन्य प्रकार की सब्जियाँ 85 ग्राम, फल 27 ग्राम, दूध 175 मि ली., चीनी व गुड़ 57 ग्राम, तेल 28 ग्राम, माँस मछली एवं अण्डा 28 ग्राम के प्रयोग से 60 ग्राम प्रोटीन, 430 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 50 ग्राम वसा 0·8 ग्राम कैल्शियम, 1·4 ग्राम फास्फोरस, 40 मि. ग्रा. लोहा, 960 मा. ग्राम विटामिन ए, 1.8 मि. ग्राम थायमिन, 200 मि. ग्राम. विटामिन सी तथा 2430 कैलोरी ऊर्जा हमें प्राप्त होती है।

बीमारी तथा कुपोषण का कारण मात्र गरीबी ही नहीं है। इनका कारण अज्ञानता भी है। आहार का चुनाव समझ, बोध तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करें। विश्व के अनेक देशों में आहार संबंधी हो रहे शोध कार्यों की जानकारी रखते हुए तदनुरूप आहार रूपान्तरण अवश्य करें। अपने दैनिक आहार में 100 ग्राम अंकुरित अनाज 100 ग्राम मौसमानुसार सस्ते फल तथा 100 ग्राम पत्ते वाली तथा अन्य सब्जियों को कच्चा ही खाएँ। आहार में इतने से परिवर्तन से स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक समस्याओं से मुक्ति मिल जाती है। इस प्रकार समझपूर्ण परिवर्तन गरीब अमीर तथा सभी समुदाय के लोग कर सकते हैं। टीकों तथा औषधियों के बल पर कभी भी राष्ट्र को स्वास्थ्य के मामले में स्वावलम्बी नहीं बनाया जा सकता। यहाँ पर बुनियाद ही गलत है। स्वावलम्बन के लिए जन-गण तक स्वास्थ्य-शिक्षण की व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक ज्ञान की ज्योति ले जानी होगी। भारत की गरीब जनता के लिए जीवनदायक

संतुलित आहार स्वास्थ्य-स्वावलम्बन का मूल आधार होना चाहिए। इसी में राष्ट्रीय स्वास्थ्य का कल्याण है। टीकों के सम्बन्ध में अनेक खोजें व निष्कर्ष हमारे सामने आ रहे हैं। जैसे चेचक के टीके का सम्बन्ध भयंकर महामारी एड्स से माना गया है। उसी प्रकार अन्य टीके हमारी नैसर्गिक रोग-प्रतिरोधक क्षमता को अस्तव्यस्त कर अनेक नई नई महामारियों से ग्रस्त करते हैं।

17 जमीन (भूमि), भोजन और जीवन बनाम शुद्धतम नैसर्गिक कार्बनिक आहार प्राप्ति के उपाय :

हमारे स्वास्थ्य का आधार है-जीवनदायक संतुलित आहार। जिस प्रकार का हमारा आहार होगा, उसी प्रकार का हमारा शारीरिक, मानसिक आत्मिक स्वास्थ्य होगा। हमारे आहार का मुख्य स्रोत है वनस्पति। वनस्पति के स्वास्थ्य का मौलिक आधार है जमीन, जहाँ वह उपजायी जाती है। जमीन का जीवन है—उसकी उर्वरा शक्ति और उर्वरा-शक्ति निर्भर है खाद पर। इस प्रकार मानव-जीवन का मूल स्रोत जमीन और वनस्पति है। वनस्पति प्रकृति से अपना आहार तैयार करती है, जमीन से जीवन प्राप्त करती है और मानव जीवन को प्राणदान देती है। प्रकृति-संरक्षण का यह आहार-क्रम अपने आप में वैशिष्ट्ययुक्त, विचित्र एवं रहस्यमय है। जमीन में स्थित तत्वों को मनुष्य सीधे अपना भोजन नहीं बना सकता है। लेकिन पौधे इन्हें अपना भोजन बना कर हमारे लिए उपयोगी बना देते हैं। जमीन में स्थित, तांबा, कैल्शियम, जल वातावरण से ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, सूर्य किरणों इत्यादि तत्त्वों को अपना आहार बना कर हमारे लिए कार्बोज, प्रोटीन, खनिज तत्व, एन्जाइम, विटामिन इत्यादि का निर्माण करते हैं। आइये, प्रकृति की प्रयोगशाला में जमीन से पौधों के लिए तथा पौधों से हमारे लिए आहार का निर्माण किस प्रकार होता है, इसकी संक्षिप्त वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करें।

भूमि का भोजन और स्वास्थ्य :—आपको पढ़ कर आश्चर्य हो सकता है कि भूमि का कैसा भोजन और कैसा स्वास्थ्य ? लेकिन अब कृषि वैज्ञानिक

ने सिद्ध कर दिखाया है कि भूमि के भोजन के प्रकार एवं स्वास्थ्य पर ही मानव-जीवन का अस्तित्व अवलम्बित रह सकता है। भूमि के स्वास्थ्य से जिस प्रकार हम खिलवाड़ कर रहे हैं, उसी प्रकार यदि करते रहे तो मानव मात्र का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाएगा। जिस प्रकार हमारे अन्दर जीवन है, उसी प्रकार जमीन के अन्दर भी जीवन धड़कता है। मिट्टी भी प्राणवान तथा सजीव है। माइक्रोस्कोप द्वारा मिट्टी को देखने पर पता चलता है कि उसमें असंख्य सूक्ष्म जीवाणु माइक्रोऑर्गेनिज्म क्रियाशील हैं। सजीव मिट्टी के जीवन वे कार्बनिक पदार्थ हैं, जो पेड़ पौधों के बचे हुए अवशेषों तथा जन्तुओं के अवशिष्ट पदार्थों के सड़ने से प्राप्त होते हैं।

कुदरत के इस अद्वितीय करिश्मे को देख कर ही डॉ. सी. ए. ब्राउन ने अपने उद्‌गार इस प्रकार प्रकट किये हैं—चट्टान के प्रमुख तत्त्व कुछ प्रक्रियाओं द्वारा मिट्टी में बदल जाते हैं और वही मिट्टी पौधों द्वारा आत्मसात की जाती है, जो प्राणियों एवं मनुष्यों की प्रमुख जैव-प्रक्रियाओं को संचालित करती है। साधारण दिखने वाले मिट्टी के सामान्य अकार्बनिक तत्त्व पौधों द्वारा प्रोटीन, कार्बोज, श्वेतसार, शर्करा, वसा, सजीव लवण, इन्जाइम, हार्मोन इत्यादि अनेक रहस्यमय तत्त्वों में कैसे बदल जाते हैं, यह एक महान आश्चर्य है।

जमीन के जीवन की धड़कन अनेक प्रकार के उपयोगी बैक्टिरिया हैं जो जमीन के अन्दर रहते हैं। ये जमीन के प्राण हैं। इनमें से कुछ बैक्टिरिया कार्बनिक पदार्थों को गला मिटा कर खंडन करते हैं तथा कुछ बैक्टिरिया मिट्टी की संरचना को उपज के अनुकूल श्रेष्ठ बनाते हैं। कुछ बैक्टिरिया जमीन के स्वास्थ्यघाती हानिकारक बैक्टिरिया से निरन्तर संघर्षरत रहते हैं और भूमि में रहने वाले एजोबैक्टर तथा क्लॉस्ट्रीडियम बैक्टिरिया भूमि में स्वतंत्र रूप से रहते हैं। ये भूमि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर भूमि को उपजाऊ बनाते हैं। लेग्यूमिनोसी परिवार के सदस्य सेम, चना, मसूर, अरहर आदि दलहन अनाज के पौधों की जड़ों में राइजोबियम बैक्टिरिया होते हैं जो नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य करते हैं। नाइट्रोसोमोनास तथा नाइट्रोबैक्टर इत्यादि नाइट्रीफायिंग बैक्टिरिया भी यही

काम करते हैं । कुछ बैक्टिरिया मरे हुए जानवरों, पेड़-पौधों तथा मनुष्य के मृत शरीरों पर आक्रमण कर उनके जटिल यौगिकों को कार्बनडाइ-ऑक्साइड, पानी, सल्फेट नाइट्रेट आदि सरल पदार्थों में परिवर्तित कर जमीन को पोषण देते हैं तथा वातावरण की सफाई रखते हैं ।

कुछ बैक्टिरिया मल-मूत्र, पेड़–पौधों की पत्तियों को सड़ा कर खाद तथा ह्यूमस में परिवर्तित कर जमीन को पोषण प्रदान करते हैं । पानी लगी भूमि या कम्पोस्ट खाद के गड्ढे के सबसे निचले हिस्से में जहाँ ऑक्सीजन नहीं पहुँच पाती है वहाँ वैसिलस या बैक्ट्रियम डिनाइट्रीफिकैन्स बैक्टिरिया डीनाइट्रिफिकेशन प्रक्रिया द्वारा मिट्टी के प्राणदायक यौगिकों को नाइट्रोजन या नाइट्रोजन ऑक्साइडों में बदल कर मिट्टी को प्राणहीन बना देते हैं । भूमि में इन हानिकारक कीटाणुओं से लड़ने की अद्भुत क्षमता होती है । भूमि में प्रतिरक्षक बैक्टिरिया होते हैं जो इन हानिकारक बैक्टिरिया पर नियंत्रण रखते हैं ।

कम्पोस्ट खाद जमीन का जीवन है । जमीन की उर्वरा शक्ति तथा जीवनी शक्ति को संवर्द्धन करने वाला कम्पोस्ट खाद ही है । कम्पोस्ट खाद के अभाव में जमीन निष्प्राण होकर ऊसर बन जाती है । कम्पोस्ट खाद को बनाने तथा सड़ाने की प्रक्रिया भी वैज्ञानिक ढंग से होनी चाहिए । किसी चीज के सड़ने की प्रक्रिया में टोमाइंस, हाइड्रोजन सल्फाइड, मर्कप्टैंस आदि विषाक्त तत्त्व पैदा होते हैं । वे कम्पोस्ट खाद बनाने वाले तथा अन्य उपयोगी बैक्टिरिया जीव तथा पौधों के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं । कम्पोस्ट खाद बनाते समय मिट्टी तथा पौधों के लिए उपयोगी बैक्टिरिया के संवर्द्धन का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए । कम्पोस्ट खाद बनाना एक सम्यक् कला एवं विज्ञान है । कम्पोस्ट खाद बनाते समय मिट्टी, मिट्टी के जीवन, नमी तथा ऑक्सीजन इत्यादि सभी चीजें संतुलित स्थिति में होनी चाहिए । संतुलित स्थिति में होने से ही कार्बनिक प्रक्रिया अच्छी तरह सम्यक् होती है ।

कम्पोस्ट खाद में किसी प्रकार की रासायनिक खाद की मिलावट नहीं की जानी चाहिए । कम्पोस्ट खाद से पौधों की जड़ों में नमी बनी रहती है जो

जड़ों के विकास में सहायक है। पौधों के प्राणदायक आहार खाद के रूप में मुख्यतः नत्रजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश काम में आता है। इनमें जैविक रसायनों के प्रयोग से मिट्टी प्राणवान एवं उर्वरा हो जाती है। नत्रजन से पौधों के धड़, तने, शाखाएँ एवं पत्तों का विकास एवं स्वास्थ्य संरक्षण होता हैं। पत्ते स्वस्थ एवं गहरे हरे रंग के होते हैं। फॉस्फोरस, जड़ों को पुष्ट एवं बलशाली बनाती है। फल अच्छे लगते है एवं स्वस्थ होते हैं। पोटाश, पौधों के सभी भागों अर्थात् पेड़ को स्वस्थ एवं सुदृढ़ बनाता है। यह फलों को सम्यक् रंग-रूप स्वाद तथा आकार प्रदान कर स्वस्थ बनाता है। ये तत्त्व कम्पोस्ट या सजीव खाद के रूप में तथा रासायनिक या निर्जीव खाद के रूप में प्रयुक्त होते हैं। भारतवर्ष की जलवायु, भूमि आदि को देखते हुए यहाँ की भूमि के अनुकूल सजीव कम्पोस्ट खाद ही उपयुक्त है। प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से पौधों, फलों व फूलों में किसी प्रकार की विकृति पैदा न हो, इस दृष्टि से कम्पोस्ट खाद ही उपयोगी हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में विभिन्न प्रकार के आहार मौलिक औषधियों के रूप में प्रयुक्त होते हैं अतः आहार अपने मौलिक गुणों से सम्पन्न रहें, उनमें किसी प्रकार की रासायनिक विकृति पैदा न हो, इस दृष्टि से कम्पोस्ट खाद बेहद उपयोगी है। आइये, उन कम्पोस्ट जैव-खादों की संक्षिप्त जानकारी भी प्राप्त करें।

शुद्ध जैव आहार प्राप्त करने के तरीके :—

(1) पशुओं से गोबर, मल-मूल तथा पशुशालाओं के घास पात मिश्रण युक्त खाद :—इस खाद का उपयोग विश्व के किसान शताब्दियों से करते आ रहे हैं। यह जैव खाद सभी खादों से श्रेष्ठ माना जाता है। यह खाद जमीन तथा पौधों के स्वास्थ्य-संरक्षण, संवर्द्धन के साथ साथ ऐसे जीवाणुओं को पैदा करता है जो प्राणहीन भूमि में भी जीवन-चेतना का संचार करते हैं।

इस खाद की गुणवत्ता पशु तथा पशु-आहार पर निर्भर होती है। गाय-भैंस की अपेक्षा भेड़-बकरी के मलमूत्र का खाद उत्तम होता है। ऊँट, घोड़ा तथा हाथी का खाद मट्टियार भूमि के लिए उपजाऊ होता है। धूप तथा वर्षा से बचा हुआ खाद ज्यादा उपयोगी होता है। दो जोड़ी बैल, ऊँट या भैंसा तथा एक गाय अथवा भैंस के खाद के लिए 12 × 12

× 6 फीट गड्ढ़ा खोदें, । नीचे से प्लास्टर अथवा मोरम से पीट कर समतल कर दें, ताकि खाद के घुलनशील उपयोगी तत्त्वों को जमीन न सोख लें तथा हानिकारक बैक्टिरिया पैदा न हों। गड्ढे को ऊपर से झोंपड़ी, घास फूस या छप्पर से ढ़ँक दें ताकि सूर्य-प्रकाश न पड़े । व्यवस्था ऐसी रखें कि सभी प्रकार के गोबर तथा मलमूत्र गढ्ढे में अच्छी तरह इकट्ठा हों। यह खाद 10 से 15 क्विटल प्रति एकड़ देना चाहिए ।

(2) **मनुष्य के मलमूत्र का खाद**—पूज्य बापू द्वारा बताई गई विधियों के अनुसार गाँवों में मल-मूत्र का खाद अच्छी तरह उपयोग में लाया जा सकता है । गाँवों में जब भी कोई पाखाना जाये तो सर्वप्रथम खेत में गड्ढा खोद कर उसमें पाखाना करे । फिर उसे मिट्टी से ढँक दे। ऐसा करने से गंदगी भी नहीं फैलेगी तथा जमीन को अच्छे किस्म का खाद-आहार भी मिल जायेगा । ऐसा पोषणयुक्त खाद तरकारी तथा अन्य फलों के लिए उपयोगी है। यह खाद भी 10 से 12 क्विटल प्रति एकड़ दें।

(3) **बायोगैस प्लांट खाद :**—इसमें सभी प्रकार के प्राणियों (पालतू जानवरों, मनुष्यों आदि) के मलमूत्र को सड़ा कर गैस बनाई जाती है जिसे ताप, प्रकाश तथा अन्य ऊर्जाओं में बदल कर काम में लिया जाता है । इससे प्राप्त खाद का घोल जमीन व पौधों के लिए सर्वश्रेष्ठ खाद-टॉनिक सिद्ध होता है । इसमें जमीन तथा पौधों के लिए उपयोगी अनेक प्रकार के एन्जाइम, बैक्टिरिया तथा अन्य पोषक तत्त्व होते हैं।

(4) **तेल बीजों के अंतिम उत्पाद खलियों के खाद :**—इस खाद का उपयोग दो प्रकार से किया जाता है । नीम, एरंड, करंज, महुआ, कनेर आदि कड़वी खलियों को सीधे जमीन में डाल कर तथा सरसों अलसी, तिल मूँगफली आदि मधुर खलियों को पालतू पशुओ को खिला कर उनसे प्राप्त मल-मूत्र के रूप में किया जाता है।.

खली में नत्रजन (यूरिया किस्म के) खाद ज्यादा होते हैं। खली के विभिन्न खाद-तत्वों की प्रतिशत मात्रा निम्नानुसार होती है—

पोषक तत्त्व	मूँगफली	तिल	सरसों	बिनौला	अलसी
नत्रजन	7.6	5.0	5.6	2.6	5.0
फॉस्फोरस	2.3	1.1	1.9	1.2	1.6
पोटाश	2.2	1.0	1.4	1.1	1.6

पोषक तत्त्व	नारियल	कुसुम	नीम	करंज	एरंडी	महुआ
नत्रजन	3.7	5.8	4.4	3·5	5.0	2.6
फाँस्फोरस	1.9	1.3	1.0	0.7	1.8	0.8
पोटाश	1.8	1.2	1.4	1.3	1.6	2.8

5. **खली से खाद कैसे बनायें** :—जमीन तथा पौधों के पोषण के लिए यह उत्तम खाद है । 100 भाग खली, 5 भाग कोयला, 25 भाग मिट्टी तथा 65 भाग जल में मिश्रण बनायें । इसे गड्ढे में गाड़ दें । उपर से इन्च भर मिट्टी की तह रखें । पन्द्रह दिन के अन्तराल पर पानी छिड़कते रहें । तीन महीने बाद खली की खाद तैयार हो जाती है । इसे 20 से 30 कि.ग्रा. प्रति एकड़ डालें ।

6. **हरी खाद** :—उपर्युक्त खादों के अभाव में ढेंचा, ग्वार, सन आदि पौधों को बरसात के प्रारम्भ में लगाएँ । मौसम समाप्त होने पर इन्हें हरी अवस्था में उसी भूमि में गाड़ दें । यह भी उत्तम किस्म का खाद है । यह खाद भी 250 से 300 मन प्रति एकड़ डालें ।

7. **हरे या सूखे पत्तों का खाद**—खेतों में होने वाले पेड़ के पत्तों को नहीं जलायें । उन्हें गढ्ढे में इकट्ठा करें । उस पर कुछ मिट्टी तथा पानी डालते रहें । सड़ जाने पर उत्तम किस्म का खाद बनता है । यह खाद भी 250 से 300 मन प्रति एकड़ डालें ।

8. **कम्पोस्ट खाद**—खेतों से प्राप्त घास-पात, भूसा, हरे, सूखे, पत्ते कोमल टहनियाँ, फसलों की कोमल खूटियाँ आदि का मिश्रण बना कर 10×8 ×3 के समतल गड्ढे में डालें । कुल खाद का 65 प्रतिशत गोबर तथा 10 प्रतिशत मिट्टी मिला दें । इससे खाद जल्दी-जल्दी सड़ती है । बीच-बीच में आवश्यकतानुसार पानी भी डालें । तीन माह तक

प्रति माह उलटपुलट भी करें ताकि अन्दर तक ऑक्सीजन प्रवेश करे। अन्दर तक ऑक्सीजन प्रविष्ट हो जाने के बाद हानिकारक बैक्टिरिया पैदा नहीं होते हैं। इससे सड़ने की प्रक्रिया भी बराबर होगी। बार-बार उलटने-पलटने से सभी पदार्थ तीन चार माह में सड़ कर अच्छे-किस्म का खाद बन जाता है। यह खाद जमीन तथा पौधों के लिए उच्चतर किस्म का पोषक तत्त्व साबित होता है।

9 जमीन तथा किसान का प्यारा दोस्त–केंचवा–से प्राप्त जैव खाद

फ्लोरिडा तथा अमेरिका के अन्य हिस्सों में कार्बनिक खाद बनाने की उन्नत तकनीक विकसित की गई है। इस तकनीक से खाद बनाने के लिए सजीव प्राणी केंचुए (Earthworms) का प्रयोग किया जाता है। इसमें तीन फुट लम्बा, दो फुट चौड़ा तथा एक फीट गहरा गड्ढा बनाते हैं। इसकी दीवाल सीमेंट की होती है। चूहे तथा मक्खी आदि से बचाव के लिए ऊपर से तार की जाली का फ्रेम बना कर ढँकते हैं। गड्ढे का पेंदा कच्चा ही रखा जाता है। गड्ढे की दीवाल दो फीट जमीन के नीचे तथा एक फीट ऊपर रहती है। पत्ते, घास, रसोई का कचरा, जूठन जल इत्यादि को डालने के साथ ही लाल रंग के केंचुए डालते हैं। केंचुए के भोजन कचरे या कम्पोस्ट को गड्ढे में चारों तरफ ढेर के ढेर बिखेर कर उसके साथ केंचुए भी डालते हैं। कचरा इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि खाद तैयार हो जाने के बाद खाद को केंचुओं को बिना क्षतिग्रस्त किये आसानी से निकाला जा सकता है। केंचुओं में टुकड़े होने के बाद भी पुनर्जीवन आ जाता है, फिर भी इनके स्वास्थ्य का ध्यान रखें। केंचुए का मुख्य आहार जैव-कार्बनिक पदार्थ हैं। इन्हें हमेशा डालते रहें। अनुकूल भोजन मिलने पर कम्पोस्टयुक्त जमीन में सप्ताह में ही उनकी संख्या करोड़ों अरबों तक पहुँच जाती है। वे बहुत तेजी से अपनी संख्या बढ़ाते हैं। इनकी संख्या बढ़ जाने के बाद दूसरे गड्ढे में डाल दें। इस प्रकार से अनेक गड्ढों में डाल कर काफी मात्रा में खाद बनाया जाता है। प्रायः खेतों में भूरे अथवा मटमैले रंग के केंचुए होते हैं। परन्तु विशेष किस्म के लाल केंचुए प्रचुर मात्रा में जैव खाद तैयार करते हैं। लाल रंग के केंचुओं के लिए काफी

मात्रा में उत्तम किस्म का कम्पोस्ट तथा विशेष वातावरण चाहिए । भूरे रंग के केंचुए कहीं भी रहते हैं। कुछ भी खा लेते है। फ्लोरिडा तथा अन्य अमेरिकन किसान लाल रंग के केंचुओं का वृहद् स्तर पर व्यापारिक उत्पादन करते हैं तथा उन्हें बेचते भी हैं । पाश्चात्य देशों में बढ़ती जैव-खेती के कारण जैव-खाद बनाने वाले इन केंचुओं की माँग काफी बढ़ गई है ।

वैज्ञानिकों ने खोज की है कि जैव-खेत की एक बड़ी चम्मच मिट्टी में करोड़ों की संख्या में जमीन को प्राणदान देने वाले उपयोगी कीटाणु होते हैं । इनमें से प्रत्येक कीटाणु 20-20 मिनट के अन्तराल पर नये-नये कीटाणुओं को पैदा करता है। इसीसे जमीन का स्वास्थ्य एवं जीवन संतुलित रहता है । परन्तु रासायनिक खादों तथा कीटनाशी दवाओं से जमीन के उपयोगी जीवाणु नष्ट हो जाते हैं तथा जमीन निष्प्राण हो जाती है । प्रयोग के तौर पर केंचुए को रासायनिक खाद वाली जमीन में डाल कर निरीक्षण करें । केंचुए तड़फड़ाने लगते हैं, वे सुस्त तथा बीमार हो जाते हैं और अन्त में मरने लगते हैं। उनकी प्रजनन क्षमता भी नष्ट हो जाती है। कुछ केंचुओं को कम्पोस्ट खाद वाली जमीन में डाल कर देखें कि वे कितने प्रसन्न एवं स्वस्थ होकर विचरते हैं । उनकी प्रजनन क्षमता भी तीव्रता से बढ़ती है । ये मानव जाति के लिए बिना किसी लोभ लालच के निष्काम कर्म में निरन्तर लगे रहते हैं । ये हमारे जीवन मित्र हैं । परम उपकारी ये नन्हे मित्र मृत-जैव पदार्थ को 3-4 सप्ताह में उर्वर जमीन में रूपान्तरित कर देते हैं । केंचुओं के महान कार्य को देख कर ही डार्विन ने एक बार कहा था कि "केंचुओं के बिना इस पृथ्वी पर न यह जीवन होता, न पौधे, न जानवर होते और न होता मानब जाति का अस्तित्व"। अभी तक वैज्ञानिकों के लिए यह पहेली है कि पौधों के समग्र स्वस्थ विकास के लिए कौन-कौन से किस प्रकार के तत्त्व चाहिए ।

इस पहेली को केंचुए अच्छी तरह सुलझाते हैं । ये जमीन एवं पौधों के स्वास्थ्य के लिए अनेक ज्ञात-अज्ञात तत्त्वों का निर्माण करते हैं। इनकी उपयोगिता को देखते हुए आप भी अपने किचन गार्डन के लिए केंचुए तैयार

करें । एक बड़ी सी प्लेट या प्लास्टिक की टोकरी में सर्वोत्तम मिट्टी लें, मिट्टी पर एक केले को अच्छी तरह काट कर रखें । उसे मिट्टी से ढ़ँक दें। नमी बनाये रखें, इसमें 8 लाल रंग के केंचुए रख कर ऊपर टोकरी से ढ़ँक दें। ध्यान रखें कि हवा भी जाती रहे तथा अंधेरा भी रहे। तीन सप्ताह के बाद वहाँ हजारों केंचुए रेंगते हुए मिलेंगे । केंचुए करोड़ों अरबों की संख्या में मिट्टी में होते हैं जो वर्ज्य पदार्थ एवं कम्पोस्ट को खा कर प्रति वर्ष प्रति एकड़ 30 टन सर्वश्रेष्ठ प्रकार की कार्बनिक-जैव खाद प्रदान करते हैं। इनमें सर्वश्रेष्ठ किस्म की मैग्नेशियम 2½ गुना, कैल्सियम तिगुना, नाइट्रोजन पाँच गुना, फॉस्फोरस सात गुना, तथा पोटाश ग्यारह गुना तथा अन्य उर्वरक तत्त्व होते हैं । जमीन की उर्वरा शक्ति-सम्वर्द्धन के लिए इन जीवों को हमें पूरी सुरक्षा देनी चाहिए । यदि हम वैज्ञानिक ढंग से जैव-खेती करें और कीटनाशी एवं रासायनिक खादों का उपयोग नही करें तो ये महान जीव हमारे अस्तित्त्व की सुरक्षा के लिए हर प्रकार के आहार जुटाने में सक्षम हैं । आवश्यकता इस बात की है कि इन्हें पूरा संरक्षण देकर इनका वैज्ञानिक सदुपयोग करें, इसी में विश्व-पर्यावरण तथा ब्रह्माण्ड का कल्याण है ।

10. इसी प्रकार की हड्डियों, मछलियों, नदी, तालाब एवं समुद्र के अन्दर जमी शैवाल व काई का खाद भी उपयोगी होता है । हड्डियों को सड़ा कर खाद बनाने के लिए हड्डियों का चूरा बना लें । 6 भाग बालू, 1½ भाग गंधक तथा एक भाग लकड़ी का कोयला मिला कर मिश्रण बनाऐं । 6 महीने तक बराबर गीला रखने पर उत्तम किस्म का खाद बनता है । 100 भाग गोबर तथा एक भाग हड्डी का खाद उपयोगी होता है । अभी हाल ही में दिल्ली स्थित कृषि अनुसंधान केन्द्र ने काई से श्रेष्ठ किस्म का नाइट्रोजनयुक्त खाद तैयार किया है, यह काफी सस्त ाहोता है। उपर्युक्त प्रकार के जैविक खाद जमीन को जीवन देते हैं। पौधों को प्राणवान बनाते हैं। जमीन, पौधों की स्वास्थ्य-रक्षा एवं रोग-निवारण की दृष्टि से उपर्युक्त जैव-खाद श्रेष्ठ आहार है। ऐसे खाद से उगाए गए पौधों में बेजोड़ नैसर्गिक जीवनी शक्ति होती है जो

प्राणियों की जैव-विद्युत-चुम्बकीय शक्ति का सम्यक् संवर्द्धन कर उन्हें स्वस्थ एवं शक्तिशाली बनाती है । सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा स्ट्रेप्टोमाइसिन के आविष्कारक डा. ए. वाक्समैन ने ठीक ही कहा है कि उपर्युक्त प्रकार की कार्बनिक जैव खादों से पौधों में अभावजनित रोग नहीं होते हैं। जैव-खादों के प्रयोग से भूमि में स्वास्थ्यवर्द्धक कीटाणुओं का संवर्द्धन तथा सक्रियता तेजी से बढ़ती है। पौधों की भी रोग प्रतिरोधक क्षमता तीव्र होती हैं। डॉ. सेल्मन ए वाक्समैन बचपन से ही मिट्टी की सोंधी-सोंधी सुगन्ध के दीवाने थे । वे खेतों में जाकर घंटों बैठ कर मिट्टी के संबंध में प्रयोग करते रहते थे । इस दीवानेपन से उन्हें वैज्ञानिक जीवन में अनेक उपहास एवं दुःख सहने पड़े । 1901 ई. में लिपमन ने "मिट्टी की उर्वरता किन तत्त्वों पर निर्भर करती है" पर शोध कार्य प्रारम्भ किया । डॉ. वाक्समैन ने इस कार्य को काफी आगे बढ़ाया । उन्होंने खोज की कि मिट्टी में असंख्य जीव होते हैं जो कभी बैक्टिरिया, तो कभी फफून्द की तरह आचरण करते हैं । इन प्रतिरक्षी जीवों को "एक्टिनोमाइसिटेस" कहा जाता है । सोंधी-सोंधी गन्ध इन्हीं जीवों के कारण आती है । डॉ. वाक्समैन ने 1943 में इन जीवों की कुछ जातियों से "स्ट्रेप्टोमाइसिन" तथा "नियोमाइसिन" औषधियों की खोज की, जिसके लिए इन्हें 1952 में नोबेल पुरस्कार मिला। डॉ. वाक्समैन ने अपने क्षेत्र की अद्वितीय कृति "प्रिंसिपल्स आफ सॉयल माइक्रोबायलॉजी" का प्रणयन किया। 1932 ई. में अपने प्रयोगों के दौरान उन्होंने पाया कि क्षय रोग के कीटाणुओं को मिट्टी में दबा देने से वे पूर्ण-रूपेण समाप्त हो जाते हैं । मिट्टी के इस आश्चर्यकारी गुण को देख वे विस्मित एवं विमुग्ध हो गये। उन्होंने घोषणा की कि "विश्व की महानतम औषधि मिट्टी ही है"। उन्हीं के शब्दों में "हमने दस हजार मिट्टी के माइक्रोबों को अलग कर उनकी आश्चर्यजनक रोगाणु-संहार क्षमता की खोज की। उनमें दस प्रतिशत माइक्रोबों में रोगाणु-संहार की अद्‌भुत प्रबल क्षमता पाई गयी है "।

पर्यावरण और प्राणियों का दुश्मन :

रासायनिक खाद एवं कीटनाशी रसायन :

सजीव एवं पर्यावरण के मध्य पैदा करता असंतुलन :

प्रतिवर्ष हिन्दुस्तान में लाखों टन रासायनिक खाद के उत्पादन होने के बाद भी अरबों रुपयों के रासायनिक खाद का आयात किया जाता है। सिर्फ 77-78 में तीन अरब अट्ठावन करोड़ अस्सी लाख रुपये के खाद आयात किये गये थे। यदि हम किसानों को उपर्युक्त विधियों से जैव-खाद बनाने तथा उनका उपयोग करना सिखाने में इतना पैसा खर्च करें तो हमारा पर्यावरण जमीन, पौधे, पशु एवं मनुष्य का स्वास्थ्य-संतुलन भी बना रहे। खाद एवं कीटनाशी दवाओं के दुरुपयोग का ही प्रतिफल है कि हमारे देश में हजारों हेक्टर जमीन निष्प्राण होकर ऊसर बन गई है। पर्यावरण-असंतुलन बढ़ रहा है तथा मनुष्य के दूध एवं रक्त में डी. डी टी. तथा अन्य कीटनाशी दवाओं की मात्रा भी बढ़ी हुई है। रक्त-घटकों में विषम परिवर्त्तन होने के कारण कैंसर, हृदय रोग, गुर्दे के रोग आदि जानलेवा बीमारियाँ भी तीव्रतर गति से बढ़ी हैं। कृषि संबंधित नेशनल आयोग के अनुसार उपर्युक्त विभिन्न जैव-खाद पद्धतियों से दो अरब एक करोड़ चालीस लाख टन ठोस कम्पोस्ट, दो खरब बानवे अरब टन गंदा जैव पानी, दो करोड़ साठ लाख टन नाइट्रोजन, फॉस्फोरस पेन्टो ऑक्साइड (P_2O_5), पोटाशियम ऑक्साइड (K_2O) के रूप में पौधों को उच्चतम किस्म का जैव-खाद मिल सकता है। भारत जैसे गरीब मुल्क तथा वहाँ की जमीन पौधे एवं जनता के स्वभाव एवं स्वास्थ्य के अनुकूल रासायनिक खाद का श्रेष्ठ विकल्प है—उपर्युक्त सभी प्रकार के जैव-खाद। जैव-खाद जमीन के स्वास्थ्य के ज्यादा अनुकूल होता है। प्रकृति के आर्गेनिक चक्र के अनुसार धरती के स्वास्थ्य-संरक्षण के लिए यह अति आवश्यक है। उदाहरणस्वरूप पौधे जमीन से पोषक तत्व प्राप्त कर जीवन धारण करते हैं और अपनी स्वास्थ्य रक्षा करते हैं। मनुष्य इन पौधों को खाकर अपना अस्तित्त्व बनाये हुए है। पौधों से प्राप्त खाद्य पदार्थों के कुछ खादय तत्त्वों को शरीर अपने उपयोग के लिए अवचूषित कर लेता है तथा शरीर के लिए व्यर्थ अचूषित भाग को मल-मूत्र के रूप

में बाहर निकाल देता है । यह अनुपित भाग मिट्टी के प्राण होते हैं । ये पदार्थ जमीन को मिलने ही चाहिए, लेकिन भारतवर्ष में अज्ञानता के कारण इनका पूरा सदुपयोग नहीं होता, जबकि चीन तथा जापान जैसे देश इसका भरपूर प्रयोग करते हैं। हमें इस दिशा में गाँधीजी के विचारों के अनुकूल किसानों को प्रशिक्षण देना चाहिए । बायो-गैस-प्लान्ट के रूप में कुछ कार्य हो रहे हैं। लेकिन भारत की जनसंख्या को देखते हुए बहुत ही कम प्रयास हुए हैं ।

पोषण एवं भोजन के रूप में कम्पोस्ट कार्बनिक जैव खाद का सात्मीकरण मिट्टी में विशेष प्रकार के बैक्टिरियाओं की ऑक्सीकरण प्रक्रिया द्वारा होता हैं। जैव कम्पोस्ट कार्बनिक खाद उन बैक्टिरियाओं का आहार है जो मिट्टी के लिए जैव भोजन तैयार करते हैं। अतः इन उपयोगी कीटाणुओं के जीवन के लिए जैव कार्बनिक खाद की पूर्ति बराबर होती रहनी चाहिए, अन्यथा उनके अभाव में ये मित्र-कीटाणु समाप्त हो जाते हैं। रासायनिक खादों के प्रयोग से आर्गेनिक तत्त्वों के साथ-साथ उपयोगी कीटाणु भी समाप्त हो रहे हैं । इसके दुष्परिणामस्वरूप जमीन भी निष्प्राण होती जा रही है । अभी हाल ही मैंने कुछ ग्रामीण क्षेत्रों की यात्रा की । वहाँ यह देख कर बहुत दुःख हुआ कि अनेक अच्छी उर्वरा जमीनें अत्यधिक रासायनिक खादों के प्रयोग से निष्प्राण तथा ऊसर हो गयी हैं । पौधों के स्वास्थ्य एवं सम्यक् विकास के लिए कार्बन या कार्बनडाइऑक्साइड अधिक मात्रा में चाहिए । प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि नाइट्रोजन की एक इकाई के अवचूषण के लिए 40 ईकाई कार्बनडाइऑक्साइड, एक ईकाई फॉस्फोरस के लिए 164 ईकाई, एक इकाई पोटाशियम के लिए 52 ईकाई तथा कैल्सियम की एक ईकाई के लिए 308 ईकाई कार्बनडाइऑक्साइड चाहिए। सुप्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डॉ. इ. एच. रीनू के अनुसार कम्पोस्ट खाद खेत में अधिक डालने से वह सड़ कर काफी मात्रा में कार्बनडाइऑक्साइड पैदा करती है। इससे भूमि के निकट का वातावरण 'माइक्रोएटमिसफियर' भी प्रभावित होता है । कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा अधिक होने से

जिस खेत में कम्पोस्ट खाद डाली गई उसके अतिरिक्त आस-पास के खेतों द्वारा भी पोषक तत्त्वों की अवचूषण क्षमता काफी बढ़ जाती है। पौधे अपने अन्दर "डार्क फिक्सेशन" द्वारा जड़ों में तथा प्रकाश-संश्लेषण द्वारा कड़ के ऊपरी भाग में कार्बनडाइऑक्साइड का अवचूषण करते हैं। आर्गेनिक कम्पोस्ट खाद के प्रयोग से अन्य जटिल जैव-रासायनिक प्रक्रिया द्वारा कार्बनडायऑक्साइड (CO_2) अवचूषण के उपर्युक्त दोनों कार्य कुशलता से सम्पादित होते हैं।

कम्पोस्ट खाद कम डालने अथवा बिल्कुल ही नहीं डालने से तथा इन-आर्गेनिक रूप में यूरिया आदि खाद अधिक डालने से उपर्युक्त आवश्यक पोषक तत्त्वों के अवचूषण में बाधा उत्पन्न होती है। धरती एवं पौधों के स्वास्थ्य में असंतुलन पैदा होता है और यही असंतुलन तथा कुपोषण मनुष्य इन पौधों का प्रयोग कर अपने जीवन में पैदा कर रहा है। अतः जमीन, पौधों और मानव जीवन को स्वस्थ, सुदृढ़ एवं सशक्त बनाने के लिए जैव खेती आज की परम आवश्यकता बन गयी है।

पैदावार बढ़ाने तथा विज्ञान के नाम पर विश्व की सभी सरकारें कृत्रिम रासायनिक खादों तथा कीटनाशी दवाओं द्वारा विकसित मानव जाति के अस्तित्त्व के लिए ही खतरा पैदा कर रही हैं। इन कीटनाशी एवं रासायनिक खादों के प्रयोग से जमीन की रोग-संहारक एवं प्रतिरोधक क्षमता एवं उर्वरा शक्ति का ह्रास बड़ी तेजी से हो रहा है। कृत्रिम रासायनिक खाद व पौध-कीटनाशी दवाओं के दीर्घगामी दुष्प्रभाव से मानव जाति की निम्न प्रकार से क्षति हो रही है :—

(1) मनुष्य एवं जानवरों के रक्त-रसायनों में विषम परिवर्तनों से कैंसर, हृदय रोग, उच्चरक्तचाप, फेफड़े एवं गुर्दे के रोगों में असाधारण रूप से वृद्धि हुई। मनुष्य एवं जानवरों के दूध तक में कीटनाशी होने के संकेत मिले हैं। आहार-विषाक्तता की वृद्धि हुई है। कीटनाशी दवाओं के प्रयोग से कितने लोग बेमौत मरे हैं।

(2) प्रारम्भ में रासायनिक खादों के प्रयोग से भूमि की उर्वराशक्ति उत्तेजित होकर उत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि होती है, लेकिन प्रतिक्रिया

स्वरूप जमीन की नैसर्गिक उत्पादन उर्वरा-क्षमता का शीघ्रता से नाश होने लगता है। भूमि निस्तेज निष्प्राण एवं मृतप्राय हो जाती है। प्रयोगों द्वारा यह तथ्य सामने आया है कि जापान, अमेरिका, कनाडा तथा अन्य विकसित देशों ने इन कृत्रिम रासायनिक खादों का खुल कर अत्यधिक प्रयोग किया है और वहाँ की 66 प्रतिशत भूमि ऊसर, ऊर्वराहीन होकर धूल के मैदान सी हो गई है।

(3) रासायनिक खादों तथा कीटनाशी रसायनों से भूमि तथा खाद्य पदार्थों की पोषण एवं रोगनिरोधक क्षमता समाप्त हो जाती है। इनके प्रयोग से रोगनिवारण के बदले नाना प्रकार के रोग होते देखे गए हैं।

(4) रोग से लड़ने के लिये जिस प्रकार से हमारे शरीर में जीवनी शक्ति रोग-प्रतिरोधक क्षमता होती है ठीक उसी प्रकार की शक्ति जमीन तथा पौधों में भी पाई जाती है। गलत औषधियों, कृत्रिम रसायनयुक्त आहारों के प्रयोग से हमारी जीवनी शक्ति की प्रबल क्षति होती है। उसी प्रकार कृत्रिम रासायनिक खादों तथा कीटनाशी दवाओं के प्रयोग से पौधों तथा जमीन की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं उर्वरा शक्ति का भी प्रबलता से ह्रास होता है। यही कारण है कि इतनी कीटनाशी औषधियों के प्रयोग के बाद भी पौधे भाँति-भाँति के रोगों के चंगुल में फँसते जाते हैं। इन पोधों का प्राणी उपयोग करता है और वह भी रोगग्रस्त होता है।

(5) मानेहिम के प्रो. डा. रोस्ट अपने विविध प्रयोगों से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि रक्तवाहिनियों में रक्त का थक्का बनाने वाली बीमारी थ्रोम्बोसिस से ग्रस्त रोगियों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। इसका बहुत बड़ा कारण रासायनिक खादों के प्रयोग से पैदा हुए आहारों के खाने से रक्त में पोटाश की अत्यधिक वृद्धि है।

(6) सुप्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री सर अल्बर्ट होवर्ड ने अपनी पुस्तक "एग्रीकल्चरल टेस्टामेंट" में स्पष्ट लिखा है कि कृत्रिम रासायनिक खादों के प्रयोग से मिट्टी की रासायनिक एवं भौतिक-संरचना बदल जाती है और मिट्टी के अन्दर का प्राण "ह्यूमस" नष्ट होता जा रहा है। यह मिट्टी का उपयोगी कार्बनिक तत्त्व है जो गहरे काले रंग का अवर्णोभीय तथा गुण

में कलिलीय होता है। "ह्यूमस" की अन्तश्चूषण क्षमता अधिक होने के कारण बहुत सा पानी अपने अन्दर अवचूषित करके रख लेता है। मिट्टी का ढीलापन तथा उसमें वायु के संचरण की क्रिया ह्यूमस पर ही निर्भर करती है। इसके नष्ट होने से जमीन तथा फसल बीमार हो जाते हैं।

(7) रासायनिक खादों से उपजाई गई फसलों एवं फलों की गुणवत्ता, स्वाद तथा उनमें स्थित प्रतिरोधक-क्षमता का नाश हो जाने से अधिक दिन तक टिक नहीं पाते हैं। इनकी संरक्षण सुरक्षाकारक क्षमता नष्ट हो जाती है। गोबर तथा कम्पोस्ट खाद से उगाए गए खाद्य पदार्थों के स्वाद, गुण एवं रोग-प्रतिरोधक क्षमता नैसर्गिक रूप में होने के कारण काफी दिनों तक सुरक्षित रहते हैं, जल्द खराब नहीं होते हैं।

(8) अमेरिकन डॉ. बेरी कामनर (वाशिंगटन विश्वविद्यालय) ने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि रासायनिक यूरिया आदि नत्रजन खादों के लिए प्रयोग से इसका संचयन खाद्य पदार्थों में असाधारण गति से हानिकारक स्तर तक होता है। इन खाद्य पदार्थों को खाने से आंतों में रहने वाले जीवाणु नाइट्रेट में रूपान्तरित कर देते हैं। ये रक्त द्वारा अव-चूषित होकर लाल रक्त कोशिकाओं को विषाक्त बना देते हैं। इनकी ऑक्सी-जन अवशोषण की क्षमता कम हो जाती है, फलतः ऑक्सीजन संचार एवं संचय व्यवस्था डगमगाने लगती है। भोजन में उपलब्ध नाइट्रेट श्वसन-संस्थान को भी क्षतिग्रस्त करते हैं। इनसे मौत भी हो सकती है। बच्चों में इस विषाक्त रासायनिक परिवर्तन की संभावना अधिक रहती है।

आधुनिक खेती की टेक्नोलॉजी ने आम भारतीय किसानों का भी भरपूर शोषण किया है। आधुनिक तकनीक के नाम पर जैसे-जैसे खेती में परिवर्तन हुआ है, वैसे-2 देशी सुदृढ़ सशक्त बीज लुप्त हो गये हैं और पुष्ट बीज के नाम पर हाइब्रिड बीजों का प्रचलन खूब बढ़ाया गया है। उसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि हाइब्रिड बीजों से पैदावार लेने के लिए रासायनिक खाद, कीटनाशी दवाइयाँ और भरपूर पानी निहायत जरूरी हो गया है। आज आम आदमी खेती नही कर सकता है। पैसों के लिए गाँवों से शहर की ओर पलायन बढ़ गया है और धीरे-धीरे जमीन अपनी उर्वराशक्ति खोने

अस्वस्थ ऊसर होती जा रही है । हाइब्रिड बीजों के वितरण के पीछे आम आदमी को गुलाम बनाने की मानसिकता है। इससे हाइब्रिड बीज उत्पादक बड़े-बड़े बहुराष्ट्रीय व्यापारियों पर किसान आश्रित हो जायेगा। इस प्रकार से उसका भयंकर रूप से आर्थिक एवं मानसिक शोषण लम्बे समय तक जारी रहेगा।

(9) रासायनिक खादों के प्रयोग से मिट्टी के मूल आर्गेनिक तत्त्वों में निरन्तर कमी होने से मिट्टी का हाइग्रोस्कोपिक तथा केपिलरी पानी अर्थात् मिट्टी की जलधारक क्षमता भी दुष्प्रभावित होती है । मिट्टी के सामान्य कणों के मध्य में तथा उसके चारों तरफ तह के रूप में केपिलरी पानी होता है जिसे पौधे अपनी जड़ों द्वारा अवचूषित करते हैं । रासायनिक खादों का दुष्प्रभाव मिट्टी की हवा पर भी होता है। इसी हवा से पौधे श्वास लेते हैं तथा पानी का बहाव भी अच्छी तरह होता है ।

कृत्रिम रासायनिक खादों तथा कीटनाशी औषधियों के दुष्प्रभाव संबंधी अनेक प्रयोग विश्व की विभिन्न कृषि अनुसंधानशालाओं में हो रहे हैं और उनके जो निष्कर्ष आ रहे हैं वे मानव जाति के लिए विचारणीय हैं। प्रथम यह कि कृत्रिम खादों एवं रसायनों के प्रयोग से हम अधिक उत्पादन चाहते हैं या जीवन नाश । हमें इन्हीं विकल्पों में से चुनाव करना है। आज सारे विश्व में रासायनिक खेती के विरोध में जनमत जाग रहा है। यही कारण है कि अमेरिका, जर्मनी, इंगलैंड तथा अन्य विकसित देशों में जैव कम्पोस्ट खाद वाली खेती का प्रचलन धीरे धीरे फिर बढ़ रहा है। वहाँ के बाजारों में जैव खेती तथा रासायनिक खेती के उत्पादनों का विक्रय पृथक-पृथक किया जाता है। व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार खरीद सकता है। हालांकि जैव खेती के उत्पादन महँगे होते हैं फिर भी स्वास्थ्य संरक्षण व सम्वर्द्धन की दृष्टि से वे अति श्रेष्ठ हैं। इन उत्पादनों को बढ़ावा मिलना जागरूक स्वास्थ्य-चेतना का द्योतक है । सन 1979 ई. से ही अमेरिकी कृषि वैज्ञानिक जैव कम्पोस्ट खादों से उगाए गए खाद्य पदार्थों के प्रति विशेष आकृष्ट हुए हैं। वहाँ जैव खेती एक आन्दोलन का रूप लेता जा रहा है । सिर्फ मिनेसोटा के किसान लगभग 75,000 हेक्टयर से भी

अधिक जमीन पर जैव खेती कर रहे हैं । अमेरिका के पूर्व कृषि मंत्री बोब बर्गलैंड ने कृषि विभाग के विज्ञान एवं शिक्षा प्रशासन द्वारा एक अध्ययन सर्वेक्षण कराया था । इस विभाग की अध्ययन रिपोर्ट का सार-संक्षेप इस प्रकार है । इसमें लेखक की अपनी सम्मति भी है । यह रिपोर्ट विकासशील देशों के कृषकों के लिए भी मूल्यवान है—

(1) शहर तथा गाँवों से प्राप्त कचरे को जैव कम्पोस्ट खाद बना कर जैव खेती के काम में लाया जाये । इसे बड़े पैमाने पर करते हुए इस कार्य का आकलन किया जाये ।

(2) खर-पतवार, कीड़ों तथा रोगों के नियंत्रण हेतु, जैव प्राकृतिक कीटनाशी पदार्थों (नीम की खली, नीम क पत्तों की राख) कीटनाशी जैव कीटों व पौधों इत्यादि की खोज पर शोध की जाये । इसके अतिरिक्त खेतों की जुताई तथा फसल चक्र पर ध्यान दिया जाये ।

(3) किसानों को जानवरों को पालने के लिए प्रोत्साहित किया जाए ताकि उनसे प्राप्त अवशिष्ट पदार्थ जैव-खेती के काम आ सकें ।

(4) घर-घर बायो-गैस प्लांट को बढ़ावा दिया जाए ताकि पशुओं के साथ साथ मानव मल-मूत्र का भी उपयोग श्रेष्ठतम जैव खाद के रूप में किया जा सके ।

(5) रासायनिक खाद एव कीटनाशी पदार्थों को बन्द करके परम्परागत कम्पोस्ट खाद तथा नैसर्गिक कीटनाशी जैव कीटों, कीटनाशी पदार्थों एवं तकनीकों के प्रचलन के सम्बन्ध में शोध कर उसकी जानकारी अधिक से अधिक किसानों तक ले जायी जाये ।

(6) कम्पोस्ट खाद द्वारा जैव खेती की प्रबन्ध-तकनीकी सुधारने पर शोध कार्य किया जाये तथा इसकी अर्थव्यवस्था पर गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया जाये ।

(7) परम्परागत कृषि के साथ जुड़े औजारों तथा पशु धन के भरपूर उपयोग पर शोध कार्य किया जाए क्योंकि परम्परागत कृषि कार्य ही गरीब भारतीयों के आर्थिक नैतिक, आध्यात्मिक, पर्यावरण एवं स्वास्थ्य-समृद्धि में सहायक हो सकता है ।

(8) कम्पोस्ट खाद द्वारा जैव खेती के सम्वन्ध में अधिकतम खोज कार्य कर उसके लाभ के संवंध में किसानों तथा उपभोक्ताओं को नूतन जानकारी दी जाये ।

(9) अमेरिकी तथा विकासशील देशों के किसानों को अधिकं से अधिक कम्पोस्ट खाद द्वारा जैव खेती विषयक विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया जाये ।

(10) जैव खेती के उत्पादों को श्रेष्ठतम आहार के रूप में मान्यता देकर रासायनिक कृषि उत्पादों से उच्चतम मूल्य पर वेचने का राज्यस्तर या सामुदायिक रूप से प्रयास किया जाय ताकि जैव खेती को वढ़ावा मिले ।

रासायनिक खेती के दुष्प्रभावों को देखते हुए विश्व के मूर्धन्य वैज्ञानिकों, समाजसेवियों तथा अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं ने कम्पोस्ट खाद द्वारा की गई जैव-खेती में काफी रुचि दिखाई है । जैव-खेती से वे काफी प्रभावित हो रहे हैं । रासायनिक खाद द्वारा जमीन की पूरी उर्वरा शक्ति चूस ली जाती है । इसे भावी पीढ़ी के लिए भी बचाना है । इस बात का ध्यान रखते हुए जैव खेती की महत्ता बढ़ गयी है । भविष्य के स्वास्थ्य के लिए यह शुभ संकेत है । विश्व की सभी सरकारों ने अत्यधिक उत्पादन के लालच में रासायनिक खेती को बढ़ावा देकर राष्ट्रीय स्वास्थ्य का सर्वनाश किया है । रासायनिक खेती की वृद्धि से पर्यावरण प्रदूषण तथा असंतुलन भयंकर रूप से बढ़ा है । रासायनिक उत्पादों से प्राप्त आहारों ने शरीर के रसायनों में अनेक जटिलताऐं पैदा कर कैंसर जैसे घातक रोगों को निमंत्रण दिया है । अनेक प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि वैज्ञानिक तरीके से कम्पोस्ट आदि आर्गेनिक खादों को डाल कर की गई जैव खेती की उत्पादकता किसी भी कीमत पर रासायनिक खेती से कम नहीं है । साथ ही साथ जैव खेती के उत्पादों की पोषक गुणवत्ता सर्वश्रेष्ठ है । नित्य नूतन अनुसंधानों के परिपेक्ष्य में जैव खेती को बढ़ावा मिलना चाहिए । जैव खेती के कृषि उत्पाद रासायनिक प्रदूषण से मुक्त तथा स्वाद एवं स्वास्थ्य से युक्त होते हैं । जैव खेती से भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास नहीं होता तथा राष्ट्रीय ऊर्जा की काफी बचत होती है । जैव खेती को बढ़ावा देने से वायुप्रदूषण भी कम होता है । अरबों रुपयों की बचत

होती है । जो अनुदान रासायनिक खेती के लिए सरकार देती है वो अनुदान कृषकों को जैव खेती के लिए दिया जाये तो निःसन्देह राष्ट्र का कल्याण होगा ।

श्रेष्ठ जैव-आहार प्राप्ति के लिए बागवानी की वैज्ञानिक जैव खेती तकनीक :—किसी भी फल या सब्जी के मौलिक गुणों तथा स्वाद को नैसर्गिक ढग से उभारने के लिए फल या सब्जी को जैव खेती की नैसर्गिक वैज्ञानिक तकनीक से उपजाएं । जैव खेती की वैज्ञानिक तकनीक से उपजाए गए पौधों तथा सुधारी गई कृषि भूमि दोनों की रोगप्रतिरोधक क्षमता में प्रबल रूप से वृद्धि होती है । नैसर्गिक वैज्ञानिक तकनीक से उगाए पौधों में न तो कीट पतंगों का उतना प्रभाव होता है और न फंगस तथा वायरस ही इन पौधों का कुछ बिगाड़ पाते हैं ।

किसी भी जंगल में पौधे या पेड़ पत्तेविहीन नहीं होते हैं और न फलदार वृक्ष फलहीन । यह उल्लेखनीय है कि जंगली पौधों पर भी कीट-पतंगे तथा वायरस आक्रमण करते हैं लेकिन उनकी रोग-प्रतिरोधक जीवनी-शक्ति प्रबल होने के कारण वे उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाते हैं । पौधों, फलों तथा जमीन की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ायी जाये तो रोगाणु इन्हें बीमार नहीं कर सकते । रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली वैज्ञानिक जैव खेती तकनीक को सार्वभौम बनाया जाये ।

बागवानी वाले खेत को व्यर्थ का कचरा, घास-पात निकाल कर साफ रखें । घास-पात जमीन की पोषण-क्षमता का उपयोग स्वयं अपने लिए करते हैं जिससे मूल पौधों को पोषण नहीं मिल पाता है । साथ ही अनावश्यक घास-पात अनेक कीटों को भी पैदा करते हैं । वे पौधों को दिया जाने वाला पानी भी स्वयं ही पी जाते हैं । पौधों की बराबर सोहनी (निराई-गुड़ाई) भी करते रहें । जमीन की पपड़ी टूटती है फलतः जड़ों द्वारा हवा का आवागमन अच्छी तरह होता है और पौधे पुष्ट बनते हैं । सोहनी करके सिंचाई करने से जड़ों को पानी अच्छी तरह मिलता है । सोहनी के बाद सिंचाई से पानी जमीन की पपड़ी की ओट में चला जाता है, जिससे धूप द्वारा पानी का वाष्प बनता है और खेत में नमी बनी रहती है । सोहनी खुर्पी तथा हाथ वाले "हो" से अच्छी तरह होती है ।

पौधों को बोने से पहले खेत में सुविधानुसार उपर्युक्त जैव-कम्पोस्ट खाद डालें। जैव-खाद की मात्रा 100 से 25 क्विंटल प्रति एकड़ होनी चाहिए। 2 से मी. मोटी परत जमीन पर बिछाएँ। खेतों में कम्पोस्ट जैव-खाद डालने से बड़ी तीव्रता के साथ खमीर उठता है फलतः अनेक प्रकारके कीट, बैक्टि-रिया, वायरस, फफूंद इत्यादि हानिकारक रोगाणुओं का नाश हो जाता है। जैव-खाद डालने के बाद खूब अच्छी जुताई करें और फिर बीजों को बोयें। कम्पोस्ट खाद में पौधों को रोगों से मुक्त रखने की अद्वितीय क्षमता है। पैदावार के लिए सिंचाई का भी काफी बड़ा स्थान है। सिंचाई के अभाव में फसल की कल्पना ही नहीं की जा सकती। सर्वोत्तम सिंचाई नैसर्गिक बरसात की होती है। वर्षा के अभाव में नहर, रँहट, मोट या चड्स, पम्प, ट्यूबवेल तथा मोटर पम्प आदि द्वारा सिंचाई होती है। पानी की आवश्यकता वातावरण, ऋतु तथा फसल (अनाज, फल, सब्जियों आदि) की किस्मों पर निर्भर करती है। अधिक तरावट वाली भूमि तथा नमीयुक्त वातावरण में कम पानी की आवश्यकता होती है। पौधों की बाढ़ तथा प्रस्फुटन के समय उन्हें पानी की आवश्यकता ज्यादा होती है। नन्हें-छोटे पौधों पर बार-बार थोड़ा-थोड़ा पानी छिड़कते रहें। पौधों में निरन्तर पानी की तरावट रहने से भी पौधे पीले पड़ने लगते और उनकी बाढ़ रुक जाती है। अतः दो सिंचाई के मध्य जमीन को सूखने दें। निरतंर जमीन तर रहने से और जड़ों को हवा तथा अन्य पोषक तत्त्व नहीं मिल पाने से पौधें अस्वस्थ व पत्ते पीले होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में जमीन को सूखने दें तथा परतों को खुर्पी द्वारा तोड़ दें, ताकि हवा का आवागमन अच्छी तरह हो सके। फिर सिंचाई कम पानी से छिड़क कर करें। पूर्ण बाढ़ पाये हुए पत्तों का पीला होना तथा जमीन का सख्त एवं खुश्क होना पानी की माँग को सूचित करता है। प्रत्येक सिंचाई के पहले तथा तथा बाद में जमीन को एक-दो इन्च गहराई तक खुर्पी से निकौनी करें, ताकि धूप में पानी कम उड़े, घास-पात नष्ट हो जाएँ और जड़ों को भरपूर वायु मिले।

जमीन में उपज बढ़ाने के लिए फसलों का वैज्ञानिक चक्र चलाएँ। जैसे—गेहूँ, चावल, मक्का, जौ, बाजरा, बाजरी आदि कार्बोजयुक्त अनाज बोने के बाद दूसरी बार प्रोटीनयुक्त लेग्युमिनोसी परिवार के अरहर, लोबिया' सेम

मूँगफली, चना, मसूर, मूँग, मोठ आदि दलहन बीज बोऐं। इस प्र
से भूमि में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता रहता है। शलगम, मूली
चुकन्दर आदि मूल वाली सब्जियों को बोने के बाद बैंगन, भिण्डी, मिर्च
मटर आदि विभिन्न फलियों इत्यादि जड़वाली सब्जियाँ बोऐं। मूलवाली
सब्जियाँ नाइट्रोजन तथा कैल्सियम जमीन से खींच लेती हैं और उसकी पूर्ति
जड़वाली सब्जियाँ करती हैं।

कम्पोस्ट जैव खाद डाल कर बोने से टमाटर, प्याज आदि सब्जि
तथा फलों में किसी प्रकार के दाग इन्फेक्शन आदि नहीं होते हैं। फ
या सब्जियों के पौधे कुछ बड़े होने के बाद बाग में डेढ़ से. मी मोटी
कम्पोस्ट खाद तथा राख मिला कर बिछा देने से पेड़ स्वस्थ रहते हैं त
उनके फल स्वादिष्ट एवं टिकाऊ होते हैं। रोगाणुओं से बचाने के लिए
के पत्तों की राख को गोबर तथा पानी में मिला कर पौधों पर छिड़क
चाहिए।

आज विभिन्न प्रकार के खाद्यान्नों, शाक, सब्जियों एवं फलों के सबसे
दुश्मन अनेक प्रकार के कीट हैं। इनके प्रकोप से प्रति साल करोड़ों
के आहार समाप्त होते हैं। इन कीटों को मारने के लिए अनेक प्रकार
कीटनाशी औषधियों का प्रयोग किया जाता है। कीटनाशी औषधियों
कारण मानव जाति में कैंसर तथा अन्य जानलेवा बीमारियों में बेहता
वृद्धि हुई है। यहाँ तक कि मानव जाति के दूध एवं रक्त में डी. डी. टी त
अन्य कीटनाशी रसायन पाये गये हैं। इस प्रकार रक्त में घुला यह
भावी, संतति जीन एवं स्वास्थ्य के लिए भयंकर खतरा पैदा कर रहा है
मानव जाति के अस्तित्त्व को बचाये रखने के लिए विश्व के अनेक
वनस्पति एवं आयुर्विज्ञानियों का ध्यान अब जैव कीटनाशक कीटों एवं
नैसर्गिक स्रोतों के विकास एवं सम्वर्द्धन की ओर गया है। सन 1984
में नीदरलैंड के किसानों को अमेरिकिन कीटनाशी रसायन नहीं मिलने
कारण भयंकर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था। वैसी परिस्थि
में वहाँ की नाल्टवाइक शोध संस्थान ने डच किसानों को जैव कीटना
कीट ऐब्लिसीयस कुकुमेरिस (चिचड़िया) मिश्रित चोकर छिड़कने के लि

दिया । इस चोकर ने कमाल का असर किया। इससे काली मिर्च तथा फलों के विकास को नष्ट करने वाले घातक कीट थाइसेनोप्टेरा समाप्त हो गये। 1985 में सर्वप्रथम वृहद् स्तर पर डच किसानों ने विना कीटनाशी औषधि के बेहतरीन कालीमिर्च का निर्यात किया। लोगों ने इसे काफी पसन्द किया। कीटनाशी रासायनिक कारखाने भयंकर रूप से पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं, जिसका प्रत्यक्ष व ज्वलन्त उदाहरण भोपाल की मिक गैस त्रासदी है। इससे पाँच हजार लोग बेमौत मारे गये और हजारों वयस्क एवं बच्चे विकलांग होकर अभिशप्त जीवन जीने के लिए बाध्य हैं। रक्तहीनता तथा फेफड़ों की बीमारी भोपाल में गैस-कांड के कारण महामारी बन चुकी है।

इन कीटनाशी रसायनों के प्रति भी अब अनेक प्रकार के पौध-दुश्मन कीटों में प्रतिरोध की शक्ति विकसित हो गई है और ऐसे कीटों पर कीटनाशकों का कोई प्रभाव अब नहीं पड़ता है। एक खोज के अनुसार सन् 1946 ई. में प्रतिरोध की क्षमता रखने वाले कीटों की प्रजातियाँ मात्र ग्यारह थीं जिनकी संख्या बढ़ कर 1970 में 244 तथा 1980 में 428 हो गई हैं। यह स्थिति भविष्य के लिए अत्यन्त भयावह है। इस विकट परिस्थिति से सामना करने के लिए ही विख्यात वैज्ञानिक जैव-कीटनाशकों की खोज एवं उनके व्यापक प्रयोग पर बल दे रहे हैं। करीब तीन दशक पूर्व जर्मन शोधकर्त्ता स्टटगार्ड ने परभक्षी कीट फाइटोसीयूलस परसिमिलिस का पता लगाया था।

यह परोपकारी कीटभक्षी कीट टमाटर, खीरा तथा ककड़ियों के दुश्मन कीट लालचूता चिंचड़ी को मात्र 6 सप्ताह में समाप्त कर देता है। लाल कीटों को समाप्त करने के बाद ये स्वयं एक दूसरे को खाकर खत्म हो जाते हैं। इसी प्रकार सेव आदि फलों के भयंकर दुश्मन ओटियोरिकंस को समाप्त करने के लिए परजीवी सूत्र कृमियों (इलवर्म) का प्रयोग सफलतापूर्वक किया गया है। इलवर्म गहरी भूमि के अन्दर प्रविष्ट करके भी ओटियो रिकंस के लारवा को खोज-खोज कर खा जाते है। एक अन्य दुश्मन कीटनाशी परजीवी "एकाशिया फारमोसा" बैंगन, टमाटर, खीरा, मिर्च, ककड़ी, आड़ू तथा अंगूर के लिए घातक सफेद मक्खी, लालचूता चिंजड़ी आदि दुश्मन कीटों

का भक्षण कर उन्हें समाप्त कर देते हैं। जैविक कीटनाशी योद्धाओं का व्यापारिक उत्पादन फ्रांस, ब्रिटेन, नीदरलैंड आदि अनेक देशों में विशाल स्तर पर किया जा रहा है। प्रयोगों से देखा गया है कि जैव-नियंत्रक कीट भक्षी मित्र कीटाणुओं से पौधों को किसी प्रकार की हानि नही होती है। ये किसान मित्र अति तीव्रता से शत्रु कीटों का पता लगा कर उन्हें चट कर जाते हैं। कीटनाशी रसायनों की तुलना में जैव कीट-भक्षी कीट विशेष प्रभावकारी होते हैं। कीटनाशी रसायनों से पौधों की पैदावार एवं वृद्धि दुष्प्रभावित होती है। पौधे इन रसायनों को चूस कर बीमार हो जाते हैं। इन पौधों का उपयोग करने वाले प्राणी भी दुष्प्रभावित होते हैं। कीट-भक्षी मित्र कीटों से पैदावार की वृद्धि एवं स्वास्थ्य उन्नत होता है। इनकी लागत भी कम होती है। अलर्जी, वायु प्रदूषण तथा अन्य प्रदूषणादि का किसी प्रकार का कोई खतरा उनसे नही है। भारत के एक साधारण शिक्षक ने एक ऐसे ही मित्र कीट की खोज की थी, जिस पर उन्हें राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था।

नीदरलैंड के वागेनिंगेन स्थित कृषि विश्वविद्यालय तथा विश्व की अन्य उन्नत कृषि प्रयोगशालाओं में काफी तेजी से अब शोध कार्य हो रहे हैं। नीदरलैंड के उक्त संस्थान के वैज्ञानिकों ने एक और नयी तकनीक का विकास किया है। जिसके अन्तंगत रासायनिक कीटनाशकों के प्रति जिन हानिकारक मक्खियों या कीटों में प्रतिरोध-शक्ति पैदा हो गई है, उनके नर प्यूपाओं को गामा किरण द्वारा बंध्यकरण कर छोड़ दिया जाता है जो मादा कीटो से सम्पर्क तो करते हैं परन्तु प्रजनन नहीं हो पाता है। यह तकनीक प्याज पौधों के लिए घातक मक्खियों एवं अन्य कीटों से मुक्ति पाने में सार्थक पाई गयी है।

नैसर्गिक कीटनाशी कीटों के सम्बन्ध में करीब साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व डच प्रकृति-विज्ञानी आनटोनीवान लेवेन हूक ने काली मक्खियों के जीवन चक्र को जान कर यह पता लगाया था कि ये मानव जाति के लिए परम मित्र परजीवी हैं। ये पेड़ के दुश्मन कीटों को समाप्त कर उन्हें सुरक्षा प्रदान करते हैं। अन्य डच विज्ञानी मानरीट्रजेमा बौज ने भी इस क्षेत्र में काफी शोध कर 1981 ई. में एक पुस्तक प्रकाशित की है। कहा जाता है कि चार्ल्स डारविन ने

द्वारा इराजमस सदैव पौध-स्वास्थ्य-घातक कीटों का मुकाबला करने के लिए परजीवी मित्र कीटों के उपयोग पर ही बल देते थे । खोजों से पता चला है कि ईसा के 400 पूर्व से ही चीन के किसान फलोद्यानों तथा खाद्य भण्डारण की सुरक्षा हेतु दुश्मन कीटों को मारने के लिए चिट्टिओं का प्रयोग करते थे । टमाटर एवं अन्य सब्जियों के पत्तों में छेद करने वाले दुश्मन कीट लीफ माइनर (पत्र-सुरंगक) की कुछ प्रजातियों में कीटनाशकों के प्रतिरोध की क्षमता विकसित होने के कारण जब उन्हें समाप्त करना समस्या बन गया, तब फिर इनका नाश करने के लिए सातवें दशक में वैज्ञानिकों ने "डाकनूसा साइबिरिका" का प्रयोग किया और सफलता प्राप्त की । जैव कीटनाशी कीट 'डाकनूसा' लीफ माइनर के बीच में एक अण्डा दे देता है जिसे वे सेते रहते हैं, फलतः लीफमाइनर की जगह डाकनूसा पैदा होते हैं जो पौधों के लिए मित्र सिद्ध होते हैं।

कीटनाशी रसायनों के सम्बन्ध में सभी देशों के जागरूक वैज्ञानिक विशेष रूप से चिन्तित हैं । हाल ही में लखनऊ में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें ब्रिटेन, कनाडा, स्विट्जरलैंड, जर्मनी आदि देशों के 300 वैज्ञानिकों ने एक स्वर में पेस्टीसाइड्स की विषाक्तता तथा उसके हानिकारक जोखिमों के मूल्यांकन का सवाल उठाया । वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद के महानिदेशक डॉ. एस. वरदराजन ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा कि भारतीय परिस्थिति के अनुरूप ऐसे नैसर्गिक कीटनाशी तत्त्वों का उपयोग करना चाहिए जिससे, मनुष्य, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे तथा वातावरण पूरी तरह सुरक्षित रहें । उनका कहना था कि भारत के खेतों में अन्धाधुन्ध उपयोग किया जाने वाले कीटनाशी रसायन का 80% भाग पर्यावरण-प्रदूषण उत्पन्न कर मानव एवं वनस्पति जगत के लिए गम्भीर खतरा पैदा कर रहा है। आयुर्विज्ञान राष्ट्रीय अकादमी के अध्यक्ष प्रो वी. एन. सिन्हा के अनुसार कीटनाशकों के प्रयोग से उपयोगी कीट भी समाप्त हो गये है व पारिस्थितिक संतुलन अस्तव्यस्त हो गया है। उपयोगी पादप-प्रजातियाँ नष्ट होने से पादप-विषाक्ता बढ़ रही है । जलीय पेड़-पौधे तथा जीव-जन्तुओं सहित मनुष्य तथा उसके पारिस्थितिक सहयोगियों पर

अत्यन्त हानिकर प्रभाव पड़ रहा है।

जापान के माइक्रोजीव वैज्ञानिक मासानीबु, फकुओका ने एक अद्भुत पुस्तक लिखी है—"द वन स्ट्रा रिवोल्यूशन"। फुकुओका ने "प्राकृतिक खेती" का आन्दोलन चलाया है। वे अब प्राकृतिक खेती करते हैं। उनके अनुसार ट्रैक्टरों, मशीनों, उर्वरकों तथा कीटनाशी दवाओं का उपयोग प्रकृति से छेड़छाड़ है। जिस प्रकार जानवर बिना प्रकृति से छेड़छाड़ किये अपना भोजन प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी कर सकता है। जनवरी, 1988 में भारतीय विज्ञान कांग्रेस (पुणे) के कृषि सत्र में उनका वक्तव्य—"अन्धाधुन्ध धरती के साथ बेरहमी करने के कारण इसका भविष्य अंधकारमय है। आधुनिक सभ्यता इसी तेज गति से आगे बढ़ती रही तो वह दिन दूर नहीं, जब यह सुन्दर धरती नष्ट हो जायगी"—चिंतन करने योग्य है।

18 | प्राणिज आहार की गुणवत्ता पौधों को मिलने वाले पोषक तत्त्वों पर निर्भर करता है।

जैव कम्पोस्ट खाद, जिस प्रकार पौधों के लिए जीवनदायक आहार हैं, इसी प्रकार जैव खाद से उपजाये गये आहार मनुष्य एवं अन्य प्राणियों के लिए भी श्रेष्ठ आहार हैं। पौधे अपने तथा हमारे लिए किस प्रकार आहार निर्माण करते हैं, इसे जानें। जमीन के अकार्बनिक पदार्थ सीधे पौधों में काम नहीं आते हैं। पौधों की कोशिकाऐं प्रकाश की उपस्थिति में अकार्बनिक पदार्थ को कार्बनिक भोजन के रूप में बदल कर संचित कर लेते हैं। पौधों के समुचित विकास में मुख्य रूप से निम्न अकार्बनिक तत्त्व चाहिए। पौधे इन अकार्बनिक तत्त्वों को जैव रूप में परिवर्तित कर मनुष्य एवं अन्य प्राणियों को जीवन प्रदान करते हैं।

कैल्सियम :—क्लोरोफिलयुक्त हरे पत्ते वाले प्रत्येक पौधे के लिए कैल्सियम आवश्यक तत्त्व है। इसके अभाव में पौधे कमजोर, पीले तथा अविकसित रह जाते हैं। पौधों में पाये जाने वाले आक्जेलिक तथा अन्य एसिड पौधों के विकास में बाधक हैं। कैल्सियम इन अम्लों के प्रभाव को निष्क्रिय बना

देता है । यह पौध कोशा दीवारों पर पेक्टेट के रूप में तथा पुराने ऊतकों में जमा रहता है । इसकी कमी से क्लोरोप्लास्ट की सक्रियता कम होने से क्लोरोफिल बनना रुक जाता है, फलतः प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया अवरुद्ध होने लगती है ।

फॉस्फोरस :—यह ऊर्जायुक्त फॉस्फोरस बॉण्ड एडीनोसाइन ट्राइफास्फेट विभिन्न सब्सेट्रेटों, नाभिकीय अम्लों तथा एन्जाइम के निर्माण में भाग लेता है। इसका अवशोषण फॉस्फेट के रूप में होता है। यह जड़ों की वृद्धि, फलों के पकने तथा श्वसन-क्रिया के लिए आवश्यक है। इसके अभाव में प्रोटीन का संश्लेषण तथा कैल्सियम की सक्रियता रुक जाती है ।

लोहा :—यह तेलयुक्त बीजों के निर्माण के लिए आवश्यक है । क्लोरोफिल का अधिकांश भाग लोहे से बनता है । यह मैंग्नेशियम फॉस्फोरस. स्थानान्तरण करके "न्यूक्लिओ प्रोटीन" के संश्लेषण में अपरोक्ष रूप से सहायता करता है ।

पोटाशियम :—यह पौधों की चयापचय क्रिया के लिए आवश्यक है । पौधों में कार्बोहाइड्रेट के संश्लेषण, निर्माण तथा उनके स्थानान्तरण, वितरण में सहायता करता है । इसकी कमी से पत्तों के किनारे पीले पड़ जाते हैं । तने में यान्त्रिक ऊतकों का विकास तथा श्वसन क्रिया रुकने लगती है। यह एन्जाइम की सक्रियता पर प्रभाव डालते हैं। यह कलियों तथा जड़ों के अंतिम छोर पर अधिक मात्रा में पाया जाता है ।

सोडियम :—इसके कुछ कार्य पोटाशियम जैसे होते है परन्तु इसकी अधिक मात्रा मनुष्य की तरह पौधों को भी मारने वाली होती है ।

क्लोरिन :—इसकी कम मात्रा पौधों के विकास के लिए आवश्यक है । यह प्रायः पौधों के लिए अनावश्यक तत्त्व होते हैं ।

सल्फर :—यह प्रोटीन, को-एन्जाइम, क्लोरोफिल व जड़ों के निर्माण तथा कोशिकाओं के विभाजन के लिए अति आवश्यक तत्त्व है । इसके अभाव में फल की पैदावार तथा पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

सिलिकोन :—यह पौधों की वृद्धि तथा विकास के लिए आवश्यक है । इसी के कारण गेहूँ आदि अनाजों की भूसी कड़ी होती है ।

मैंग्नीज :—लोहे की तरह क्लोरोफिल के निर्माण, ऑक्सीकरण तथा अवकरण क्रिया के लिए आवश्यक है। यह पत्तियों, बीजों, तनों तथा जड़ों के किनारे (छोर) पर अधिक होता है।

बोरॉन :—यह कैल्सियम के सात्मीकरण, पौधों की ऊँचाई, वृद्धि, विकास, जड़ों के निर्माण के लिए आवश्यक है। इसकी कमी से पौधे अविकसित रह कर मर जाते हैं।

ताँबा :—यह क्लोरोफिल के निर्माण के लिए आवश्यक है। इसकी अत्यधिक मात्रा पौधे की जान ले लेती है। इसके अभाव में हरे अंग पीले पड़ जाते हैं।

जस्ता :—क्लोरोफिल बनाने, प्रकाश-संश्लेषण तथा अन्य चयापचय क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है। अधिक मात्रा पौधों के लिए हानिकारक है। इसकी कमी से पत्तियों पर धब्बे तथा फलों में गाँठें पड़ जाती हैं।

ऑक्सीजन :—पौधे ऑक्सीजन पृथ्वी से अवशोषित कर तथा पवन से श्वसन द्वारा प्राप्त करते हैं।

कार्बन :—पौधे कार्बन का उपयोग वायु (श्वसन) द्वारा कार्बनडाॅयऑक्साइड के रूप में करते हैं। पौधे के कुल शुष्क भार का 47% कार्बन होता है। जमीन में कार्बोनेट के रूप में कार्बन होता है लेकिन इसका उपयोग पौधे नहीं कर पाते हैं।

हाइड्रोजन :—हाइड्रोजन का उपयोग पौधे जल के रूप में करते हैं। यह पौधों के जीवन के लिए अति आवश्यक तत्त्व है। इसलिए पानी पौधों का जीवन है।

कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन ये तीनों तत्त्व पौधों के लिए अति आवश्यक आहार हैं। ये प्रोटोप्लाज्म तथा अन्य कार्बनिक तत्त्वों के निर्माण का कार्य करते हैं।

नाइट्रोजन :—इसे नाइट्रेट के रूप में पौधे भूमि से अवचूषित करते हैं। यह पौधों में प्रोटीन, एमिनो एसिड, विभिन्न विटामिनों, हार्मोन, एन्जाइम तथा न्यूक्लिओ एसिड के निर्माण में भाग लेता है। इसकी कमी से पत्तियाँ पीली हो जाती हैं, श्वसन दर कम हो जाती है। इसकी अधिक मात्रा फूलों

तथा तनों के विकास में बाधक है। पौधों को नाइट्राइट तथा अमोनिया से भी नाइट्रोजन मिलता है।

मॉलिब्डनम :—पौधों में यह प्रोटीन के संश्लेषण अर्थात् नाइट्रेट को अवकृत कर अमोनिया बनाता है। नाइट्रोजन को स्थिरीकरण करने वाले सहजीवी तथा मृतोपजीवी बैक्टिरिया के लिए अति आवश्यक है।

उपर्युक्त सभी आवश्यक तत्त्व प्रायः मिट्टी द्वारा ही मिलते हैं। इनमें बहुत से तत्त्व कोशिका-संरचना में सहायता करते हैं। कुछ तत्त्व एन्जाइम के निर्माण में भाग लेते हैं। कुछ तत्त्व पौधों की चयापचय क्रिया में उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। टमाटर की अच्छी तरह वृद्धि के लिए 0 000125 ग्राम जिंक सल्फेट की जरूरत होती है वहीं कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से सेलुलोज, लिगनिन तथा अन्य संचित भोज्न पदार्थ तथा प्ररस बनता है। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा सल्फर प्रोटीन का निर्माण करते हैं। यह प्रोटोप्लाज्म बनाता है। इसलिए इन्हें प्रोटोप्लास्मिक तत्त्व कहते हैं।

बनस्पति एन्जाइम प्राणियों का श्रेष्ठ आहार-पाचक

पौधों में पाचन-क्रिया प्रायः अन्तरकोशीय होती है। हाइड्रोलिसिस अर्थात् पानी के संयोग से जटिल यौगिक कम जटिल यौगिकों में बदलते हैं। इस पाचन क्रिया को त्वरित करने के लिए पौधों के प्रोटोप्लाज्म के स्राव से जैव-कार्बनिक उत्प्रेरक "एन्जाइम" बनता है। एन्जाइम विभिन्न प्रकार के होते हैं। अंकुरित बीजों में "लाइपेज एन्जाइम" पाया जाता है जो वसा को वसाम्ल तथा ग्लिसरॉल में बदलता है। पत्तियों में स्थित एन्जाइम 'सुक्रेज' सुक्रोज को ग्लूकोज तथा फ्रूक्टोज में, 'एमाइलेस' स्टार्च को माल्टोस में, 'माल्टेस एन्जाइम' माल्टोस को ग्लूकोस में तथा 'साइटेस' हेमीसेलुलोज को ग्लूकोस में परिवर्तित कर देते हैं। विभिन्न एन्जाइमों का समिश्र एन्जाइम "डायस्टेज" स्टार्च को ग्लूकोस में; 'सेलुलेस' तथा 'सेलोबिएस' सेलुलोस को ग्लूकोस में बदल देते हैं। ये सभी एन्जाइम

पानी की उपस्थिति में ही क्रिया करते हैं इसलिए इन्हें हाइड्रोलेज एन्जाइम कहते हैं। फॉस्फोरिक एसिड की उपस्थिति में क्रिया करने वाले एन्जाइम "फास्फोरिक लेसेस" कहलाते हैं। पौधों में ग्लूकोस, फ्रूक्टोज, सुक्रोस, सेलुलोस, हेमिसेलुलोस तथा स्टार्च के रूप में कार्बोज पाया जाता है।

पौधों में आक्सीकरण तथा अवकरण करने वाले एन्जाइम पाये जाते हैं। जड़ों में स्थित "नाइट्रेट रिडक्टेस" एन्जाइम नाइट्रेट्स को नाइट्राइट में बदल देते हैं। ऑक्सीकरण तथा अवकरण द्वारा ही पौधों में ऊर्जा का उत्पादन एवं वितरण कार्य होता है। प्रोटोप्लाज्म में होने वाली इन क्रियाओं में हाइड्रोजन का स्थानान्तरण अर्थात् जिस यौगिक से हाइड्रोजन अणु निकल जाता है, उसका ऑक्सीकरण तथा जिसमें जुड़ जाता है उसका अवकरण होता है। बहुत से एन्जाइम यौगिकों से हाइड्रोजन निकाल कर स्वयं अवकृत हो जाते हैं, लेकिन वे स्वयं अपना हाइड्रोजन देकर ऑक्सीकृत नहीं हो पाते हैं। इन्हें ऑक्सीकृत होने के लिए कुछ अन्य यौगिकों की आवश्यकता होती है। इन्हें को-एन्जाइम कहते हैं। एन ए. पी. निकोटीनेमाइड एडिनानइन डाइ-न्यूक्लिओटाइड फॉस्फेट) को-एन्जाइम हैं। कुछ एन्जाइम दो यौगिकों को जोड़ कर नया यौगिक बना देते हैं, उन्हें एडिंग एन्जाइम कहते हैं। जैसे फ्यूमेरेस एन्जाइम फ्यूमेरिक एसिड में पानी जोड़ कर मैलिक एडिस बनाता है। "ट्रान्सफरिंग एन्जाइम" यौगिकों के कुछ भाग (परमाणुओं) के समूह को दूसरे यौगिक में स्थानान्तरित कर देते हैं। जैसे ट्रान्सफॉस्फेटेज एन्जाइम 'फॉस्फेट' को एक यौगिक से ले जाकर दूसरे से जोड़ देता है। यह स्थानान्तरण काफी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि फॉस्फेट के टूटने से काफी मात्रा में ऊर्जा निकलती है तथा जुड़ने से ऊर्जा जमा हो जाती है। समपरमाणुक यौगिक (Isomers) के किसी एक अणु में से कुछ परमाणुओं को दूसरी जगह जोड़ने वाले एन्जाइम को "आइसोमरसिंग एन्जाइम" कहते हैं। फॉस्फोग्लिसरो क्यूटेज एन्जाइम के कारण 3-फॉस्फोग्लिसिरिक एसिड से 2 फॉस्फोग्लिलिरिंग एसिड बनता है।

कार्बनमोनोऑक्साइड, भारी धातुएं मैलोनिक, एसिड तथा आयडो-एसीटेट आदि अनेक विषैले रसायनों से एन्जाइम सक्रियता समाप्त हो जाती

कोबाल्ट, मैंगनीज, जस्ता, क्लोरिन आदि लवणों से एन्जाइम सक्रियता बढ़ जाती है।

"प्रोटियेस" एन्जाइम एमिनो एसिड के संघनन रूप प्रोटीन को सरलीकृत कर एमिनो एसिड में परिवर्तित करता है। पपीते में 'पेपेन' तथा अनन्नास में ब्रोमेलिन एन्जाइम तथा अन्य पौधों में इसी प्रकार के उपस्थित एन्जाइम प्राणियों में प्रोटीनों को पचा कर अर्थात् जल-विश्लेषण द्वारा एमिनो एसिड में बदल देते हैं। प्रोटीन के अणु अनेक एमिनो एसिड के संघनन से निर्मित होते हैं। इसका मुख्य भाग नाइट्रोजन है। इसके अतिरिक्त कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, सल्फर तथा फॉस्फोरस भी प्रोटीन में होते हैं। एमिनो एसिड अम्ल तथा क्षार अर्थात् उभयधर्मी गुण के होते हैं। पौधों में प्रोटीन नाइट्रोजन का अवशोषण नाइट्रेट के रूप में अथवा नाइट्राइट या अमोनिया यौगिकों के रूप में होता है। पौधों में नाइट्रेट रिडक्टेज एन्जाइम की उपस्थिति में नाइट्रेट अवक्रृत होकर नाइट्राइट बनाता है। यह प्रोटीन-निर्माण का प्रारम्भ है। नाइट्राइट घातक होने के कारण यह संचित न होकर अमोनिया में परिवर्तित हो जाता है। अमोनिया कुछ एन्जाइमों, एमिनो एसिड आदि की उपस्थिति में कार्बनिक एसिडों से जुड़ कर एमिनो एसिड बनाते हैं। नाइट्रेट्स से अमोनिया बनते समय हाइपोनाइट्रस तथा हाइड्रोक्सिल एमिन में से कोई एक यौगिक अवश्य बनता है। इस प्रकार से अनेक एमिनो एसिड बनते हैं जो संघटित होकर प्रोटीन बनाते हैं। अंकुरण के समय एन्जाइम की उपस्थिति में प्रोटीन के जल-विश्लेषण द्वारा एमिनो एसिड बनते हैं जो पौधों के सभी अंगों में पहुँच कर प्रोटीन निर्माण करते हैं।

प्रोटीन, हमारे आहार का महत्त्वपूर्ण भाग है। इसका निर्माण वायुमण्डल में स्थित नाइट्रोजन गैस द्वारा होता है। सर्वप्रथम नाइट्रोजन की भूमि में विभिन्न नैसर्गिक प्रविधियों द्वारा स्थिरीकरण किया जाता है। इसमें एजोटोबैक्टर इत्यादि ऑक्सी (aerobic) बैक्टिरिया तथा क्लॉस्ट्रीडियम पेस्चोरिएनम आदि अनॉक्सी (anaerobic) बैक्टिरिया नास्टमस्कोरम शैवाल, राइजोबियम जाति के बैक्टिरिया अरहर, लोबिया आदि लेग्यूमिनोसी परिवार के पौधों की जड़ों की गोल-गोल ग्रंथियों के अन्दर रहते हैं जो स्वतन्त्र नाइट्रो-

जन को नाइट्रेट में बदल देते हैं। यह नाइट्रेट पौधों के विकास में सहायक है। पौधे इन्हें कार्बोहाइड्रेट देते हैं जो इनका आहार है। अनेक बैक्टिरिया नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं। बिजली चमकने से वायुमण्डल का नाइट्रोजन ऑक्सीजन से मिल कर नाइट्रिक ऑक्साइड बनता है। नाइट्रोजन-पेराऑक्साइड (NO_2) वर्षा के जल में घुल कर नाइट्रिक एसिड के रूप में पृथ्वी द्वारा अवचूषित हो जाती है जो कैल्शियम तथा पोटाशियम से मिल कर नाइट्रेट बनाती है। मिट्टी में स्थित नाइट्रोसोमोनाज बैक्टिरिया अमोनिया को नाइट्राइट में तथा नाइट्रोबैक्टर बैक्टिरिया नाइट्राइट को नाइट्रेट में बदल देते हैं। पौधे नाइट्रेटों को प्रोटीन (एमिनो एसिड) में बदल देते हैं जिन्हें प्राणी खाकर जिन्दा रहते हैं। इनके मरने के बाद अमोनीकरण तथा नाइट्रीकरण वाले बैक्टिरिया इन्हें नाइट्रेट में बदल कर पौधों के लिए उपयोगी बना देते हैं। इस प्रकार नाइट्रोजन चक्र चलता रहता है। फसल चक्र द्वारा भी नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करना चाहिए।

क्लोरोफिल :—यह हमारे आहार का बहुत ही उपयोगी पोषक तत्त्व है। इसमें रोग-संहार की कमाल की शक्ति है। कैंसर, टी. बी जैसे डिजनरेटिव रोगों की रोकथाम भी बखूबी करता है। यह पौधे के लिए भी प्राण आधार है। रक्त के हिमोग्लोबिन तथा पौधों के क्लोरोफिल की रासायनिक संरचना एवं गुण-धर्म एक दूसरे से काफी नजदीक हैं। यह प्रकाश की उपस्थिति में कार्बन डायऑक्साइड तथा पानी को मिला कर कार्बोहाइड्रेट बनाता है। इस क्रिया को प्रकाश-संश्लेषण कहते हैं।

$$6CO_2 + 12\,H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{प्रकाश}} C_6\,H_{12}\,O_6 + 6O_2 + 6H_2O$$
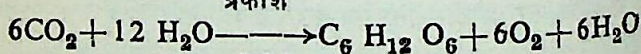
यहाँ पर प्रकाश ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित होकर हेक्सोज शक्कर के रूप में संचित हो जाता है। यह क्रिया क्लोरोफिल की अधिकता वाले अंग में अधिक होती है जैसे पत्तियाँ। इस क्रिया में क्लोरोफिल प्रकाश-उत्प्रेरक का कार्य करता है। यह प्रकाश के नीले तथा लाल भाग को अधिक मात्रा में अवचूषित करता है। प्रकाश का 83% भाग पत्तियाँ अवचूषित करती हैं जिसका 4% भाग क्लोरोफिल सोखता है। दो प्रकार

क्लोरोफिल होते हैं—"ए" तथा "बी"। प्रकाश-संश्लेषण में इन दोनों प्रकार के क्लोरोफिल के अतिरिक्त कैरोटिन, फायकोसाइनिन तथा फायकोबिलिन इत्यादि रंजक द्रव्य भाग लेते हैं। पौधों में श्वसन दिन-रात चलता है। प्रकाश-संश्लेषण के कारण क्लोरोफिलयुक्त कोशिकाएँ दिन में सूर्य-रश्मि के कारण ऑक्सीजन बाहर निकालती हैं। रात में यह क्रिया रुक जाने से सिर्फ कार्बन डाइऑक्साइड ही बाहर निकलता है क्योंकि श्वसन क्रिया में ऑक्सीजन का अवशोषण हो जाता है तथा कार्बोहाइड्रेट टूट कर कार्बन डाइऑक्साइड बाहर निकलता है। यह अवचयी क्रिया (cata bolic process) प्रत्येक जीवित कोषा में निरंतर चलती है जबकि निर्माण की क्रिया (anabolic process) प्रकाश की उपस्थिति में सिर्फ क्लोरोफिलयुक्त कोशाओं में होती है।

उपर्युक्त क्रियाओं के अतिरिक्त अनेक अद्भुत जैव-रासायनिक क्रियाएँ पौधों के अन्दर निरंतर चलती रहती हैं। पौधों के स्वस्थ विकास तथा मानव जीवन के लिए अति उपयोगी हार्मोन्स तथा विटामिन पौधे निर्माण करते हैं। सन 1928 ई. में डच विज्ञानी डा. एफ. डब्ल्यू. वेन्ट ने पौधों में ऑक्सिन हार्मोन का आविष्कार किया। इससे अतिरिक्त थायमिन या बी$_1$, पायरिडॉक्सिन बी$_6$, रिबोफ्लेविन, पेन्टोथेनिक एसिड, अस्कोर्बिक एसिड आदि अनेक हार्मोन तथा विटामिन पौधे अपनी आवश्यकतानुसार निर्माण करते हैं जो प्राणि-जगत के लिए श्रेष्ठ आहार हैं। प्रायः सभी पौधों का मूल स्रोत भूमि ही है। वनस्पति प्राणियों से श्रेष्ठ है क्योंकि ये अपना आहार पंच-तत्त्वों (से निर्मित सैकड़ों रसायनों) को सीधे रॉ मैटेरियल के रूप में प्रयोग कर अपना आहार बना लेते हैं। इसी कारण पौधे स्थिर रहते हैं। प्राणियों को आहार के लिए दूसरे पर आश्रित रहना पड़ता है इसलिए उन्हें अपने आहार के लिए इधर से उधर भटकना पड़ता है। उपरोक्त वर्णन से हमने देखा कि पौधे अपना आहार किस प्रकार निर्मित करते हैं और वनस्पतियों के रूप में वही आहार हमारे अस्तित्त्व एवं स्वास्थ्य के लिए कितना महत्वपूर्ण है। हम प्रकृति के रॉ-मटेरियल से अपना आहार नही बना सकते हैं लेकिन पौधे रॉ-मटेरियल से हमारे योग्य आहार बनाते हैं। यह भी प्रकृति का अद्भुत करिश्मा है।

20 | पर्यावरण, आहार और स्वास्थ्य

प्राणी, वनस्पति तथा प्रकृति के पंचमहाभूत-पृथ्वी, जल, आकाश, वायु तथा सूर्य-के मध्य का संतुलन ही स्वास्थ्य हैं । इनमें किसी प्रकार की अव्यवस्था आने पर स्वास्थ्य की कड़ी टूटने लगती है । इनमें पारस्परिक सम्बन्ध है । पैदावार बढ़ाने की होड़ में आज आम किसान एवं सरकार कीटनाशी तथा रासायनिक खादों के प्रयोग पर ज्यादा बल दे रही है । इसके दुष्परिणाम भी सामने आने लगे हैं । कीटनाशी औषधियों से पौधों के स्वास्थ्य-सम्वर्द्धन में उपयोगी एवं सहयोगी कीट भी समाप्त हो जाते हैं । इतना ही नहीं, इसका दुष्परिणाम पौधों के भविष्य पर भी होता है । कीटनाशी रसायनों से पौधों को नुकसान पहुंचाने वाले कमजोर कीट तो मर जाते हैं, परन्तु कुछ सशक्त कीट बच जाते हैं और ये वंश-सम्वर्द्धन व प्रजनन द्वारा सशक्त कीटों को पैदा करते हैं । इन पर रासायनिक दवाओं का प्रभाव भी नहीं पड़ता । इन कीटों में रसायनों के प्रति प्रतिरोधक-क्षमता बढ़ जाती है । इसके अतिरिक्त कीटनाशी-रसायन प्रकृति के मध्य असंतुलन पैदा करते हैं । इनके कल कारखानों से उड़ते धुंए, उड़ते रसायन, वायुप्रदूषण एवं श्वास द्वारा व्यक्ति के रक्त में घुल जाते हैं और नाना प्रकार की जानलेवा बीमारियाँ पैदा करते हैं । जब इन रसायनों को शाकनाशी कीटों को मारने के लिए पौधों पर फुहारते हैं तो रसायन जमीन पर पड़ते हैं तथा सिंचाई द्वारा मिट्टी के अन्दर चले जाते हैं और जमीन तथा जल को भी प्रदूषित करते हैं । रासायनिक खादों के प्रयोग से जमीन के उर्वर-स्वास्थ्य को बनाये रखने वाले असंख्य माइक्रोआर्गेनिज्म, केंचुए तथा अन्य कीटों को पहले रुग्ण, कमजोर एवं अधमरा बना कर रखते हैं । ऊपर से ये कीटनाशी रसायन जमीन में प्रविष्ट होकर इन पर और कहर ढाते हैं । इन कीटनाशी रसायनों से पैदावार को बढ़ाने वाले प्राकृतिक मित्र जीव-जन्तुओं का जिस कदर सर्वनाश किया जा रहा है, उसके दुष्परिणाम-स्वरूप भविष्य में जमीन से पैदावार लेना गंभीर समस्या बन जायेगी । टिमटिट, गौरैया, हुदहुद कोयल आदि किसान मित्र-प्राणि हजारों टन इल्लियों को चट कर जाती हैं । ये इल्लियाँ फसलों को नष्ट करती हैं । कीटनाशी रसायनों के कारण

प्राकृतिक मित्र स्वयं नष्ट हो रहे हैं फलतः इल्लियों की बाढ़ आ गई है। रासायनिक खाद एवं कीटनाशी दवाओं के प्रभाव से मेंढक, सांप आदि के मरने से चूहों, झींगुरों तथा अन्न को बर्बाद करने वाले अन्य जीवजन्तुओं के उत्पात भी बढ़ने लगे हैं।

कीटनाशी एवं रासायनिक खादों के प्रयोग से आलू, संतरा, सेव, चने आदि सब्जियों, फलों एवं अनाजों की गुणवत्ता एवं स्वाद खराब हो गया है। प्राग के प्रो. सी जैपक अपनी विभिन्न खोजों से इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जब भी रासायनिक खाद का प्रयोग किया जाता है, उससे उपज तो बढ़ती है; किन्तु खादों में श्वेतसार, पोटाशियम तथा फास्फोरस आदि स्वास्थ्य-वर्द्धक तत्त्वों की मात्रा तेजी से कमी होती है। सोडियम क्लोराइड तथा पानी में सिर्फ वृद्धि होती है। इस प्रकार रासायनिक खाद से उपजे खाद्यों में Nacl तथा H_2o अधिक होने के कारण इनके प्रयोग से अनेक रोग तथा अन्य खतरनाक स्थितियाँ उत्पन्न होतीं हैं। कृत्रिम खादों एवं रसायनों से उगाये जाने वाले आहारों को खानें से कैंसर, गुर्दे तथा यकृत के रोग बढ़ रहे हैं। शरीर की सफाई एवं ऊर्जा-सप्लाई का कार्य मुख्य रूप से गुर्दे एवं यकृत ही करते हैं अतः रक्त-विषाक्तता होने से इन दोनों के कार्य बढ़ जाते हैं और घातक रसायनों के मलवे को बाहर निकालने में ये क्षतिग्रस्त भी हो जाते हैं। कीटनाशी रसायन डी. डी. टी. के प्रचुर प्रयोग के कारण ही यह हमारे यकृत, रक्त एवं चर्बी अर्थात हमारे अंगों का अभिन्न अंग बन गया है। शरीर में इसकी उपस्थिति के कारण वैज्ञानिक अधिक चिन्तित हैं। घास या अन्य वनस्पतियों पर फव्वारे से फेंके जाने वाले क्लोरडेन का वाष्प मनुष्य के रक्तादि में घुस कर विध्वंसकारी प्रभाव डाल रहा है। यह रसायन डी. डी. टी. से 50 गुना ज्यादा जहरीला हैं। भारत में प्रयुक्त होने वाला एक अन्य कीटनाशी रसायन परथिमन भी अत्यधिक घातक है। मात्र इसके सम्पर्क से ही अपने यहाँ मरने वालों की औसत संख्या 366 प्रतिवर्ष है। राष्ट्रसंघ के पर्यावरण विभाग की एक रिपोर्ट के अनुसार कीटनाशी दवाओं से विकासशील गरीब देशों के 22 हजार लोग प्रतिवर्ष मरते हैं। कीटनाशी दवा एल्ड्रीन, क्लोरडान, हेप्टाक्लोर, साइनमिड, साइथियोन, मेलाथियोन, डिएलड्रिन, लिंडेन मिथाइलब्यूटाक्लोर, डी. बी.

सी. पी., पैराक्वेट, डी. डी. टी, पैराथियान आदि अनेक प्राणघातक कीट-नाशकों पर अमेरिका में प्रतिबंध लगा हुआ है, परन्तु भारत जैसे गरीब मुल्कों में ये कीटनाशी रसायन धड़ल्ले से खुलेआम बिक रहे हैं। अनेक प्रकार के ये कीटनाशी रसायन आपस में मिल कर कई गुना खतरनाक हो जाते हैं। इन रसायनों का प्रभाव शरीर पर रेडियम की तरह घातक होता है। इनसे शरीर में ऑक्सीकरण प्रक्रिया तथा अन्य चयापचयी प्रक्रियायें विक्षुब्ध होती हैं।

ये रसायन हमारे शरीर में, दूध, फल, सब्जियों तथा खाद्यान्नों के जरिए प्रवेश करते हैं। इस रसायनों के घातक दुष्प्रभाव से हिपेटाइटिस, सिरोसिस, स्नायविक विकृति, जोड़ों में दर्द, ट्यूमर, गर्भ विकृति, अंधता, विकलांगता, रक्त-कैंसर, अन्य अंगों के कैंसर, एनडेमिक फेमेलिया से लेकर मौतें तक हो जाती हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण सर्वविदित भोपाल का गैस कांड है।

प्रयोगों से देखा गया कि गाय के दूध में डी. डी. टी की मात्रा 0.10 से 0.30 पी. सी. एम. तक पहुँच गयी है जो स्वीकृत मात्रा से 6 गुना अधिक है। कीटनाशी एल्ड्रीन, डी. डी. टी. की अपेक्षा पन्द्रह गुना ज्यादा पाया गया हैं। चूँकि यह दवा हवाईजहाज से छिड़की जाती है, इसलिए इसका दुष्प्रभाव सभी प्राणियों एवं वनस्पतियों पर होता है। कीटनाशी रसायनों ने प्रकृति के सभी महाभूतों में प्रदूषण व असंतुलन पैदा कर दिया हैं। प्रकृति के नियमों का बार-बार खंडन करने से वनस्पति एवं प्राणि जगत का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। रसायनों के साथ खिलवाड़ कर मनुष्य अपने विनाश का रास्ता स्वयं चुन रहा है।

इस सृष्टि में हर पौधे तथा प्राणि का अपना विशिष्ट महत्त्व है। उसका महत्त्व नहीं जानने के कारण उसे हम समाप्त तो करते हैं लेकिन बाद में असंतुलन पैदा होता है तो बेचैन होते हैं, घबराते हैं परन्तु तब "पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत"। वैज्ञानिकों का मानना है कि पृथ्वी पर 50 लाख से एक करोड़ तक वनस्पति एवं जन्तुओं की प्रजातियाँ होती हैं। इसमें आधी प्रजातियाँ जंगलों में हैं। आज जिस प्रकार पेड़ कट रहे हैं, यदि उसी प्रकार कटते रहे तो सन दो हजार तक वर्तमान प्रजातियों में से

एक चौथाई खत्म हो जायेंगी; ऐसा वैज्ञानिकों का मानना है । प्रकृति, वनस्पति तथा प्राणि, अर्थात-प्रत्येक जीवन-श्रंखला किस कदर एक दूसरे से जुड़ी हुई है, उसके लिए मात्र एक उदाहरण पर्याप्त है । इस सम्बन्ध में विस्कोंसिन विश्वविद्यालय के प्रो. ए. स्टेनले ने 1977 में अद्‌भुत खोज की। एक दुर्लभ पेड़ होता है केल्वरिया । इस पेड़ का बीज जब तक पक्षी डोडो नही खा लेता था तब तक उसका अंकुरण असंभव था। डोडो मॉरिशस का प्रसिद्ध पक्षी था। परन्तु दुर्भाग्यवश यह ज्यादा उड़ नहीं सकता था। जब यूरो-पीयों ने मॉरिशस पर कब्जा किया तो वे इस पक्षी को मार मार कर खा गये। एक भी पक्षी नहीं बचा । पक्षी के साथ केल्वरिया पेड़ का जीवन जुड़ा हुआ था, अतः यह पेड़ भी समाप्त होने लगा । विश्व में इसके पाँच ही पेड़ बचे तो प्रो स्टेनले ने खोज की कि इसका बीज अत्यन्त कठोर होने से उसके अन्दर नमी नहीं जा पाती है। डोडों के आमाशय में स्थित तीव्र अम्ल तथा पत्थर से घिस कर उसका छिलका पतला हो जाता है, फलतः वह बाहर जमीन पर आते ही अंकुरित होने लगता है। प्रो. स्टेनले ने खोज की कि डोडो की तरह गिजार्ड के पेट में भी उसी प्रकार के पत्थर तथा अम्ल होते हैं फलतः उन्होंने लुप्तप्राय केल्वेरिया का बीज गिजार्ड को खिला कर अंकुरित कर इस पेड़ को बचा लिया । इस प्रकार से इस सृष्टि में अनेक उदाहरण हैं। वनस्पति तथा प्राणियों का जीवन एक दूसरे पर घनिष्ठता के साथ जुड़ा हुआ है । किसी भी पौधे या प्राणि का नाश करना वस्तुतः अपना ही सर्वनाश करना है अतः पर्यावरण में सहभागिता के आधार पर इसे प्रदूषण से बचा कर समस्त जगत एवं ब्रह्माण्ड के स्वास्थ्य की मंगल कामना करें।

21 | संश्लिष्ट एवं जैव-नैसर्गिक पोषक-औषधि तत्त्व

मनुष्य तथा प्रकृति की प्रयोगशाला में निर्मित पोषक तत्त्वों में अन्तर अर्थात् संश्लेषित बनाम जैव-पोषक या औषधि तत्त्व :—विटामिन तथा खनिज लवणों की खोज का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। इस पर सबसे अधिक शोध कार्य बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में किया गया। कुछ आहार विज्ञानियों ने प्रोटीन, कार्बोज तथा वसा का प्रयोग कर देखा कि मात्र इनके

प्रयोग से स्वास्थ्य क्षीण होने लगा, विकास रुक गया तथा शरीर जर्जर होने लगा। फिर उनके आहार में ऐसे आहार सम्मिलित किये गए जिनमें दूध, फल एवं सब्जियों की मात्रा ज्यादा थी। इनके प्रयोग से स्वास्थ्य में अप्रत्याशित सुधार हुआ। फिर तो इस क्षेत्र में अनेक शोध कार्य हुए। इन शोध कार्यों के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के विटामिन तथा खनिज लवण हमारे सामने आए। आज आहार-शास्त्र का विज्ञान काफी आगे बढ़ चुका है।

प्रारम्भ में जब विटामिनों तथा खनिज लवणों की खोज हुई, उस समय ऐसा माना जाता था कि एक प्रकार के विटामिन या खनिज लवण शरीर में एक ही प्रकार के कार्य करते हैं। लेकिन शोध जैसे-जैसे आगे बढ़ी, यह बात स्पष्ट हो गई कि शरीर के अन्तर्गत एक ही कार्य पर अनेक प्रकार के विटामिनों, खनिज लवणों एवं अन्य आहारीय पोषक तत्त्वों का सम्मिलित प्रभाव होता है। शरीर में सभी प्रकार के पोषक तत्त्वों का उपयोग एक दूसरे से अन्तर्संबंधित है। उदाहरणस्वरूप हिमोग्लोबिन या रक्त-निर्माण के लिए कोबाल्ट, लोहा, विटामिन बी$_{12}$, सी, फॉलिक एसिड ताँबा तथा मैंग्नीज इन सबों की आवश्यकता होती है। सिर्फ लोहा से ही हिमोग्लोबिन या रक्त कोशिकाओं का निर्माण नहीं होता। ठीक इसी प्रकार कैल्शियम, फास्फोरस, विटामिन डी, वसा, मैग्नेशियम, मैंग्नीज, फ्लोरिन आदि तत्त्व ठीक अनुपात में मिल कर अस्थियों का निर्माण करते हैं। एक दूसरे के अभाव में हड्डियों का निर्माण नहीं हो सकता है। यह बात हमेशा ध्यान में रखें कि आहारीय पोषक तत्त्वों का कार्य एक दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध है कि एक के अभाव में दूसरे की उपयोगिता असंभव हो जाती है। फलस्वरूप शरीर की चयापचय एवं विकास की अन्य क्रियाएँ अस्त-व्यस्त हो जाती हैं।

किसी विशेष विटामिन या खनिज लवण के अभाव में रोग होते हैं यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। हो सकता है विशेष तत्त्व में अभावजन्य रोग उत्पन्न करने की क्षमता हो, लेकिन देखा गया है कि अभाव-जन्य तत्त्व की संश्लिष्ट तत्त्वों द्वारा पूर्ति करने के बाद भी रोग में अपेक्षित सुधार नहीं होता है। संश्लिष्ट विटामिन या खनिज लवणों का प्रभाव उतना उपयोगी नहीं हो पाता, जितना नैसर्गिक विटामिन या खनिज लवणों का होता है। इसके पीछे निम्न वैज्ञानिक कारण हैं :—

(1) संश्लिष्ट विटामिन या खनिज तत्त्व उतने प्रभावी तथा उपयोगी नहीं रहते हैं। जैसे विटामिन 'ई' गेहूं के अकुरण में जितना प्रभावी है उससे पृथक संश्लिष्ट होते ही उसके 99% गुण खत्म हो जाते हैं।

(2) प्रत्येक आहार-औषधि में आवश्यक एवं उपयोगी खाद्य तत्त्वों के साथ-साथ दुष्प्रभावों को उदासीन एवं समाप्त करने वाले एण्टीडोट भी होते हैं। उदाहरणस्वरूप सारे शरीर में सूजन एडिमायुक्त उच्च रक्तचाप या गुर्दे संबंधी रोग में बहुमूत्रक (डाइयूरेटिक) औषधियाँ दी जाती हैं। ये औषधियाँ सूजन तो कम करती हैं लेकिन साथ ही बहुमूल्य तत्त्व पोटाशियम आदि को भी पेशाब द्वारा बाहर निकाल देती हैं। फलतः कमजोरी, तीव्र हृदय धड़कन आदि अनेक रोग लक्षण दिखते हैं। संश्लिष्ट पोटाशियम आदि तत्त्वों से इनकी पूर्ति करने पर हानिकारक उत्तेजक दुष्प्रभाव होते हैं। इस स्थिति में बहुमूत्रल आहार नींबू, आँवला, संतरा, लौकी, ककडी, पुनर्नवा आदि पृथक-पृथक रस देने से शरीर की सूजन कम होने के साथ-साथ पौटाशियम आदि तत्त्वों की कमी नहीं हो पाती है, क्योंकि इन सबकी पूर्ति इन आहारों से हो जाती है।

(3) संश्लिष्ट खाद्य पदार्थ विषाक्त जहरीले स्वास्थ्य घातक प्रभाव डालते हैं जबकि नैसर्गिक खाद्य पदार्थों का प्रभाव स्वास्थ्यकारक होता है। जैसे गन्ने के रस से कृत्रिम संश्लेषित चीनी तथा गन्ने के रस के गुण धर्म में काफी भिन्नता आ जाती है। चीनी खाने पर रक्त में शर्करा तेजी से बढ़ती है। इसमे यकृत, क्लोम ग्रंथि एवं अन्य अंगों पर हानिकारक प्रभाव होता है। रक्त में पायरुवेट, लैक्टेट तथा अन्य अम्लवर्द्धक विष बढ़ जाते हैं। गन्ना रस में स्थित शर्करा प्राकृतिक रूप में होने के कारण धीरे-धीरे अवचूषित होता है। फलतः रक्त शर्करा पर नियंत्रण रहता है, बढ़ता नहीं है। गन्ने के रस में रेशे एवं अन्य एन्जाइम, खनिज एवं विटामिन के साथ शर्करा होने से दुष्प्रभाव नहीं होता है बल्कि ये पोषक तत्त्व शर्करा के साथ पाचन, अवशोषण एवं सात्मीकरण आदि के लिए आवश्यक हैं।

(4) प्रकृति की प्रयोगशाला में निर्मित आहार-औषधि में विटामिन एवं खनिज तत्त्वों के अतिरिक्त इन तत्त्वों के पाचन, अवचूषण एवं सात्मीकरण के लिए

अन्य खनिज, विटामिन्स, ग्लाइकोसाइड्स, एन्जाइम, हार्मोन, एल्कीलाइड्स फ्री एमिनो एसिड, टैनिन आदि अनेक ज्ञात अज्ञात तत्त्व पाए जाते हैं। प्रयोगों द्वारा देखा गया कि फेफड़े की यक्ष्मा के लिए जितना आँवला प्रभावी होता है, उतना विटामिन सी. की गोलियाँ नहीं होतीं। विटामिन सी के अवशोषण के लिए अन्य खनिज एन्जाइम आदि की आवश्यकता होती है जो संश्लिष्ट विटामिन सी. में किसी प्रकार पैदा नहीं किया जा सकता है। उसी प्रकार रक्त हीनता के रोगी में लोहे की गोलियाँ, रतौंधी में विटामिन ए. की गोलियां, स्कर्वी में विटामिन सी. की गोलियाँ उतनी उपयोगी नहीं होती, क्योंकि इन संश्लिष्ट गोलियों के पाचन व अवशोषण के लिए अनेक प्रकार के माध्यम चाहिए। जैसे लोहे के अवशोषण के लिए अम्लीय माध्यम विटामिन सी तथा डी. आवश्यकता होती है। अतः इनकी पूर्ति के लिए ताजे फल सब्जियाँ, अंकुरित अनाज आदि जैविक आहार उपयोगी हैं, न कि संश्लिष्ट गोलियाँ।

(5) अभी तक कितने ही विटामिनों, खनिज लवणों, हार्मोनों तथा एन्जाइमों के कार्य अज्ञात हैं। साथ ही अनेक पोषक तत्त्व, एन्जाइम, हार्मोन भी अज्ञात हैं। हालांकि वैज्ञानिक इस क्षेत्र में काफी खोज कर रहे हैं। प्रयोगशालाओं में सिर्फ ज्ञात पोषक तत्त्व ही बनाए जा सकते हैं, लेकिन उन अज्ञात तत्त्वों का निर्माण कैसे हो सकता है, जो होते हैं लेकिन अज्ञात हैं। विटामिन के संबंध में जो खोजें हुई हैं उनमें ज्ञात हुआ है कि विटामिनों के साथ रहने वाले अज्ञात तत्त्वों की भी सख्त जरूरत है। बायोफ्लोबोनिक तत्त्व अज्ञात था अब उसका महत्त्व प्रकट हुआ है। इसी प्रकार से अनेक अज्ञात तत्त्व जानकारी में आ रहे हैं, जो ज्ञात तत्त्वों से भी महत्त्वपूर्ण हैं। निसर्ग की प्रयोगशाला में निर्मित आहार-औषधों से ज्ञात-अज्ञात सभी प्रकार के तत्त्व स्वतः मिल जाते हैं।

(6) निसर्ग की प्रयोगशाला में निर्मित पौध-स्थित आहार-औषध, शरीर के रस रसायनों में बिना विषम परिवर्तन तथा घातक क्रिया-प्रतिक्रिया किए शरीर को स्वास्थ्य प्रदान करते हैं। नैसर्गिक आहार-औषध बिना हस्तक्षेप किये ही शरीर को एक हार्मोनी लय-ताल में लाकर स्वस्थ करती है। संश्लिष्ट

औषधियाँ अपनी तीव्र प्रतिक्रिया से शरीर के रिदमिक हार्मोनी (होमोओस्टेसिस) को अस्त-व्यस्त कर देती हैं।

(7) आहारीय पोषक तत्त्वों का पाचन, अवशोषण तथा सात्मीकरण आहारीय एवं आँतों में उपलब्ध पाचक रसों के पी. एच. तथा आयनाइजेशन डिसोसिएशन पर निर्भर करता है। प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि प्रकृति की प्रयोगशाला में निर्मित फल, सब्जियों, अंकुरित अनाजों, दूध से उपलब्ध पोषक तत्त्वों (कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण तथा विटामिन का अवशोषण एवं सात्मीकरण पेट एवं आँतों के (पी. एच व आइ डि) के ज्यादा अनुकूल होता हैं। संश्लेषित प्रोटीन, कार्बोज, खनिज, विटामिन आदि पोषक तत्त्व हमारे पाचन-संस्थान के अनुकूल नहीं होने के कारण तथा अवशोषण सात्मीकरण ठीक तरह नहीं होने के कारण इनसे रक्त एवं लिम्फ के घटकों एवं संचार में विषम परिवर्तन होता है, फलतः अनेक रोग होते हैं।

(8) निसर्ग की प्रयोगशाला में बने आहार-औषधों में जल, फाइवर, सेलुलोस स्टार्च आदि 99% तक होता है। इनमें स्थित सक्रिय औषध-तत्त्वों के पार्श्व दुष्प्रभावों को रोकने वाले अनेक एन्जाइम्स, अल्कोलाइडस रेजिन्स, पेप्टाइड तथा रेशे आदि तत्त्व भी होते हैं। इन सक्रिय औषध तत्त्वों "एक्टिव इनग्रेडियंट" को पृथक कर उसकी रासायनिक संरचना का पता कर संश्लेषित किया जाता है, लेकिन इस संश्लेषित सक्रिय तत्त्वों का पार्श्व-दुष्प्रभाव इतना घातक होता है कि अनेक रोग-लक्षण परिलक्षित होते हैं।

(9) संश्लेषित औषध-तत्त्वों का निर्माण अकार्बनिक तथा संश्लेषित रसायनों से होता है। जैसे लोहे या कैल्सियम या अन्य तत्त्वों को लोहा या चूना से संश्लेषित किया जाता है। संश्लेषित औषधियाँ ज्ञात रासायनिक संरचना के आधार पर बनायी जाती हैं जबकि निसर्ग इन्हें जैव रूप में रूपान्तरित कर जैविक कोशिकाओं के अनुकूल बनाती है। संश्लेषण में औषधियों के मात्र आकार में परिवर्तन होता है जबकि निसर्ग में मौलिक रूपान्तरण होता है।

(10) निसर्ग की प्रयोगशाला में निर्मित रोगाणु-नाशक औषध-तत्त्व सिर्फ रोगाणुओं का ही संहार करता है तथा मित्र जिवाणुओं की रक्षा करता है जबकि संश्लेषित कीटाणुनाशक औषधियाँ शत्रु कीटाणुओं के साथ-साथ मित्रों

का भी संहार करती हैं। नैसर्गिक इन्फेंकशननाशक तत्त्व मुख्य संक्रामक कीटाणुओं के साथ-साथ सेकण्ड्री पायोजेनिक इन्फेंकशन को भी समाप्त करता है। संश्लेपित इन्फेंकशननाशक तत्त्व सिर्फ प्रारम्भिक संक्रमण को ही समाप्त करते हैं।

जैसे सुप्रसिद्ध संक्रामक रोगाणुनाशक राष्ट्रीय पेड़ नीम किसी प्रकार के चर्म रोग के संक्रामक कीटों के साथ-साथ द्वितीयक जीवाणु-संक्रमण को भी खत्म करता है। नीम खुजली निवारक (एण्टी हिस्टामिनिक) भी है। इसी प्रकार यक्ष्मा के कीटाणुओं को मारने की क्षमता लहसुन में है लेकिन कोई दुष्प्रभाव नहीं होते हैं। जबकि क्षय निवारक तथा अन्य रोगनाशक संश्लिष्ट औषधियाँ अनेक प्रकार के भयंकर दुष्प्रभाव डालती हैं।

22 | आयुर्वेद की दृष्टि में हमारा आहार

आयुर्विज्ञान के प्राचीनतम ग्रंथ चरक, सुश्रुत, अष्टांग हृदय व संग्रह, वेद तथा गीता में आहार के सम्बन्ध में अनेक सूत्र आये हैं। इनमें से कुछ सूत्र आधुनिक आयुर्विज्ञान की शोधों की कसौटी पर भी खरे उतरे हैं तो कुछ सूत्रों की अभी तक वैज्ञानिक व्याख्या नहीं की जा सकी है। ऐसा लगता है कि वे अवैज्ञानिक मान्यताओं एव भ्रांतियों को प्रतिपादित करते हैं। यहाँ आयुर्वेद की दृष्टि से आहार पर चर्चा की जा रही है। हमारे शरीर की तरह हमारा आहार भी पंच-तत्त्वों से बना है। इन तत्त्वों के आधार पर आहार पार्थिव, जलीय, तेजस्, वायवीय तथा आकाशीय गुणयुक्त होता है। इन्हीं गुणों के कारण कोई भी आहार ठण्डा, जल्द पचने वाला, देर में पचने वाला होता है। कोई मल से बाहर निकलता है तो कोई मुँह से बाहर निकलता है। जल तत्त्व की प्रकृति (स्वभाव) है ठण्डी, भारी तथा नीचे की ओर बहने वाली। इसके विपरीत तेज या अग्नि का गुण हल्का तथा ऊपर की ओर जाने वाला है। वायु का गुण सम तथा न्यूट्रल है। यह जिसके साथ मिलता है उसी के गुण में वृद्धि करता है। यह अग्नि को बुझाता है तो दूसरी तरफ अग्नि को प्रचण्ड भी करता है। आकाश तत्त्व हल्कापन व खालीपन पैदा करता है, वहीं पृथ्वी तत्त्व भारीपन पैदा करता है।

अग्नि तत्त्व आँख, जल तत्त्व रसना या जिह्वा, पृथ्वी तत्त्व नासिका आकाश तत्त्व कान तथा वायु तत्त्व त्वचा का प्रति-निधित्व करता है और इन्हीं तत्त्वों को ग्रहण भी करता है। इनमें जिह्वा आंख एवं नाक ज्ञानेन्द्रियाँ ही आहार से उद्दीप्त होती हैं। जिह्वा, प्रधान ज्ञानेन्द्रिय है जिसका आहार से सीधा सम्बन्ध है। आहार के षट्-रसों का निर्णय तथा रसास्वादन जिह्वा का ही काम है इसलिए इसे रसना भी कहा गया है। खाद्य पदार्थों की दृष्टि से छः रस होते हैं— मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु और कषाय। पृथ्वी तथा जल तत्त्व की अधिकता से मधुर, पृथ्वी तथा अग्नि गुण की प्रबलता से अम्ल, जल और अग्नि गुण से लवण, वायु और अग्नि गुण की प्रचुरता से कटु, आकाश और वायु गुण के संयोग से तिक्त तथा वायु और पृथ्वी तत्त्वों के गुणों की अधिकता से कषाय निर्मित होता है। ये छः रस पृथक-पृथक खाद्य पदार्थों में अलग-अलग में मात्रा होते हैं। इन रसों पर ही पाचक रसों का स्राव निर्भर करता है। सुश्रुत में एक सूत्र है जिसके अनुसार भोजन का प्रारम्भ मधुर रस से करें। इससे मुँह का एन्जाइम सलाइवा एमाइलेस प्टाइलिन एन्जाइम काफी मात्रा में निकल कर भोजन को पचाने में सहयोगी बनेगा। भोजन की समाप्ति कषाय रस से करें। यही कारण था कि लोग भोजन के बाद पान खाते थे। अम्ल तथा लवण रस (आचार इत्यादि) का उपयोग मध्य में करने हेतु बताया है।

बल, पुष्टि, आह्लाद देने वाला तथा होठ चिपकाने वाला रस मधुर होता है। भूख की वृद्धि, मन में उल्लास, जिह्वा में उत्तेजना तथा भोजन में रुचि पैदा करने वाला रस अम्ल होता है। लार ग्रंथि की सक्रियता बढ़ाने वाला, कफ विच्छेदक, भोजन में स्वाद व रुचि पैदा करने वाला रस लवण होता है। मुखशोधक, आँसू उत्तेजक, नासिका से पानी लाने वाला रस कटु (मिर्च) होता हैं। ज्वरघ्न, दूसरे रसों को उपयोगी बनाने में सहायक तथा रक्तशोधक रस तिक्त होता है जैसे नीम व करेला विभिन्न पाचक रसों के स्राव को कम करने वाला, रसों को अपने कार्य-सम्पादन के लिए प्रेरक तथा सभी रसों का समन्वयक कषाय रस (जैसे आम की गुठली, आँवला इत्यादि) कहलाता है। इन छः रसों से युक्त आहार के सम्यक् प्रयोग से हम

स्वस्थ रहते हैं । अपने आहार में इन रसों की कमी या प्रचुरता होने अ
असम्यकत्त्व की स्थिति से हम बीमार होते हैं।

ऐसे खाद्य पदार्थ जिन्हें कम मात्रा में भी खाने पर पेट भारी त
शरीर आलसी हो जाता है, उसमें पृथ्वी तत्त्व है जैसे गेहूं, बाजरा, म
आदि की रोटी । जिन्हें खाने से पेट में गड़गड़ाहट तथा पाखाने में
के साथ छींटे पड़ें, उनमें वायु तत्त्व है जैसे मटर, चना, खंसारी, अ
इत्यादि । अधिक पेशाब लाने वाले आहार तत्त्वों में जल है जैसे सभी प्र
के फल एवं हरी सब्जियाँ तथा उनके रस, सिंघाड़ा इत्यादि पानी के फ
शरीर में जलन तथा प्रदाह उत्पन्न करने वाले आहारों में अग्नि तत्त्व
जैसे मिर्च, मसाले, नमक इत्यादि । जिन खाद्य-पदार्थों के खाने से पेट
भर जाये लेकिन उससे कोई सत्त्व न मिले, ऐसे आहारों में आकाश त
की प्रचुरता होती है, जैसे सिंघाड़ा का आटा इत्यादि ।

आयुर्वेद में आहारों को सुसंस्कारित करने की बात आई है। सुसंस्कारित
करने से आहारों के गुण-धर्म अर्थात् प्रकृति ही बदल जाती है । जैसे चाँवल
पुराना होने पर सुपाच्य, पथ्य एवं श्रेष्ठ हो जाता है। जल को ताम्र पा
में 24 घंटे रख कर पीने से अमृत-तुल्य हो जाता है, जबकि रखा खाद्य
पदार्थ विषाक्त हो जाता है । उसी प्रकार दही शोथ पैदा करता है, लेकि
उसी की बनी हुई छाछ सूजन को कम करती है । दाल की प्रकृति वा
कारक एवं भारी है लेकिन तेल मिला कर बनाने तथा छौंक लगाने से ह
हल्की हो जाती है । आम का रस भी भारी माना जाता है लेकिन उस
घी; सोंठ, जीरा इत्यादि मिला कर खाने से हल्का हो जाता है । देश, वा
मण्डल तथा भूमि का प्रभाव भी आहार पर होता है । जैसे देहरादून के
बासमती चाँवल, पंजाब का देशी गेहूँ, गुजरात की ज्वार उत्तम किस्म के
माने जाते हैं, जबकि उसी किस्म के अनाज बीजों को दूसरी जगह उगाने
के बावजूद भी वे निम्न कोटि के होते हैं ।

आहारों के कार्य करने की शक्ति या प्रभावी क्षमता "वीर्य" है
वीर्य दो प्रकार के हैं-शीतल तथा उष्ण । मधुर रस का वीर्य शीतल त
अन्य रसों का गरम होता है । अम्ल रसों का बाह्य प्रभाव ठण्डा व

आन्तरिक प्रभाव गरम होता है। भोजन पचने की अन्तिम परिणति विपाक कहलाता है । जैसे किसी खाद्य-पदार्थ से पेट भारी हो गया या गैस पैदा हो गई अथवा अन्य लक्षण परिलक्षित हुआ, यह विपाक कहलाता है । खाद्य-पदार्थों की विभिन्न किस्मों अथवा एक ही खाद्य पदार्थ की विविध किस्मों-जैसे चाँवल, गेहूँ अथवा अन्य अनाजों की सैकड़ों प्रजातियाँ होती हैं। पृथक-पृथक प्रजातियों का रस, वीर्य, विपाक तथा प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है। शुष्क भूमि जिसमें आग्नेय तत्त्व की प्रधानता होती है–में उत्पन्न अनाज रुक्ष, शीघ्र पाच्य तथा कफहर होता है । पानी वाली भूमि में उत्पन्न आहार बलकारक, पित्तशामक तथा कफकारक होता है । दिन भर घूमने वाले पशुओं का रात्रि का दूध पचने में हल्का होता है, जबकि रात भर बँधी रहने के कारण प्रातःकाल का दूध भारी होता है । भैंस का दूध गाय के दूध से ठण्डा होता है क्योंकि वह पानी में बैठी रहती है और उसे ज्यादा पसन्द करती है ।

हमारा भोजन ऋतु के अनुसार हितकारी, परिमित तथा समय पर होना चाहिए । भोजन करने की तुलना यज्ञ से की गई है । जिस प्रकार यज्ञ में हवन सामग्री, समिधा आदि की शुद्धता पर ध्यान दिया जाता है, उसी प्रकार शरीर रूपी यज्ञवेदी की अन्तराग्नि (जठराग्नि) में पवित्र खाद्य पदार्थों का ही हवन करना चाहिए। जिस प्रकार बाह्य अग्नि घी एवं हवन सामग्री अधिक डालने से बुझ जाती है तथा थोड़ा-थोड़ा डालने से प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार जठराग्नि को प्रज्वलित रखने के लिए श्रेष्ठ आहार घी, दूध का थोड़ी थोड़ी मात्रा में बराबर सेवन करें। दोनों प्रकार के यज्ञ में मात्रा तथा काल का ध्यान रखना चाहिए। शरीर, मन एवं आत्मा को पवित्र रख कर अन्तराग्नि जठराग्नि होम को प्रज्वलित करने के अनुष्ठान के लिए बैठें। आर्य-संस्कृति में खाना परोसते तथा खिलाते समय भार्या भी माता सा पवित्र करुणा एवं प्रेमपूर्ण स्थान ग्रहण करे । अत्यधिक गर्म तथा अत्यधिक शीतल भोजन करना स्वास्थ्य-विरोधी है । भूख होने पर ही भोजन करें और परस्पर गुणधर्मविरोधी आहार नहीं लें ।

विरोधी आहार आयुर्वेद में निम्न 20 प्रकार के विरोधी आहार बताए गये हैं :—नमीयुक्त जैसे समुद्र किनारे रहने वालों को दही की छाछ में मीठा डालना तथा रूक्ष प्रान्त में तीक्ष्ण आहार या औषध लेना **देश विरोधी भोजन** है। शीत या शिशिर काल में ठण्डा तथा रूखा आहार खाना तथा ग्रीष्म काल में गर्म खाद्य लेना **काल विरोधी** है। मंदाग्नि की स्थिति में घृत, शर्करा व प्रोटीनबहुल तथा देर से पचने वाला भारी आहार खाना **अग्नि विरोधी** है। मधु तथा घृत को बराबर मात्रा में लेना **मात्रा विरोधी** है। शाकाहारी को बलपूर्वक माँस खिलाना **सात्म्य विरोधी** है। मन अनुकूल भोजन का नहीं होना **मन का विरोधी** है। बिना रस तथा आनन्द के भोजन करना **संपद्विरोधी** है। गरम चाय कॉफी के बाद कोल्ड ड्रिंक या आइस क्रीम आदि आहार लेना **पाक विरोधी** है। भूख न लगने पर भी खाना या पाखाना, पेशाब से मुक्त हुए बिना खाना **क्रम विरोधी** है। सुअर या गाय का माँस अर्थात् लोक निन्दित आहारों को खाना **परिहार विरोधी** है। भोजन के वैज्ञानिक नियमों के विरोध अर्थात् एकान्त में शान्त होकर नहीं खाना अथवा बिना चबाये ही भोजन करना **विधि विरोधी** है। खट्टी वस्तुओं के साथ दूध अथवा दूध के साथ नमक इत्यादि खाना **संयोग विरोधी** है। व्यायाम अथवा टहलने से थकान की स्थिति में तुरन्त एक साथ अधिक जल पीना **अवस्था विरोधी** है। नरम नाजुक पेट वालों को गरम तीक्ष्ण भोजन करना **कोष्ठ विरोधी** है। गर्म वीर्य वाले आहार (माँस मछली आदि) के साथ शीत वीर्य वाले (दूध इत्यादि) खाना **वीर्य विरोधी** है। ताम्र या पीतल के पात्र में रक्खे खट्टे खाद्य पदार्थ, दही, छाछ, टमाटर, नींबू वाले आहार खाना **संस्कार विरोधी** है। वात प्रकृति वाले के लिए वायु पैदा करने वाले आहार उड़द, चना आदि दालें खाना **वात विरोधी** है। अम्ल-पित्त वाले को अम्ल-पित्तोत्तेजक आहार खट्टी, बासी वस्तुएें खाना **पित्त विरोधी** है। कफ प्रकृति वाले के रोगी को कफकारक परिशोधित आहार **कफ विरोधी** है। तथा विभिन्न रोगों में रोग विशेष पैदा करने वाले आहार जैसे मधुमेही रोगी को चीनी तथा चीनी की बनी वस्तुएें गठिया वाले रोगी को मांस व दाल खाना **उपचार विरोधी आहार** कहलाते हैं।

आयुर्वेद में मुख्यतः आहार को दो भागों में बाँटा गया है-(1) दूध, पानी, रस तथा सूप इत्यादि द्रव आहार तथा (2) चांवल, गेहूं, दाल, फल इत्यादि ठोस आहार फिर इन सभी को बारह भागों में विभाजित किया गया है। (1) शुक धान्य वर्ग। शुक कीड़े की संरचना वाले आहार गेहूं, चना, चांवल, बाजरा, मक्का इत्यादि (2) शमी वर्ग में सभी प्रकार के द्विदल अनाज (3) माँस वर्ग (4) शाक वर्ग (5) फल वर्ग (6) हरित वर्ग में कच्चा आहार (7) सभी प्रकार के शराब मद्य वर्ग में (8) जल वर्ग में जल से प्राप्त आहार (9) गाय के दूध से बने आहार गोरस वर्ग में (10) इक्षु वर्ग में गन्ना, शहद आदि शर्करा वाले आहार (11) कृतान्न वर्ग में मडुवा, साँव, तगुनी इत्यादि हीन अनाज (12) उपयोगी।

कुछ आयुर्वेद विद्वानों ने खाने के तरीकों के आधार पर भी आहार को चार भागों में वर्गीकृत किया है। रोटी, फल आदि चबा कर खाये जाने वाले आहार **चर्व्य**, चटनी शहद आदि चाट कर खाये जाने वाले आहार लेह्य, दूध, रस आदि पीकर खाये जाने वाले आहार **पेय**, गन्ने तथा माँ के स्तन को चूस कर खाये जाने वाले आहार **चोष्य** कहलाते हैं। इस प्रकार से हम देखते हैं कि आयुर्वेद में आहार के सम्बन्ध में विस्तृत चिन्तन किया गया है।

आहार संबंधी अवैज्ञानिक भ्रांतियाँ :-(1) आम तौर पर एक भ्रांति अपक्व आहार के सम्बन्ध में है कि अपक्व कच्चा जैव आहार में अनेक प्रकार के पाचक रस एवं एन्जाइम होने से वे शीघ्र पच जाते हैं इसलिए गैस पैदा करने का सवाल ही नहीं उठता है। प्रारम्भ में ऐसा महसूस अवश्य होता है क्योंकि बिना अच्छी तरह चबाये खाने से तथा हमारे पेट की प्रयोगशाला को कच्चे आहार को पचाने लिए दूसरे प्रकार की व्यवस्था करनी पड़ती है। 2-3 दिन प्रयोगशाला को व्यवस्थित करने में लग जाता है इसलिए प्रारम्भ में दस्त तथा गैस की शिकायत हो जाती है। (2) कुछ लोग समझते हैं कि प्रातः काल खाली पेट पानी नहीं पीना चाहिए। किन्तु सच यह कि पानी पीने का श्रेष्ठ समय प्रातःकाल ही है। धीरे-धीरे बैठ कर पानी पीएं। (3) यह भी एक भ्रान्ति है कि जाड़े की ऋतु में अमरूद खाँसी जुकाम पैदा करता है। (4) शाम से या रात्रि को फल, खीरा, ककड़ी इत्यादि कच्ची सब्जियाँ

खाने से खाँसी होती है (5) खरबूज-तरबूज के साथ शक्कर खानी चाहिए (6) दूध के साथ शक्कर मिला कर पीना चाहिए, नहीं तो कृमि होते हैं (7) तरबूज, केला, आलू, काशीफल बादी करता है (8) नींबू तथा शहद खून को जलाता है, वजन कम करता है। (9) दूध में गुड़ डालने से शराब बन जाती है। (10) सब्जियाँ निकृष्टतम आहार हैं तथा पेट के लिए हानिकारक हैं (11) लाल मिर्ची नहीं खाने से चीनी रोग (मधुमेह) होता है। (12) खाली पेट फल नहीं खाना चाहिए (13) बेर खाने से खाँसी होती है। (14) नींबू तथा संतरा खाने से जुकाम तथा खाँसी होती है। किन्तु प्राकृतिक आहार के विशेषज्ञों ने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि उपरोक्त बात भ्रान्तियाँ हैं और हमें समाज में फैली इन भ्रान्तियों का निराकरण करने का प्रयत्न करना चाहिए।

23 | स्वास्थ्यदायक वैज्ञानिक आहार-मेल

हमारा शरीर एक जैव-रासायनिक संरचना है। खाए जाने वाले आहारों की संरचना भी जैव-रासायनिक है। आहार का पाचन, अवशोषण तथा सात्मीकरण प्रक्रिया भी जैव-रासायनिक है। खाए जाने वाले आहार का मेल सही है तो उसकी जैव-रासायनिक प्रतिक्रिया भी सही होती है और हम स्वस्थ रहते हैं। यदि आहार का मेल वैज्ञानिक तरीके से नहीं है तो वे हमारे शरीर के अन्दर अनेक प्रकार कीं जैव भौतिक रासायनिक प्रतिक्रिया करके घातक विषों का निर्माण करते हैं और तब शरीर विषाक्रान्त होकर रोगी हो जाता है। आहार के मेल वर्गीकरण पर अनेक आयुर्विज्ञानियों ने शोध कार्य किए हैं। उन सभी शोध कार्यों को यहाँ देना स्थानाभाव के कारण असंभव है, परन्तु उन सभी शोध कार्यों का निष्कर्ष मात्र इतना है कि "प्रत्येक आहार अकेले लेना चाहिए, अर्थात् एक समय एक प्रकार का आहार ग्रहण करना ही वैज्ञानिक है।" इसी आधार पर "मोनोडायट" का सिद्धान्त खड़ा हुआ। "मोनोडायट" कार्यक्रम वैज्ञानिक आहार-व्यवस्था है। रोग-निवारण, स्वास्थ्य संरक्षण एवं स्वास्थ्य-संवर्द्धन के क्षेत्र में यह विशिष्ट महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

प्राणी जगत में मानव के अतिरिक्त सभी प्रायः मोनोडायट ही पसन्द करते हैं। यही कारण है कि वे प्राणी कम बीमार पड़ते हैं, जैसे गाय, भैंस, घोड़ा आदि जानवर घास पसन्द करते हैं, ऊँट, हाथी, बकरी आदि पत्ते खाते हैं। बन्दर फल, तो पक्षी विभिन्न बीज खाकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यही इनका मुख्य भोजन है। इनके नहीं मिलने पर ये दूसरे प्रकार का भोजन ग्रहण करते हैं। ये सभी शाकाहारी प्राणी हैं तथा कच्चा खाना ही पसन्द करते हैं।

विविध प्रकार के आहार एक साथ मिला कर खाने से उनका मूल भौतिक स्वरूप बिगड़ जाता है। वे हमारे शरीर में निम्न प्रकार से परिवर्त्तन कर घातक प्रभाव डालते हैं:—

भौतिक परिवर्त्तन :—अनेक प्रकार के आहार एक साथ मिलने से उनका भौतिक स्वरूप ही विकृत हो जाता है। विविध आहारों के मिलने से एक-दूसरे के सक्रिय संघटक आपस में मिल कर प्रेसिपटेट पैदा करते हैं। ये प्रेसिपटेट शरीर पर विषाक्त प्रभाव डालते हैं। उसके लिए एक प्रयोग करें—पालक या गाजर के रस में नींबू, आँवला या टमाटर का रस मिला कर दस मिनट के लिए छोड़ दें। भौतिक परिवर्त्तन से जटिल कार्बनिक यौगिक प्रेसिपटेट पैदा होता है, जो नीचे बैठ जाता है और ऊपर तरल रह जाता है।

इनके संयोग से बनने वाले पदार्थ न तो गाजर या पालक के स्वाद के लगते हैं और न टमाटर, आँवले या नीबू के स्वाद के। इनसे तीसरा पदार्थ ही बन जाता है जो स्वास्थ्य के लिए उपयोगी नहीं रह जाता है।

रासायनिक परिवर्तन :—एक से अधिक प्रकार के आहार एक साथ खाने से उनके रसायन परस्पर प्रतिक्रिया करके ऐसे यौगिक बनाते हैं जिनका प्रयोग शरीर में नहीं हो पाता है। वे बिना उपयोग के ही मल-मूत्र द्वारा बाहर निकल जाते हैं तथा कुछ योगज लवण शरीर में अवचूषित होकर ऊतकों को क्षतिग्रस्त करते हैं। रक्त, लिम्फ तथा स्नायु-संचार के घटकों में विषम परिवर्तन कर उनके संचार में बाधा उत्पन्न करते हैं।

भैषजीय परिवर्त्तन :—प्रत्येक आहार में भैषजीय अर्थात् औषधीय गुण होता है । बहुत से आहार एक साथ मिला कर खाने से एक-दूसरे आहार के भैषजीय तत्त्व-गुण आपस में जैव-रासायनिक प्रतिक्रिया करके एक दूसरे के प्रभाव को निष्क्रिय कर देते हैं अथवा अन्य दुष्प्रभाव डालते हैं।

तापीय परिवर्त्तन :—हमारे आहार में थर्मोलायबुल अर्थात् ताप से खंडित होने वाले तत्त्व तथा थर्मोस्टेबुल अर्थात् ताप से खंडित नहीं होने वाले आहार-तत्त्व होते हैं । आहार को गर्म करने, उबालने, तलने-भूनने से उनमें तापीय परिवर्त्तन होता है, जैसे हमारे आहार का कैल्सियम, मैग्नेशियम कार्बनोफास्फेट एक महत्त्वपूर्ण पोषक तत्त्व है । गर्म होने से ये लवण विखंडित होकर योगज लवण कैल्सियम फॉस्फेट, मैग्नेशियम फॉस्फेट, कैल्सियम कार्बोनेट अघुलनशील तत्त्व बनाते हैं। ये योगज पूर्णतः अघुलनशील होने से झिल्लिका को पार नहीं कर पाते फलतः वे रक्तधारा में प्रविष्ट नहीं हो पाते हैं और इनका महत्त्व समाप्त हो जाता है। यदि ये रक्तधारा में प्रवेश कर भी जाते हैं तो फिर ये विभिन्न संधियों में जमा होकर वहाँ के ऊतकों, स्नायुबंधों आदि संरचनाओं को क्षतिग्रस्त कर गठिया संधिवात आदि रोग पैदा करते हैं । कभी-कभी रक्त संचार द्वारा यकृत, पित्ताशय एवं गुर्दे में पहुँच कर पथरी का निर्माण करते हैं । उसी प्रकार विभिन्न पत्तों एवं बीजों वाले आहारों में आक्जेलिक एवं अन्य एसिड होते हैं जिन्हें गर्म करने से कैल्सियम आक्जेलेट अघुलनशील योगज लवण बनते हैं । ये भी उपर्युक्त प्रकार से हानिकारक हैं । इसलिए प्रत्येक आहार को अपक्व स्थिति में कच्चा ही खाना चाहिए। पकाने पर अन्य प्रतिक्रियाएँ भी होती हैं। एन्जाइम-सक्रियता से अनेक विटामिन समाप्त हो जाते हैं ।

प्रत्येक प्रकार के आहार में अनेक प्रकार के जैव-रसायन होते हैं। इन जैव-रसायनों में सैकड़ों प्रकार के जैव एन्जाइम, कार्बोज, श्वेतसार, प्रोटीनयुक्त एमिनो एसिड, वसा, विटामिन्स, हार्मोन्स, लवण, एल्कोलाइड्स, ग्लाइकोसाइड्स इत्यादि होते हैं। ये सभी परिवर्त्तनशील हैं तथा मिलने पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । किसी आहार में कोई तत्त्व प्रचुरता से होता है तो किसी में किसी तत्त्व की न्यूनता होती है । एक साथ अनेक

प्रकार के आहार लेने से इनमें स्थित अनेक तत्त्व निष्क्रिय होकर अनुपयोगी हो जाते हैं तथा कुछ प्रतिक्रिया करके कार्बनिक यौगिकों के रूप में अवक्षेपित हो जाते हैं । फलतः अच्छा से अच्छा आहार एक साथ मिला कर खाने से भी हम अपेक्षित लाभ नहीं उठा पाते हैं क्योंकि इन आहारों के विशिष्ट रोग-उन्मूलक सक्रिय तत्त्व आपस में प्रतिक्रिया करके गुणविहीत हो जाते हैं ।

आहारों में स्थित एन्जाइम न्यून मात्रा में होते हुए भी अति सक्रिय होते हैं । उनमें थोड़ा सा भी परिवर्त्तन होने से उनके गुण धर्म नष्ट हो जाते हैं । कुछ आहारों में एक दूसरे एन्जाइम के सक्रिय औषधीय प्रभाव को उदासीन एवं निष्प्रभावी करने वाले विपरीत गुण-धर्मो के एन्जाइम भी होते हैं । जैसे नीम के कोमल पत्तों को आँवले के साथ ले लिया जाय तो उनमें विपरीत गुण-धर्मों के एन्जाइम होने से उनकी औषधीय क्षमता निष्प्रभावी हो जाती है । नीम में "ऑक्सीडेस एन्जाइम" पूर्ण सक्रिय होने के कारण ही उसमें रोगाणुनाशक गुण है । इसके विपरीत आँवले में "एण्टी आँक्सीडेस एन्जाइम" की सक्रियता के कारण विटामिन सी. तथा अन्य यौगिक व रोगनाशक गुण सक्रिय रहते हैं । इन्हें मिलाते ही इनका प्रभाव समाप्त हो जाता है । उसी प्रकार बेल में "टायरोसिनेस एन्जाइम" की सक्रियता होती है तो हल्दी में ठीक इसके विपरीत एन्जाइम-सक्रियता होती है । इन्हें साथ साथ प्रयुक्त करने से इनके गुणों का लाभ तो मिलने से रहा । हो सकता है कि आपका शरीर अन्य एलर्जिक विषाक्त प्रभाव से भी ग्रस्त हो जाय । अतः ध्यान रखें कि एक से अधिक प्रकार के आहार एक समय लेने से, विपरीतधर्मी एन्जाइम-सक्रियता, जैव भौतिक रासायनिक भैषज तथा तापीय परिवर्त्तन से अनेक विषैले प्राणघाती योगज लवण बनने लगें तथा शरीर के रसायनों में अन्य जैविक रासायनिक प्रतिक्रियाओं से शरीर कब किस प्रकार के विषैले प्रभाव एवं रोग से ग्रस्त हो जाय, कहना असंभव है । अतः एक समय एक प्रकार का आहार लेकर कच्चा खाना ही पूर्ण रूप से वैज्ञानिक एवं निरापद प्रक्रिया है ।

उपर्युक्त वैज्ञानिक खोजों के आधार पर ही संभवतः प्राचीन आयुर्वेद विज्ञानियों ने परस्परविरोधी आहारों का वर्णन किया है। उन नियमों के अनुसार शहद के साथ मूली तथा गुड़; केले के साथ तेल; दूध के साथ मांस, मछली, तेल, कांजी, सिरका, नींबू, गुड़, जामुन, नमक, मदिरा, शाक सब्जी; शहद तथा घी बराबर मात्रा में; दही के साथ गरम आहार तथा जामुन; शर्बत तथा बाद में गरम पेय; गरम पेय के बाद ठण्डी चीजें; मूली या खरबूजे के साथ शहद, तिल; माँस और आलू, आलू; के साथ टमाटर; रोटी के साथ मक्खन और टोस्ट के साथ मक्खन नहीं लेना चाहिए।

एक समय एक प्रकार का आहार लेना ही आदर्श एवं सर्वोत्तम आहार है। एक समय एक प्रकार का आहार लेने से कम से कम मात्रा में टॉक्सिक विष बनता है। फलतः विष-निष्कासक एवं वायटल अंगों पर कम भार पड़ने से उनकी सक्रियता अधिक दिनों तक बनी रहती है फलतः व्यक्ति स्वस्थ एवं दीर्घजीवी होता है। किस्म-किस्म के आहार एक साथ लेने से पाचन प्रक्रिया में विशेष अवरोध पड़ता है। जैसे कार्बोहाइड्रेट तथा श्वेतसार (स्टार्च) के पाचन के लिए क्षारीय माध्यम की आवश्यकता होती है। कार्बोज तथा स्टार्च के साथ हम खट्टे आहार आँवला, नींबू, संतरा, टमाटर, इमली, अचार, दही, छाछ, करोंदा आदि खाने से क्षारीय एन्जाइम तथा पाचक रसों की सक्रियता खत्म हो जाती है। जैसे रोटी के साथ नींबू या उपर्युक्त कोई एक अन्य खट्टा फल ले लिया तो मुँह से स्टार्च को पचाने वाला एन्जाइम टायलिन निकलेगा तो सही, लेकिन रोटी को पचाने की उसकी क्षमता कमजोर होगी। टायलिन एन्जाइम की सक्रियता अम्लीय माध्यम के कारण पूर्ण मंद हो जाती है।

कार्बोहाइड्रेट का मुख्य पाचन मुँह के प्टाइलिन एन्जाइम तथा विभिन्न क्षुद्रांत्रीय पाचन रसों तथा एन्जाइमों द्वारा होता है। कार्बोहाइड्रेट तथा स्टार्चयुक्त आहार लेने से क्षारधर्मी एन्जाइम तथा पाचक रस काफी मात्रा में तेजी से निकलते हैं, लेकिन कार्बोहाइड्रेट के साथ प्रोटीन वाले आहार लेने से क्षारधर्मी एन्जाइम रसों की सक्रियता तथा स्राव में बाधा उत्पन्न होती है फलतः कार्बोज का पाचन अच्छी तरह नहीं होता है। उसी प्रकार

प्रोटीन कार्बोज के साथ मिले होने के कारण प्रोटीन के पचाने वाले अम्ल-धर्मी पाचक रसों एवं एन्जाइम-सक्रियता एवं स्राव में बाधा उत्पन्न होती है। फलतः प्रोटीन का पाचन भी अच्छी तरह नहीं हो पाता है । इनका पाचन अच्छी तरह नहीं होने से वह आँतों में पड़े-पड़े सड़ते रहते हैं तथा अनेक प्रकार के पैथोजेनिक बैक्टिरिया टॉक्सिक आर्गेनिज्म पैदा करते हैं । कुछ पैथोजेनिक बैक्टिरिया गलत मेल के कारण अपचित प्रोटीन (एमिनों एसिड) को टाक्सिक बायोजेविक एमिन्स में परिवर्त्तित कर देते हैं। ट्रेप्टो-फिन ट्रिप्टोमाइन, हिस्टीडाइन, हिस्टोमाइन, टाइरोसाइन टाइरोमाइन में परिवर्त्तित होकर रक्त संचार द्वारा यकृत तथा यकृत से सारे शरीर में जाकर प्रत्येक संस्थान को रुग्ण बनाते हैं। प्रोटीन का पाचन अम्लीय माध्यम में होता है इसलिए इनका मुख्य पाचन आमाशय में होता है । अम्लीय फलों के साथ प्रोटीन का मेल चलने योग्य है जैसे दाल के अंकुरण के साथ नींबू तथा दूध के साथ संतरा खाया जा सकता है।

वसा का मुख्य पाचन ड्योडिनम आँत में पित्त तथा क्लोम ग्रंथि के स्टीएप्सीन एन्जाइम के सहयोग से होता है । वसा को कार्बोज, स्टार्च या प्रोटीन के साथ खाने से इन तीनों का पाचन अच्छी तरह नहीं हो पाता है । कार्बोज तथा प्रोटीन का मुख्य पाचन मुँह तथा आमाशय में होता है। वसा की पर्त्त इन पर होने से जब तक वसा का पाचन न हो जाय तब तक कार्बोज तथा प्रोटीन का पाचन अच्छी तरह नहीं हो पाता है। कार्बोज तथा प्रोटीन के साथ वसा खाने से कार्बोज तथा प्रोटीन को पचाने वाले पाचक रस तथा एन्जाइम की सक्रियता तथा स्राव भी कम हो जाता है अतः वसा वाले खाद्य पदार्थों को भी अलग से खाया जाए। कार्बोज तथा प्रोटीन के साथ न्यूनतम मात्रा में वसा ली जा सकती है लेकिन वसा में कार्बोज तथा प्रोटीन को तल भून कर खाना अवैज्ञानिक तथा रोगोत्पादक है।

प्रोटीन, काष्ठज मेवे, दालें, सोयाबीन, मूँगफली, तिलादि तिलहन बीज, अंकुरित मूँग, मसूर, चना इत्यादि प्रोटीनबहुल आहार को सभी प्रकार की हरी तथा हर पत्ते वाली सब्जियों के साथ लिया जा सकता है।

मूंग, मसूर, चना आदि की रोटियाँ बना कर सब्जी के साथ खायी जा सकती हैं। यह उत्तम मेल है।

श्वेतसार तथा कार्बोज जैसे रोटी, चाँवल, अंकुरित स्टार्चयुक्त अनाज (cereals) गेहूँ, मक्का, गाजर, शकरकन्द, आलू आदि कन्द मूल, फलियाँ गुड़ तथा मधु इत्यादि कार्बोज आहार के साथ सभी प्रकार की ताजी हरी तथा हरी पत्तों वाली सब्जियों को खाया जा सकता है। यह उत्तम मेल है।

प्रोटीन तथा खट्टे फलों जैसे नींबू, अमरूद, अनन्नास, अंगूर अनार, बेर, टमाटर, आँवला, शहतूत आदि का मेल मध्यम मेल है। कार्बोज तथा श्वेतसार संयुक्त खाद्य पदार्थों का मीठे फलों जैसे खजूर, चीकू, अंजीर, मुनक्का केला, पपीता, शरीफा, आम आदि के साथ मध्यम मेल (fair Combination) है। विभिन्न प्रकार की हरी तथा पत्ते वाली सब्जियों का खट्टे फलों के साथ मध्यम मेल है। सब्जियों का अर्द्ध खट्टे फलों (सेव, खूबानी, भिंडी, किशमिश, मुनक्का, अंगूर आदि) के साथ मध्यम मेल तथा मीठे फलों के साथ निकृष्ट मेल है। खट्टे तथा अर्द्ध खट्टे फलों का मेल मध्यम मेल है। अर्द्ध खट्टे फल तथा मीठे फलों का मेल मध्यम मेल है। खट्टे तथा मीठे फलों का मेल कनिष्ठ मेल है। मीठे फलों का अन्य मीठे फलों के साथ, खट्टे फलों का अन्य खट्टे फलों के साथ तथा अर्द्ध खट्टे फलों का अन्य अर्द्ध खट्टे फलों के साथ उत्तम मेल है।

दो प्रकार के परिशुद्ध कन्सेन्ट्रेट स्टार्च दो प्रकार के परिशुद्ध कन्सेन्ट्रेट प्रोटीन तथा दो प्रकार की परिशुद्ध संतृप्त वसा का मेल निकृष्ट मेल है। जैसे मैदा तथा चीनी, मछली तथा माँस, पनीर तथा अण्डा, मछली तथा दाल, घी तथा डालडा का मेल निकृष्ट मेल है। कन्सन्ट्रेट स्टार्च तथा कन्संट्रेट प्रोटीन, कंसंट्रेट कार्बोज का कंसंट्रेट प्रोटीन, कंसंट्रेट प्रोटीन तथा कंसंट्रेट वसा, कंसंट्रेट कार्बोहाइड्रेट तथा कंसंट्रेट संतृप्त वसा का मेल निकृष्ट मेल है।

प्रश्न हो सकता है कि द्विदल अनाजों, अन्न कणों (Cereals) तेल बीजों तथा अन्य आहारों में प्रोटीन, कार्बोज तथा वसा सम्मिलित रूप में होते हैं

फिर उनका पाचन ठीक प्रकार से कैसे होता है जबकि एक समय एक ही प्रकार का आहार खाने की सिफारिश की जाती है ? इस सम्बंध में इतना ही कहना उपयुक्त होगा कि प्रकृति किसी भी आहार में पोषक तत्त्वों का अनुपात सम्यक् मात्रा में भर देती है। प्रमुख आहार तत्त्वों के साथ ऐसे एन्जाइम, पाचक रस तथा अन्य तत्त्व होते हैं जो उन आहारों में उपस्थित खाद्य तत्त्वों को पचाने में सहभागी बनते हैं। आहारों के सम्यक् मेल में आदमी प्रकृति से होड़ नहीं कर सकता है । हम कितना भी बुद्धिमानी से विभिन्न आहारों का मेल तैयार करें, वह उपयुक्त एवं सम्यक् नहीं हो सकता, जितना कि प्रकृति एक प्रकार के आहार में सभी प्रकार के पोषक तत्त्वों का समतोल मेल भर देती है। प्रकृति-निर्मित किसी एक प्रकार का आहार लेने से उसमें स्थित प्रोटीन, कार्बोज इत्यादि को पचाने के लिए शरीर में एन्जाइम तथा पाचक रसों को छोड़ने वाली ग्रंथियाँ आहार में स्थित खाद्य तत्त्वों के अनुपात में ही रस एवं एन्जाइम छोड़ती हैं। एक साथ प्रोटीन तथा कार्बोज या अन्य आहार मिला कर लेने से पाचक ग्रंथियों को कन्फ्यूजन (भ्रान्ति) हो जाती है कि किस प्रकार का पाचन रस निकाला जाय । एक समय एक प्रकार का अपक्व आहार लेने से भ्रान्ति नहीं होती है तथा किसी प्रकार की स्थास्थ्य-घातक जैव-भौतिक रासायनिक भँपजीय प्रतिक्रिया भी नहीं होती । इससे शरीर में विजातीय टॉक्सिन पदार्थों का संचय भी नहीं होता है । रक्त, लिम्फ तथा स्नायविक संचार-व्यवस्था सुव्यवस्थित ढंग से कार्य करती है। विष-निष्कासक अंग त्वचा, गुर्दे, फंफड़े तथा आँतों व वायटल अंग यकृत, हृदय, मस्तिष्क इत्यादि सभी अंगों की कार्यक्षमता बढ़ती है । रोगी स्वस्थ होता है तथा स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का संरक्षण तथा संवर्द्धन होता है।

आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में किए गए आहार मेल सम्बन्धी शोध-कार्यों का समादर करते हुए अपने आहार का चुनाव करते समय उपर्युक्त मेल-वर्गीकरण का अवश्य ध्यान रखें । हमारे आहार में आहार सम्बन्धी सही मेल तथा "मोनोडाइट" सिद्धान्त का जितना स्थान होगा, उतना ही स्वास्थ्य का असीम आनन्द एवं सुखमय साम्राज्य हमारा होगा।

24 | कार्बनिक आहार : वैज्ञानिक प्रयोग

अब तक हमने कार्बनिक आहार के विभिन्न पक्षों की जानकारी प्राप्त की तथा इसे विभिन्न आयामों से देखा। कार्बनिक आहार अर्थात् जीवन या जैव-आहार (Vitalyzing food), सभी प्राणियों का वैज्ञानिक आहार है। प्रकृति की उन्मुक्त प्रयोगशाला में बने आहार को बिना तले-भूने एवं उबाले सीधे ही जो आहार उपयोग में लाया जाता है, वह जैव कार्बनिक आहार है। कार्बनिक-जैव आहार कार्बनिक जैव-खाद से ही उगाया जाता है। कार्बनिक आहार को उगाने से लेकर खाने तक किसी प्रकार के संश्लिष्ट रसायन एवं खाद, कीटनाशी दवाओं तथा अग्नि आदि से उसकी भौतिक, रासायनिक एवं भैषजीय संरचना को क्लिष्ट एवं विकृत नहीं किया जाता। इसलिए कार्बनिक जैव-आहार को प्रकृति के रसोईघर में बना हुआ तथा बिना अग्नि का बना भोजन कहा जाता है। जैव-कार्बनिक आहार में सभी भौतिक, रासायनिक, एवं भैषजीय संरचना, एन्जाइम, कार्बोज, प्रोटीन, वसा, खनिज, विटामिन तथा अन्य ज्ञात-अज्ञात उपयोगी आवश्यक पोषक खाद्य तत्त्व जैव तथा नैसर्गिक रूप में होते हैं।

हम जो भी आहार लेते हैं वह सभी कार्बनिक रूप में होता है, लेकिन यहाँ पर कार्बनिक आहार का मूल तात्पर्य उपर्युक्त जैव-कार्बनिक आहार से है। हमारा शरीर जैव-कार्बनिक रसायनों का श्रेष्ठ यौगिक है अतः इसके स्वस्थ निर्माण एवं विकास के लिए सजातीय उपर्युक्त जैव-कार्बनिक रसायन ही श्रेष्ठ तथा उपयोगी है। कार्बनिक रसायन का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। सन् 1745 ई. में सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ लैवोजिएर ने यह सिद्ध किया कि कार्बनिक यौगिकों में प्रायः कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन तत्त्व पाए जाते हैं। स्वीडिश वैज्ञानिक डा. शीले ने 1769 से 1786 के मध्य नींबू से साइट्रिक एसिड तथा पेशाब से यूरिक एसिड बनाया। उस समय सभी प्रकार के कार्बनिक यौगिक जीव जन्तुओं तथा पौधों से ही प्राप्त होते थे। इसीलिए सन् 1815 ई. में कार्बनिक रसायन के क्षेत्र में डा. बर्जीलियम ने जीवनी-शक्ति सिद्धान्त (vital force theory) का प्रतिपादन किया। इस

सिद्धान्त के अनुसार सभी कार्बनिक पदार्थों के निर्माण के लिए एक विशेष प्रकार की अद्भुत दिव्य जीवनी शक्ति की आवश्यकता होती है और यह शक्ति जैव-पदार्थों में ही होती है । इस शक्ति द्वारा ही जीवन के सभी कार्य सम्पादित होते हैं तथा ये विभिन्न जैव रस-रसायनों, हार्मोन एन्जाइम आदि का निर्माण करते हैं । इस शक्ति द्वारा ही जीवन स्वस्थ एवं नैसर्गिक सौन्दर्य-युक्त होता है । यह शक्ति प्रयोगशाला में किसी भी कीमत पर पैदा नहीं की जा सकती । परन्तु 19 वीं शताब्दी के 1828 ई. में जर्मन रसायनज्ञ वोलर अमोनिया सायनेट को गर्म करके यूरिया, 1845 ई. में कोल्वे कार्बन तथा हाइड्रोजन से एसिटिक एसिड तथा वर्थेलाट 1856 में मिथेन बना चुके थे । अब तक लाखों की संख्या में कार्बनिक रसायन ज्ञात हो चुके हैं तथा बनाये जा रहे हैं । इस प्रकार रसायनज्ञों की भाषा में जीवनी शक्ति सिद्धान्त खंडित हो चुका है लेकिन आहार-विशेषज्ञ होने के नाते मैं बल देकर कहना चाहता हूँ कि आहार के क्षेत्र में वह सिद्धान्त शाश्वत है क्योंकि प्राणियों के आहार के रूप में जैव-कार्बनिक रसायन जितना उपयोगी एवं सात्मीकृत होता है उतना प्रयोगशाला में निर्मित औषध या किसी रूप में संश्लेपित कार्बनिक रसायन उपयोगी नहीं होता । साथ ही ये अपने दुष्प्रभाव से अनेक प्रकार की विकृतियाँ एवं असाध्य रोग पैदा करते हैं । कार्बनिक रसायन का विद्यार्थी होने के नाते मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि विटामिन, औषधियाँ तथा अन्य कथित टॉनिक तथा एण्टी बायोटिक्स में प्रयुक्त संश्लेपित कार्बनिक रसायन जीवन को बेमौत मारता है। संश्लेषित कार्बनिक रसायन मर्त्य एवं विषाक्त रसायन हैं, ये जीवन के लिए कभी उपयोगी नहीं हो सकते हैं । यह एक कटु सत्य है । सभी औषधियाँ जहर हैं। स्वास्थ्य के लिए मृग मरीचिका हैं। प्रत्येक कसौटी पर कार्बनिक जैविक आहार खरा उतरता है ।

पर्यावरण की दृष्टि से :—विकास के नाम पर आज विभिन्न प्रकार के कल कारखाने पर्यावरण प्रदूषण की समस्या खड़ी कर रहे हैं । आहार पकाने के लिए प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के ईंधन-गैस, कोयले, लकड़ी इत्यादि के जलने से भी पर्यावरण प्रदूषित होता है । इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के कृत्रिम आहारों, रासायनिक खादों तथा कीटनाशी दवाओं के बेशुमार

उत्पादन, प्रयोग तथा खपत के कारण भयंकर रूप से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। इनसे कारगर ढंग से निपटने का एक ही रास्ता है—जनसाधारण को जैव-खेती द्वारा अधिक से अधिक उत्पादन बढ़ाने का प्रशिक्षण देना। जैव-खेती से उत्पादित आहारों को जैव-कार्बनिक आहार के रूप में उन्हें कच्चे ही खाने के लिए प्रोत्साहित करना। इस प्रकार के प्रयोग लेखक स्वयं एस. एम. लोढ़ा नेचुरोपैथी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पृथ्वीराज मार्ग अजमेर में कर रहा है। यह प्रयोग काफी उत्साहवर्द्धक एवं सफल रहा है। जैव-खेती एवं जैव-कार्बनिक आहार में रुचि रखने वाले अनेक लोगों ने इस प्रक्रिया को सहर्ष अपनाया है। आवश्यकता इस बात की है कि जैव-कार्बनिक खेती करने तथा जैव-कार्बनिक आहार का उपयोग करने के लिए एक विशाल जन स्वास्थ्य आन्दोलन चलाया जाय। इस आन्दोलन की सफलता पर ही राष्ट्रीय स्वास्थ्य की प्रगति निर्भर है। जैव-खेती तथा जैव-कार्बनिक आहार के प्रयोग को सार्वभौम एवं सार्वजनीन बनाने से राष्ट्रीय तथा विश्व पर्यावरण की दृष्टि से हम काफी समृद्ध हो सकेंगे।

आयुर्विज्ञान की दृष्टि से :—विश्व की अनेक विख्यात प्रयोगशालाओं ने अपने विविध प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया है कि कार्बनिक जैव खाद से उत्पादित आहार की रासायनिक संरचना में कोई परिवर्त्तन नहीं होता है। वे अपने मौलिक रूप में होते हैं। रासायनिक खाद तथा कीटनाशी औषधियों से उगाए गए पौधों की रासायनिक संरचना में विषम परिवर्त्तन होने से उनके मौलिक गुणों में काफी अन्तर आ जाता है। ऐसे आहारों के प्रयोग से कैंसर जैसे घातक रोग होने की प्रबल संभावना बढ़ जाती है। इस प्रकार के आहार शरीर के रासायनिक घटकों पर रोगोत्पादक प्रभाव डालते हैं। अतः स्वास्थ्य-सम्वर्द्धन, रोग-निवारण तथा स्वास्थ्य-संरक्षण की दृष्टि से कार्बनिक जैव-आहार ही हमारे शरीर के रसायनों के अनुकूल श्रेष्ठतम आहार हैं। हाल ही में सोवियत राष्ट्र के उक्राइनी आयुर्विज्ञानियों ने जैव अंकुरित अनाजों से एक विशेष प्रकार का आहार तैयार किया है। इस आहार का उपयोग विभिन्न रोगों की चिकित्सा में किया जायेगा। उक्राइनी आयुर्विज्ञानी अपने प्रयोगों के दौरान यह देख कर आश्चर्य-

चकित रह गये कि एक बीज के अंकुरण के समय इस नन्ही सी अद्भुत प्रयोगशाला के किसी खंड में एमीनो एसिड की सक्रियता काफी बढ़ रही है तो कहीं पर विभिन्न प्रकार के विटामिनों, एन्जाइमों, शर्कराओं का निर्माण हो रहा है । कहीं जटिल पोषक तत्त्वों का सरलीकरण हो रहा है । अर्थात् विभिन्न खंडों में विभिन्न प्रकार का जैव-रासायनिक संश्लेषण व निर्माण कार्य चल रहा है । अंकुरण के दौरान जैव भौतिक रासायनिक क्रियाओं का अद्भुत करिश्मा चलता है । इन अद्वितीय करिश्मों को देख कर दाँतों तले अंगुली दबाने को बाध्य होना पड़ता है । अंकुरण के दौरान प्रोटीनों का श्रेष्ठ प्रोटीनों में रूपान्तरण होता है । अकुरित अनाज का प्रोटीन माँसाहार से श्रेष्ठ माना जाता है । माँसाहार का प्रोटीन शरीर में यूरिक एसिड, तथा कोलेस्टरॉल बढ़ाता है जबकि अंकुरित अनाज इन्हें कम करते हैं ।

मीनेसोटा विश्वविद्यालय के डा. सी. डब्ल्यू. वैली अपनी शोधों से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि गेहूं के प्रारम्भिक अंकुरण काल में विटामिन सी 600 प्रतिशत तथा बहुमूल्य विटामिन ई. प्रचुरता से बढ़ता है । डॉ. बुरखोल्डर्स अपनी शोधों से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अंकुरित अनाज में नायसिन 500%, बायोटिन 50% पायरिडॉक्सिन 500% पेन्टोथेनिक 200% फॉलिक एसिड 600% थायमिन 10% रिबोफ्लेविन 100% तथा इनोसिटाल 100% बढ़ जाता है। डॉ. लेट्राइल केबस के प्रयोगों के अनुसार अंकुरित अनाजों तथा ताजी हरी सब्जियों में कैंसर-अवरोधी तत्त्व "लेट्राइल" प्रचुरता से पाया जाता है। हिप्पोक्रेट्स हेल्थ इन्स्टीट्यूट बोस्टन के संस्थापक निदेशक डॉ. एन. विग्मोर तथा पूर्व अनुसंधान निदेशक डॉ. विक्टोरस पी. कुल्वीन्सकॉस ने अंकुरित अनाजों पर वर्षों प्रयोग कर एक पुस्तक "न्यूट्रीशन एवोल्यूयेशन ऑफ स्प्राउट एण्ड ग्रासेस" लिखी है । इस नवीनतम शोध-पुस्तक के आधार पर अंकुरण के दौरान कुछ प्रमुख जीवन-दायक जैव तत्त्वों का सम्वर्द्धन किस प्रकार होता है, उन्हें निम्न तालिकाओं द्वारा दर्शाया गया है ।

एन्जाइम :—मूँगफली में अंकुरण के पूर्व तथा पश्चात् एन्जाइम सक्रियता

(Enzyme activity) का सम्वर्द्धन यू मोल्स ग्लाइकोमेट में निम्न प्रकार होता है :—

समय (दिन)	अंकुर पूँछ की लम्बाई (मि. मी.)	एन्जाइम सक्रियता आइसोसाइट्राइटेस	मैलेट सिन्थेटज
0	0	0	0
1	0	7.9	10.2
2	2	20.4	24.6
3	16	30.4	50.2
4	16	30 0	
5	35	42.3	69.2

विटामिन सी. :—100 ग्राम सोयाबीन में अंकुरण के बाद विटामिन सी में वृद्धि निम्नानुसार पाई गयी है :—

समय (घन्टे)	मि. ग्रा./100 ग्राम	घन्टा (समय)	मि. ग्रा./100 ग्राम
0	0	72	71.8
24	8.2	96	82.9
48	27.2	120	102.8

सूखे अनाज में विटामिन सी. तथा एन्जाइम का सर्वथा अभाव होता है लेकिन भीगने तथा अंकुरण के बाद इनमें तेजी से वृद्धि होती है।

आर. एन. ए. तथा डी. एन. ए. :—प्रति 100 ग्राम गेहूँ तथा जई के अंकुरण में आर. एन. ए. तथा डी. एन. ए. का सम्वर्द्धन माइक्रोग्राम-पायरी–फास्फेट में

गेहूँ	समय (दिन)	आर. एन. ए.	डी. एन. ए.
का	0	2.15	1.02
	2	2.76	1.22
अंकुरण	6	6.76	2.03
	10	7.17	4.85
जई	0	0.97	0.59

का	6	1.15	1.38
अंकुरण	10	3 53	1.86

कैरोटिन :—प्रति 100 ग्राम विभिन्न प्रकार के अनाज द्विदल बीजों के अंकुरण के बाद कैरोटिन (विटामिन ए.) में वृद्धि :—

अकुरण	मसूर	चना	मूंग	गेहूँ
दिवस	मा ग्रा /100ग्रा.	मा.ग्रा,/100ग्रा.	मा.ग्रा./100ग्र.	मा.ग्रा./100ग्रा.
0	1.60	2.54	2.09	0.46
2	2.00	3 54	4 07	0.70
4	4 05	4.30	4.25	2.25

विटामिन बी :—100 ग्राम सोयाबीन में अंकुरण के बाद विटामिन बी में सम्वर्द्धन :—

समय	थायमिन	रिबोफ्लेविन	नायसिन
सूखा सोयाबीन	0.88	0.12	3.00
अंकुरण के चौथे दिन	—	0.26	5.10
अंकुरण में 5 वें दिन	10.3	1.00	7.00

प्रति ग्राम गेहूं मूंग मटर के सूखे तथा अंकुरण के 5 वें दिन बी ग्रूप के विभिन्न विटामिनों की स्थिति मा. ग्रा./ग्राम

	गेहूँ	मूँग	मटर
	सूखा—अंकुरित	सूखा—अंकुरित	सूखा—अंकुरित
रिबोफ्लेविन	1.3— 5 4	1.2—10.0	0.7—7.3
नायसिन	62.0—103.0	26—70	31—32
बायोटिन	0.17— 0.36	0.2—1.0	—0.5
पेन्टोथेनिक एसिड	7.6 —12.6	— —	— —
पायरिडॉक्सिन	2.6 — 4.6	— —	— —
फॉलिक एसिड	28.0 —106.0	— —	— —
इनोसिटाल	1460—2100	— —	— —
थायमिन	7—9	8.8—0.3	7.2—9.2

माँसाहार समर्थक कुछ आहार-विज्ञानियों का मानना है कि विटामिन बी, 12 का मात्र स्रोत माँसाहार ही है। परन्तु निम्न शोधपूर्ण तालिका से यह सिद्ध होता है कि अंकुरित अनाज विटामिन बी 12 का श्रेष्ठ स्रोत है। प्रति ग्राम मूँग, मसूर, चना, सूखे हरे मटर के अंकुरण के बाद विटामिन बी 12 में वृद्धि

अंकुरण दिवस (Days germination)	मूँग	मसूर	चना	सूखा हरा मटर
0	0.61	0.43	0.35	0.36
2	0 81	0.42	1 90	1.27
4	1.53	2.57	1.22	2.36

प्रति ग्राम विभिन्न प्रकार के बीजों के अंकुरित होने पर विटामिन ई (टोकोफिरॉल) की वृद्धि माइक्रोग्राम में

अंकुरण दिवस	मूँग	चना	मसूर	सूखा हरा मटर
0	2.4	2.0	2.0	2.3
2	2.8	2.3	2.3	2.4
4	3.2	2.6	2.1	1.9

उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के अंकुरित अनाजों, तेल तथा द्विदल बीजों के अंकुरण के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के ताजे फलों, सब्जियों तथा हरी सब्जियों को कच्चे खाने से सभी प्रकार के एन्जाइम तथा विटामिन प्रचुरता से उपलब्ध हो जाते हैं। फल व सब्जियों का वैज्ञानिक विश्लेषण लेखक की अन्य पुस्तक "आहार के चमत्कार" में देखें।

आर्थिक दृष्टि से :—अंकुरित अनाज तथा मौसमानुसार मिलने वाले फल एवं सब्जियाँ आदि कार्बनिक जैव आहार काफी सस्ते पड़ते हैं। अंकुरित अनाज विश्व का श्रेष्ठतम आहार है। गरीब से गरीब व्यक्ति भी इस बहुमूल्य आहार का लाभ उठा सकता है। यह आहार विकासशील, अविकसित तथा तीसरी दुनिया के उन गरीब मुल्कों के लिए प्रकृति का श्रेष्ठतम वरदान है। अजस्र अक्षय स्वास्थ्य स्रोत है—अंकुरित अनाज। जिस कौम के बाल वृद्ध एवं युवा गरीबी के कारण कुपोषण के शिकार हो अकाल काल-कवलित

हो जाते हैं, उनके लिए अमृत तुल्य है—अंकुरित अन्न। उदाहरणस्वरूप भीषण कमरतोड़ मँहगाई की स्थिति में 100 ग्राम अंकुरित अनाज का अधिकतम मूल्य मात्र 40 पैसा ही होगा। इस प्रकार से अंकुरित अनाज सर्वसुलभ तथा सर्वसाध्य है। इसके लिए मँहगे ईंधन गैस, कैरोसिन तेल, लकड़ी तथा कोयला आदि की आवश्यकता नहीं होती है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से :—कार्बनिक जैव आहार में विपुल मात्रा में विशिष्ट प्रकार के एन्जाइम, विटामिन तथा अन्य ज्ञात-अज्ञात पोषक तत्त्व पाए जाते हैं जो स्वास्थ्य की सुरक्षा एवं निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से कार्बनिक जैव आहार का कोई विकल्प नहीं है।

सौन्दर्य की दृष्टि से :—हमारा सौन्दर्य जीवन्त कोशिकाओं तथा रक्त पर निर्भर करता है। रक्त कोशिकाओं का स्वास्थ्य उच्चतम किस्म के पोषक तत्त्वों से संयुक्त कार्बनिक जैव आहार पर निर्भर करता है। कार्बनिक जैव आहार का प्रयोग करें तो आपका सौन्दर्य पूर्णता में निखरेगा। शृंगार-प्रसाधन तथा ब्यूटी क्लिनिक आपको कभी भी सौन्दर्य नहीं दे सकते। कार्बनिक जैव आहार के प्रयोग से आपके अन्दर से ही फूल की तरह सौन्दर्य प्रस्फुटित होगा तथा खिलेगा।

मानवीय सौहार्द की दृष्टि से :—कार्बनिक जैव आहार के प्रयोग से व्यक्ति के दुर्गुण ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, हिंसा, लोभ, क्रोध, मोह इत्यादि का रूपान्तरण हो जाता है। व्यक्ति के अन्दर दूसरों के तथा अपने प्रति सहानुभूति, उदारता, प्रेम, स्नेह, करुणा, मैत्री, मुदिता, संयम, सेवा, सहनशीलता, सहकारिता, निर्भयता, प्रसन्नता, स्वच्छता आदि उदात्त विचारों एवं सद्गुणों का विकास होता है। मानवीय सौहार्द के भाव का सम्वर्द्धन होता है।

असाध्य रोग–निवारण की दृष्टि से :—गलत आहार मेल, मिलावट, कृत्रिम रंग रसायनों से युक्त आहार के कारण आधुनिक सभ्य लोगों में कैंसर, हृदय रोग, उच्चरक्तचाप, गुर्दे तथा यकृत के रोग, मधुमेह, आर्थराइटिस, मोटापा, मानसिक अवसाद आदि रोग तेजी से बढ़ रहे हैं। इन असाध्य रोगों से मुक्ति के लिए जैव कार्बनिक आहार का प्रयोग शत प्रतिशत सफल रहा है।

दीर्घ जीवन की दृष्टि से :—कार्बनिक जैव आहार का विशेष महत्त्व है। कार्बनिक जैव आहार के प्रयोग से मनुष्य की पूर्ण आयु 150 से 200 वर्ष तक की जा सकती है। यौवनावस्था 25 से बढ़ा कर 75 वर्ष तक की जा सकती है।

पाचन की दृष्टि से :—कार्बनिक जैव आहार में अनेक प्रकार के पाचक तत्त्व, एन्जाइम, विटामिन तथा अन्य ज्ञात-अज्ञात सुपाच्य तत्त्वों का शीघ्रता से सम्वर्द्धन होता है। उदाहरणस्वरूप दाल-बीजों में कार्बोज परिवार के दो तत्त्व स्टेकीओस तथा वरवेसीकोस होता है। रेफिनोज (कार्बोज) परिवार के इन तत्वों का पाचन अल्फा ग्लेक्टरोसाइडेज नामक एन्जाइम करता है। आमाशय के रस में इस एन्जाइम का सर्वथा अभाव होता है फलतः ये पेट में सड़ते हैं। अंकुरित अनाज में किण्व प्रक्रिया द्वारा एन्जाइम तथा अन्य पाचक एन्जाइम पैदा होते हैं जिससे रेफिनोज तथा खाद्य-तत्व शीघ्रता से पच जाते हैं।

कब्ज निवारण की दृष्टि से :—सभी प्रकार के कार्बनिक जैव आहार में रफेज सेलुलोज की पर्याप्त मात्रा होने से कब्ज की स्थिति दूर होती है।

औषधीय-गुण की दृष्टि से :—सभी प्रकार के कार्बनिक जैव आहार में अनेक प्रकार के हार्मोन, एन्जाइम, विटामिन तथा प्रति जैवकीय (एन्टी बायोटिक्स) तत्व पैदा होने से इनमें प्रबल औषधीय गुण आ जाते हैं। यही कारण है कि कार्बनिक जैव आहार सभी प्रकार के रोगों से लोहा लेने में सक्षम हैं।

स्वाद-संवेदनशीलता सम्वर्द्धन की दृष्टि से :—कार्बनिक जैव-आहार जिह्वा की स्वाद-सवेदनशीलता को बढ़ाते हैं। बचपन में स्वाद की संवेदनशीलता पूर्ण रहती है। लेकिन आहार में गर्म मिर्च, मसाले तथा तले-भुने आहार के प्रयोग से स्वाद की संवेदनशीलता समाप्त हो जाती है। जिह्वा स्थित स्वाद की कलियाँ मर जाती हैं। मुर्दा जिह्वा पर गर्म मिर्च मसाले युक्त आहार डालने से वह तड़फड़ाती एवं काँपती है तो ऐसा भान होता है कि स्वाद आ रहा है। परन्तु यह स्वाद का एक भ्रम होता है। स्वाद की संवेदनशीलता को लौटाने के लिए कार्बनिक जैव आहार का प्रयोग श्रेष्ठ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कार्बनिक जैव आहार की असंख्य विशेषताएँ हैं। कार्बनिक जैव आहार के प्रयोग से व्यक्ति की पेटूपन की आदत समाप्त हो जाती है। दाँतों की खूब अच्छी कसरत होती है। हमारा शरीर एक जैव रासायनिक कारखाना है अतः इसका ईंधन भी जैव-रासायनिक ही होना चाहिए। यही विज्ञान एवं प्रकृति-सम्मत है। कार्बनिक जैव आहार जीवन्त शरीर का सर्वश्रेष्ठ ईंधन है। अनेक आयुर्विज्ञानियों ने भी अपने विभिन्न प्रयोगों के आधार पर इस तथ्य को स्वीकार किया है।

25 | मानव : शाकाहारी या माँसाहारी : वैज्ञानिक दृष्टिकोण

भारतवर्ष एक निर्धन देश है फिर भी यहाँ के लोग विकसित देशों की अपेक्षा, कैंसर, उच्च रक्तचाप, यकृत व किडनी रोग, गठिया, संधिवात, पाइल्स, कोष्ठबद्धता तथा हृद्‌रोग से काफी बचे हुए हैं। इसका एक बहुत बड़ा कारण शाकाहार है। यहाँ के अधिकांश लोग धार्मिक भावनाओं के कारण माँसाहार लेना पाप समझते हैं। माँसाहार पाप है या पुण्य, इस दार्शनिक नैतिक व धार्मिक तर्कवितर्क में न पड़ कर हम यहाँ वैज्ञानिक दृष्टि से चर्चा करें कि। माँसाहार मन व शरीर-क्रिया-विज्ञान के अनुकूल है या नहीं। अब तक हुए वैज्ञानिक अध्ययनों से यह बात स्पष्ट हो गई है कि माँसाहार मानव मन एवं शरीर के विनाश व क्रियाविज्ञान के अनुकूल नहीं है। इसके पीछे निम्न वैज्ञानिक मान्यताएँ हैं :—

1. माँसाहारी पशुओं के नाखून तथा दांत शिकार पकड़ने लायक होते हैं। मनुष्य या अन्य शाकाहारी जन्तुओं के वैसे नहीं होते।

2. मनुष्य तथा अन्य सभी शाकाहारियों का जबड़ा भोजन को अच्छी तरह चबाने के लिए ऊपर-नीचे, दाँये-बायेँ चारों तरफ घूम सकता है। माँसाहारी पशुओं का जबड़ा माँस के छोटे-छोटे टुकड़े कर उदरस्थ करने के लिए सिर्फ ऊपर-नीचे ही चलता है।

3. हिंसक जानवर अपने शिकार को मार कर उल्लास में भर जाते हैं तथा वे उसे कच्चा ही खाते हैं।

4. जानवरों को मारते समय कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसके हृदय में दया व करुणा का भाव न उमड़े। यदि नहीं उमड़े तो ऐसे मनुष्य हिंस्र जानवरों की चेतना के तल पर जीते हैं, ऐसा मानना चाहिए क्योंकि हिंसक पशुओं में ऐसा भाव नहीं उमड़ता। यदि मार कर कच्चा ही माँस खाना पड़े तो अनेक लोग माँस छोड़ सकते हैं।

4. शाकाहारियों का पाचन मुँह से शुरू होता है जबकि माँसाहारियों का आमाशय से शुरू होता है।

5. शाकाहारियों की लार में क्षारीय एन्जाइम टाइलिन सलाइवा एमाइलेस होता है जो स्टार्च को पचाता है। माँसाहारी जानवरों की लार अम्लीय होती है और प्रोटीन को पचाती है।

6. माँसाहारी जानवर माँस के साथ-साथ हड्डियाँ भी खाते हैं परन्तु मनुष्य उन्हें चबा व पचा नहीं सकता।

7. माँसाहारी जानवरों का आमाशय हड्डियों तथा माँस को पचाने के लिए काफी बड़ा होता है तथा अम्लीय पाचक रस काफी मात्रा में निकालता है जबकि शाकाहारियों का आमाशय आँतों की अपेक्षा काफी छोटा होता है। लम्बी आँतें सिद्ध करती हैं कि मनुष्य शाकाहारी है।

8. माँसाहारी जानवर अल्पजीवी होते हैं जबकि शाकाहारी घोड़ा, हाथी, आदमी आदि दीर्घजीवी होते हैं।

9. शाकाहारी तथा माँसाहारी प्राणियों की आँखें एवं चेहरे के भावों में काफी भिन्नता होती है।

10. शाकाहारी जानवर हाथी, घोड़ा, गाय इत्यादि सिर्फ शाकाहार ही करते हैं। भूखवश माँस खा भी लें तो वे विक्षिप्त एवं बीमार हो जाते हैं। मनुष्य भी शाकाहारी है अतः माँस उसके शरीर एवं विकसित चेतना के अनुकूल नहीं हैं।

11. यह भ्रम है कि माँस शक्ति एवं ऊर्जा का स्रोत है। शक्ति की माप अश्व-शक्ति (Horse Power) है और अश्व शाकाहारी है। शक्तिशाली जानवर हाथी, गेंडा, घोड़ा शाकाहारी होते हैं। विश्व के प्रबुद्ध विख्यात दार्शनिक एवं वैज्ञानिक भी प्रायः शाकाहारी हुए हैं। आईन्स्टीन शाकाहार के प्रबल समर्थक थे। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ कहा करते थे कि पेट कब्रिस्तान नहीं है कि वहाँ मुर्दे (माँस) को दफनाया जाय। भगवान महावीर व पूज्य बापू परम अहिंसक थे।

12. शाकाहारी प्राणी एक समय में एक ही बच्चा (कुछ अपवाद को छोड़ कर) पैदा करते हैं; जबकि माँसाहारी जानवर एक साथ दो या दो से अधिक बच्चे पैदा करते हैं। इस दृष्टि से भी मनुष्य शाकाहारी है।

13. शाकाहारियों को माँस जैसा कन्सेन्ट्रेट प्रोटीन पचा पाना अशक्य होता है। माँस का प्रोटीन 98 से 100 प्रतिशत तक पच तो जाता है साथ ही रक्त में यूरिया, यूरिक एसिड, क्रीटिन आदि विषैले रसायन प्रचुरता से निर्मित करता है जिससे गठिया, गुर्दे की खराबी, गॉलस्टोन आदि रोग होते हैं। इन जहरों का सर्वाधिक घातक प्रभाव गुर्दों पर होता है।

14. माँस प्रबल अम्लीय आहार होने के कारण उसमें सात्मीकरण के लिए प्रबल अम्लीय माध्यम ही चाहिए और वह क्षारीय माध्यम के कारण मनुष्य के अनुकूल नहीं पड़ता। हाल ही हार्वर्ड मेडिकल स्कूल के डॉ. ए. वाचमैन, डॉ. डी. एस. बर्न्सस्टीन ने बरसों तक खोज के बाद पता लगाया है कि फॉस्फेट भण्डारण का कार्य अस्थियाँ करती हैं। फॉस्फेट रासायनिक ऊर्जा प्रदान करता है। शरीर की प्रतिरोधन व्यवस्था पी. एच. को सामान्य रखता है। माँसाहारियों का पेशाब प्रायः अम्लीय होता है क्योंकि माँस से अम्लता बनती है फलतः शरीर के पी. एच. को उदासीन रखने के लिए हड्डियों के क्षारीय लवण घुलने लगते हैं। 30 साल के बाद माँसाहारियों की अस्थियों का क्षरण होने लगता है और अस्थियाँ कमजोर हो जाती हैं।

15. माँसाहार, मानव शरीर के अनुकूल नहीं है क्योंकि इसकी संतृप्त-वसा रक्त में कोलेस्टरॉल तथा ट्राइग्लिसराइड्स, लिपिड्स बढ़ाती है जिससे हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, थ्रोम्बोसिस, लकवा, गॉलस्टोन, गुर्दे की पथरी

आदि रोग होते हैं। ये रक्तवाहिनियों को सँकरी तथा रक्त को गाढ़ा बना देते हैं। सभी प्रकार के शाकाहार (नारियल को छोड़ कर) में असंतृप्त वसा मिलती है जो मानव शरीर के अनुकूल है। इससे कॉलेस्टरॉल इत्यादि नियंत्रण में रहते हैं। माँसाहार का अन्तिम उत्पाद गुर्दे एवं यकृत को क्षतिग्रस्त कर तत्संबंधित अनेक रोग पैदा करते हैं।

16. अण्डा शाकाहार है या माँसाहार; इस चर्चा में न पड़ कर हम जानें कि अण्डा अण्डा है तथा हानिकारक है। अण्डे के सफेद वाले भाग में "एविडिन" नामक हानिकारक तत्त्व होता है। यह बायोटिन विटामिन को नष्ट करता है। डॉ. जे. लिज, एच टी पार्सन्स, तथा इ. केली के अनुसंधानपरक निष्कर्षों के अनुसार "एविडिन" तत्त्व शरीर में प्रोटीन की कमी कर अपने दुष्प्रभाव से बालों का झड़ना, गंजापन, त्वचा विक्षोभ, चर्मरोग, आँख, मुंह व कान के रोग पैदा करते हैं। जॉर्जिया स्कूल ऑफ मेडिसिन विश्वविद्यालय के वी. पी सिडेन स्ट्रीकर, ए. पी. ब्रिग्स तथा एन. एम. डे बाउन्न ने अण्डे के सफेद वाले भाग को "egg white injury" नाम दिया है। उन्होंने अण्डे के प्रभाव का अध्ययन करने पर पाया कि यह अवसाद, हृदय पर दबाव, चेतनाशून्यता, सनसनाहट, मितली, भारीपन, थकान, त्रास, आंतक, भय की स्थिति उत्पन्न करता है। उससे रक्त में हिमोग्लोबिन की कमी, ई सी जी. में हृदय की असमानता, लाल रक्त-कोशिकाओं की कमी, रक्तहीनता, रक्त-कोलेस्टरॉल की अत्यधिक वृद्धि आदि असामान्य स्थिति पाई गई है। बाद में उन्हें बायोटिन देकर ठीक किया गया है। विसकॉन्सिन विश्वविद्यालय के तीन शोधकर्त्ताओं ने चूहों में प्रयोग कर देखा कि अण्डे खाने में यकृत कैंसर होने की संभावना प्रबलता से बढ़ती है। अण्डे को उबाल कर ब्रेवर यीस्ट के साथ खाने से उपर्युक्त रोग होने की संभावना कम हो जाती है। कृषि विभाग फ्लोरिडा द्वारा 18 माह तक तथा अन्य संस्थानों द्वारा किये गये प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि 30 प्रतिशत अण्डों में डी. डी. टी. नामक घातक रसायन होता है।

17. डॉ. राबर्ट ग्रास, प्रो. इरविंग डविडसन, डॉ. इ. वी. मैक्कालम, डॉ. आर, चे बिलियम्स ने अपने विभिन्न पृथक-पृथक शोध कार्यों से यह सिद्ध

किया है कि एक अण्ड में 4 ग्रेन कॉलेस्टरॉल होता है और इतनी मात्रा पित्ताशय की पथरी, गुर्दे एवं यकृत के रोग तथा हृद्रोग पैदा करने के लिए पर्याप्त है। मुर्गी के अण्डे में टी. बी, पेचिश आदि के कीटाणु पाये गये हैं। अण्डे में कार्बोज तथा कैल्सियम बहुत ही कम होता है फलतः इसे खाने से पेट में सड़ान पैदा होकर अनेक प्रकार के पैथोजैनिक कीटाणु पैदा होते हैं। अण्डे में नाइट्रोजन, फॉस्फोरिक एसिड तथा चरबी अधिक होने से शरीर में एसिडोसिस की स्थिति पैदा होती है। एविडिन घातक रसायन, एक्जिमा; लकवा तथा अन्य त्वचा रोग पैदा करते हैं।

18. हाल ही में जर्मन कैंसर रिसर्च सेन्टर हिडलबर्ग के डॉ. रैनर फ्रेन्ट्जेल वेइम तथा उनके सहयोगियों ने 1904 लोगों पर 5 वर्षों तक शोध प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला है कि जो लोग माँसाहार करते हैं उनमें जन्तुज प्रोटीन तथा वसा से आमाशय एवं यकृत का कैंसर, कोरोनरी थ्रोम्बोसिस, कोलेस्टरौल की वृद्धि, मोटापा आदि अनेक जानलेवा रोग होते हैं। शाकाहारियों के भोजन में पॉली अनसेचुरेटेड वसाम्ल,हाइफाइबर वनस्पति प्रोटीन तथा वसा, कैंसर, विभिन्न हृदय रोग, थ्रोम्बोसिस, उच्च रक्तचाप तथा सर्कुलेटरी रोगों से हमारी रक्षा करता है। शाकाहारियों का रक्तचाप, कोलेस्टरॉल तथा वजन नियंत्रित रहता है। जो लोग धूम्रपान तथा शराब नहीं पीते हैं तथा शाकाहारी हैं उनमें से अधिकांशतः जीवनपर्यन्त हृदय रोग कैंसर, कौलेस्टरॉल, मोटापा आदि से बचे रहते हैं। डॉ. बेइम के अनुसार शाकाहारी भोजन मस्तिष्क तथा स्नायविक (Brain & nerve) कैंसर से हमारी रक्षा करता है। अमेरिका के डॉ. आर. एल. फिलिप्स तथा यूनिवर्सिटी ऑफ वेस्टर्न आस्ट्रेलिया पर्थ के डॉ. इआन एल. राउस की खोजों के अनुसार शाकाहार रक्तचाप, हृदय तथा रक्त संचार के रोगों को नियंत्रित रखता है। डॉ. राउस के अनुसार यह किस प्रकार प्रभाव डालता है, यह अभी अज्ञात है और शोध जारी है।

19. माँस में रफेज नहीं होने से वह शाकाहारियों के अनुकूल नहीं पड़ता है फलतः यह आँतों में पड़ा पड़ा सड़ता रहता है। इससे करोड़ों की संख्या में पैथोजेनिक कीटाणु पैदा होकर समस्त रक्त-प्रवाह को प्रदूषित करते तथा कोशिकाओं को विक्षुब्ध करते हैं। प्रयोगों से देखा गया है कि माँसाहार

से अतिसार, बवासीर, हार्निया, अपेण्डिसाइटिस, गर्भाशय, डिम्ब ग्रंथि, अग्नाशय तथा आँतों की कैंसर उत्पन्न होते हैं।

20. हाल ही में कैंसर एवं आहार के सम्बन्ध में विश्व का एक महानतम शोध-निष्कर्ष सामने आया है। यह शोध कार्य जापान की राष्ट्रीय कैंसर संस्थान के निदेशक डॉ. ताकेशी हीरायामा के संचालन में हुआ है। उन्होंने यह शोध कार्य 1965 से प्रारम्भ कर 16 वर्ष तक चलाया। इसके दौरान उन्होंने एक लाख 22 हजार व्यक्तियों पर शोध कार्य किया। 16 वर्ष के दौरान 30 हजार लोगों की मृत्यु हो गई। इसमें आठ हजार लोग कैंसर से मरे। कैंसर से मरने वाले इन आठ हजार लोगों में माँसाहार, शराब तथा धूम्रपान करने वालों की संख्या 808 प्रति लाख थी। शाकाहारियों एवं दुर्व्यसनों से मुक्त लोगों की संख्या 324 प्रति लाख थी। हरी शाक सब्जियों तथा फलों के साथ माँसाहारी लोग शाकाहार की मेहरबानी से कैंसर की चपेट में आने से बचे रहे। सिर्फ शाकाहार के कारण लोग मुँह, ग्रासनली, आमाशय, फेफड़े, मूत्राशय तथा अन्य अंगों के कैंसर से पीड़ित हुए। डॉ. हीरायामा अपनी शोध से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ताजी सब्जियों, पीले पत्तों तथा पीले गूदादार फलों में स्थित बीटा कैरोटिन, विटामिन से रफेज आदि तत्व हमारे शरीर की प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था को सबल एवं सशक्त बनाते हैं, फलस्वरूप कैंसर रोग हावी नहीं हो पाता है। पालक, टमाटर, पत्तागोभी, कद्दू, पपीता, आम, अनानास, खूबानी, गेहूँ तथा पत्ते वाले साग, दूर्वा रस, गाजर, संतरा, मौसम्मी आदि कैंसर-अवरोधी आहार हैं। इनमें कैंसर-अवरोधी तत्व "इंडोल" भी पाया जाता है।

21. लंदन के साउथबैंक पॉलीटेक्निक के डॉ. जिल डेविस व सरे विश्वविद्यालय के प्रो जान निकसॅन विश्व के माँसाहारियों, शाकाहारियों, दूध, पनीर आदि पशुजन्य चीजें न खाने वालों के ऊपर बरसों तक प्रयोग करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि शाकाहारियों की तुलना में माँसाहारियों को बीमारियाँ ज्यादा होती हैं। इन आयुर्विज्ञानियों का कहना है कि विज्ञान की राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा एक शाकाहारी पर जीवन भर 12,340 पौण्ड खर्च करती है जबकि माँसाहारियों पर यह खर्च बढ़ कर पाँच गुना हो जाता है। इन आयुर्विज्ञानियों

के अनुसार माँसाहारियों में कब्ज, अपेंडिसाइटिस, पथरी, हृत्शूल. रक्तहीनता बवासीर, वेरीकोसवेन्स तथा कैंसर के रोग ज्यादा होते हैं। शाकाहारियों में ये रोग कम होते हैं और यदि होते भी हैं तो बहुत बाद में होते हैं तथा जल्दी ही ठीक भी हो जाते हैं। माँसाहारियों में उपर्युक्त रोग मूलतः रफेज की कमी के कारण होते हैं। डॉ. एलन लॉग का मानना है कि भोजन में रफेज की प्रचुरता से उपर्युक्त रोग नहीं होते हैं।

22. ब्रिटेन की ही मेडिकल रिसर्च काँउसिल के अधीन शोधरत संस्था साउथम्पैन विश्वविद्यालय के जानपदिक रोग-विशेषज्ञों का मानना है कि शाकाहारियों में अपेंडिसाइटिस नहीं होता है। रफेज की कमी के कारण माँसाहारियों में अपेंडिक्स शीघ्रता से संक्रमित होते हैं। डॉ रोगर ने अपने विभिन्न प्रयोगों से देखा कि बूचर के माँस में छोटी आँत को क्षतिग्रस्त करने वाले अनेक प्रकार के कीटाणु एवं विषाणु होते हैं।

23. माँसाहार द्वारा अनेक प्रकार के रोगाणु हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं। हाल ही इस क्षेत्र में हुए शोध कार्यों के अनुसार खाए जाने वाले जानवरों में कैंसर या ट्यूमर के संकेत अधिक मिले हैं। कभी-कभी गाय बैलों के पेट या कन्धों पर गोलाकार गाँठें होती हैं, जिनमें अधिकांशतः कैंसर ट्यूमर होती हैं। इन जानवरों के मालिक पैसों के लालच में इन्हें काट कर माँस बेचते हैं। इस प्रकार के प्रदूषित माँस खाने वालों में भी कैंसर होने की संभावना बढ़ जाती है। डॉ. मूलर 265 माँसाहारियों पर सर्वेक्षणात्पक शोध कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि माँसाहार के 18 घन्टे बाद व्यक्ति में सर्वप्रथम कमजोरी, थकान, दस्त, वमन, खुश्की, मिचली, गले की सूजन व जलन, फिर 2-3 दिन पश्चात् मस्तिष्क की कोशिकाओं में ऑक्सीजन के कमी की कारण चक्कर आने, (Verngo) श्वास लेने में कठिनाई, त्वचा में रुखापन, आवाज में भर्राहट, पैर का लकवा, खुश्क त्वचा आदि रोग लक्षण दिखते हैं।

24. एक प्रयोग से पाया गया है कि एक औन्स माँस में करीब तीस लाख से लेकर तीन करोड़ तक कीटाणु होते हैं। काफी देर तक पड़े माँस में रोगाणुओं को मात्रा बड़ी तीव्रता से बढ़ती है। एक अन्य प्रयोग में पाया गया है कि एक पाव गाय के माँस की चाय नौ कबूतरों को मार सकती है।

25. कच्चा माँस न तो व्यक्ति देखना पसन्द करता है और न सूँघना। क्या आप कच्चा माँस खा सकते हैं ? माँस को आकर्षक बनाने और जागरूक चेतना को मूच्छित करने के लिए उसे तलना-भूनना पड़ता है। तभी वह स्वाद के अनुकूल हो पाता है। जबकि विभिन्न नैसर्गिक रंग-बिरंगे शाकाहार, अंकुरित अन्न, सब्जियाँ तथा फलादि को देख कर मन में आनन्द, हर्ष, उत्साह एवं तृप्ति महसूस होती है।

26. शाकाहारियों के नवजात शिशु को माँसाहार पर नहीं रखा जा सकता है। उसका प्रारम्भिक प्राकृतिक आहार दूध ही है। माँस खाने वाले शाकाहारी पशुओं तथा औरतों को दूध कम उतरता है।

27. प्रायः प्रयोगों से देखा गया है शाकाहारी जानवर जब माँस खाना प्रारम्भ करते हैं, वे शीघ्र ही जीर्ण एवं घातक रोगों के शिकार होकर मर जाते हैं। यही हाल मानव जाति में भी परिलक्षित होता है। विशेष रूप से मुस्लिम कौम या अन्य जाति जो माँसाहार करती है उनमें पित्ताशय की पथरी तथा कैंसर रोग ज्यादा पाये जाते हैं।

28. माँसाहारी जानवर शिकार को मार कर उसका रक्त बड़े चाव एवं आनन्द से पीता है, परन्तु क्या कोई मनुष्य ऐसा कर सकता है। कल्पना करें कि आपके मनभावन भोजनों पर रक्त छिड़क दिया जाय तो क्या कोई खाना पसन्द करेगा ? यदि उत्तर हाँ आता है तो वह हिंस्र जानवरों की कोटि में हैं।

29. मनुष्यों की दृष्टि तथा घ्राणेन्द्रिय आहार प्राप्ति हेतु पशु वध के लिए प्रेरणा नहीं देती हैं। क्या आप बकरा, गाय, हिरण आदि जानवरों की मासूमियत देख कर उसे खाने के लिए ललच उठते हैं ? ऐसा मानवता के विरुद्ध है। जबकि वृक्ष पर पके फल, अनाज की बालियाँ एवं शाक सब्जियों के नैसर्गिक रंग-रूप, गुण धर्म को देख कर सभी इन्द्रियाँ पाने एवं खाने के लिए ललच उठती हैं। 6-7 साल के सरल भोलेभाले बालक के पास एक प्लेट में माँस तथा दूसरे में फल शाक आदि रखिए। देखिए, बालक किस तरफ आकृष्ट होता है। माँस को देख कर वह डरता है तथा घृणा करता है, जबकि फलादि को तुरन्त लेकर खाने लगता है।

30. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 160 बीमारियाँ माँसाहार से फैलती हैं, जिनमें मिर्गी की बीमारी मुख्य है। सुअर के माँस में "टिनिया सोलिहस" नामक भयंकर कीड़े पाये जाते हैं, जो मस्तिष्क के स्नायुओं को क्षतिग्रस्त करके मिर्गी तथा अन्य कन्वल्सिव रोग पैदा करते हैं। जापान, जर्मनी, रूस के अबकेशिया प्रान्त तथा अन्य देशों में किये गये सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि सौ तथा डेढ़ सौ वर्ष से ऊपर जीने वाले लोग प्रायः शाकाहारी होते हैं।

31. अमेरिका के सुप्रसिद्ध आयुर्विज्ञानी डॉ. ब्राउन तथा गोल्डस्टीन को 1985 का नोबेल पुरस्कार मिला। उनकी खोज भी इसी से सम्बन्धित है। इन वैज्ञानिकों के अनुसार दिल के दौरे का प्रत्यक्ष कारण माँसाहार जैसे अधिक तथा संतृप्त वसा का प्रचुरता से प्रयोग करना है।

32. पर्यावरण-संतुलन तथा मानवीय-विकास के दृष्टि से भी शाकाहार श्रेष्ठ है। मनुष्य ने अनेक पशु-पक्षियों को अपना आहार बना कर उन्हें इस भूतल से सदा सदा के लिए विदा कर दिया। उन पक्षियों के खत्म होने से अनेक वनस्पतियाँ भी समाप्त हो गई। पर्यावरण का संतुलन डगमगाने लगा है। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण मारीशस का लुप्तप्राय पक्षी डोडो है। 300 वर्ष से यूरोपीयों ने मारीशस पर अपना आधिपत्य जमा कर न उड़ने वाले पक्षी डोडो का इस प्रकार संहार शुरू किया कि वे सदा सदा के लिए समाप्त हो गये, परन्तु अंग्रेजी साहित्य में एक कहावत अवश्य जुड़ गई "डैड एज डोडो"। इस डोडो के समाप्त होने से केल्वेरिया मेजर नामक वृक्ष भी समाप्त हो गये क्योंकि डोडो इन्हीं वृक्षों के जंगलों में रहता था तथा उसके फलों को खाता था। डोडो के उदर में कुछ ऐसे अम्ल तथा पत्थर होते थे जिससे इसके बीज की परत घिस कर पतली हो जाती थी और बीज विष्ठा के साथ बाहर आने पर अंकुरित हो जाता था। डोडो के समाप्त होने से बीजों का अंकुरण एवं प्रस्फुटन ही खत्म होगया क्योंकि केल्वेरिया के बीजों पर बहुत ही सख्त छिलका होने से उसके अन्दर नमी नहीं प्रवेश कर पाती थी। नमी नहीं होने से अंकुरण एवं प्रस्फुटन भी नहीं हो सकता है।

33. जानवरों को मारते समय उनके भय के कारण अन्तःस्रावी ग्रंथियों से अनेक प्रकार के विषैले रसायन निकलते हैं जो खाने वाले व्यक्ति को दुष्प्रभा-

वित करते हैं। जानवरों को मारते समय उस समय की हत्या, भय, विद्वेष, घृणा आदि की सूक्ष्म तरंगें मनुष्य की सूक्ष्म चेतना को प्रभावित कर उसे हिंसक, क्रूर, अत्याचारी बनने के लिए बाध्य करती है।

34. आजकल की मछलियाँ भी प्रदूषित हो गई हैं। शहर के कल-कारखानों, गंदे-नालों से वहे घातक रसायनों, रेडियो-सक्रिय तत्त्वों से मछलियाँ संक्रमित होती हैं। मछलियों के मुँहों, गलफड़ों तथा अन्य अन्दरूनी अवयवों की सूजन व गाँठें कैंसर को सूचित करती हैं। आम आदमी इस बात को समझ नहीं पाता है। हो सकता है वह मोटी गाँठे उसे और स्वादिष्ट लगे। इस प्रकार से संक्रमित मछलियों को खाने से कैंसर यक्ष्मा आदि अनेक रोग हो सकते हैं। इस समय मुर्गियाँ अपने डैनों को लँगडाती हुई एवं घसीटती हुई चलती हैं। यह भी एक प्रकार का कैंसर है। मुर्गियों में इस प्रकार का प्रथम लक्षण दिखते ही मुर्गीपालक पैसे के लालच में मार कर होटलों या ग्राहकों को बेच देते हैं। खाने वाला व्यक्ति इस तथ्य से अनजान होता है और वह अनजाने ही लाइलाज वीमारी से ग्रस्त हो जाता है।

35. आँतों में रहने वाले कृमि तथा सूक्ष्म रोगाणु व्यक्ति को काफी कमजोर बना देते हैं। इन कीड़ों के कारण आँतों तथा यकृत में सूजन आ जाती है और प्लीहा क्षतिग्रस्त होतो है। रक्तहीनता तथा अन्य जानलेवा बीमारियाँ होती हैं। इन कृमियों में सांघातिक मुख्य कृमि हुकवर्म तथा फीता कृमि के संवाहक होते हैं माँस तथा मछलियाँ। इन कृमियों के अण्डे निकलते रहते हैं। मल खाने वाले सुअर, गाय, मछली, पक्षी तथा अन्य प्राणियों में कृमि के अन्डें जाकर अपना घर बना लेते हैं। वे उनकी आँतों में प्रजनन करते हैं फिर रक्तसंचार द्वारा जानवरों की माँसपेशियों में चले जाते हैं। इन जानवरों के माँस खाने वाले व्यक्ति इन जानलेवा कृमियों से ग्रस्त हो जाते हैं।

जानवरों के माँस में रहने वाले फीता कृमियों की लम्बाई 40 से 65 फीट तक पाई गयी है। माँस में न्यूमोनिया, टायफायड आदि के कीटाणु भी पाये गये हैं।

36. माँसाहार के सम्बन्ध में बड़े ही अवैज्ञानिक एवं मूर्खतापूर्ण तर्क व बक्तव्य दिये जाते हैं कि माँसाहार का प्रोटीन श्रेष्ठ किस्म का है और इस

श्रेष्ठ प्रोटीन के अभाव में व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। परन्तु यह वक्तव्य निराधार है। शरीर, मन एवं चेतना के परम स्वास्थ्य के मालिक अनेक मूर्धन्य वैज्ञानिकों, साहित्यकारों व दार्शनिकों के जीवन का अध्ययन करने के बाद ज्ञात हुआ है कि वे जीवनपर्यन्त शाकाहारी थे। भगवान महावीर, जिन्होंने अहिंसा को परम धर्म माना है, के विषय में कहा जाता है कि उनके जैसा सुन्दर एवं स्वस्थ शरीर एवं मन कभी हुआ ही नहीं। उनके चित्र से भी ऐसा ही प्रतीत होता है। भगवान बुद्ध, पूज्य बापू, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, महर्षि रमण, अरविन्द, रजनीश, महेश योगी, कबीर, शंकराचार्य, आचार्य तुलसी, तुलसीदास, महात्मा ईसा, स्वामी रामतीर्थ, वैज्ञानिकों में डॉ. हेनरी सी. शेरमन, जैक सी. ड्रमंड, सर हेनरी टामसन, डॉ. अलबर्ट श्वितजर, डॉ. तादाने, डॉ. कार्ल ऐंडर्स, डॉ. आटो रॉबिन्सन, डॉ. सी. बी. रमण, एम. विश्वेश्वरैया आदि हजारों नाम हैं जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में विश्व को दिशा-निर्देश दिया और वे सभी शाकाहारी थे। महान वैज्ञानिक डॉ. अल्बर्ट आइन्स्टीन ने एक बार बड़े दुःख के साथ कहा था—"यद्यपि बाह्य परिस्थितियों ने मुझे शाकाहारी होने के पथ पर कुछ रोड़े अटका रखे हैं तो भी मैं शाकाहार का पूर्ण समर्थक हूँ ···· मानव मनोभावों को शाकाहार भौतिक रूप में प्रभावित करता है। ······ आने वाली मानव जाति के भविष्य में शाकाहार महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा।" प्राकृतिक चिकित्सा के प्रवर्तकों में श्री लुइकूने, एडोल्फ जुस्ट, बर्नर मैकफेडन, लिंडल्हार आदि माँसाहार के सख्त खिलाफ थे।

37. माँस एवं अण्डों का प्रोटीन श्रेष्ठ किस्म का होता है, यह एक बहु-प्रचारित भ्रान्त धारणा है। यह विचार कब, कहाँ, कैसे तथा क्यों प्रचारित हुआ, इसका कोई तथ्यात्मक प्रमाण नहीं है। जो चिकित्सक एवं पोषण-विज्ञानी माँसाहार एवं अण्डों के पक्ष में दलील देते हैं, उनसे आप पूछिये कि प्रोटीन का ऐसा वैज्ञानिक वर्गीकरण किसने किया? उसका तथ्यात्मक उल्लेख कहाँ है? तो उनका एक ही जबाब होता है कि उन्होंने ऐसा सिर्फ सुन रखा है। सुनी-सुनाई बात ही पुस्तक में अंकित है। अभी तक किसी प्रकार के वैज्ञानिक प्रयोग नहीं हुए हैं। माँस तथा अण्डों का प्रोटीन श्रेष्ठ किस्म का है

तथा वनस्पतियों से प्राप्त प्रोटीन निम्न कोटि का है, यह मान्यता मात्र भ्रम है। मेडिकल कॉलेजों में सुप्रसिद्ध आयुर्वैज्ञानिक सैमसन राइट की किताब पढ़ाई जाती है और इस प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने उक्त पुस्तक में लिखा है कि प्रोटीन का उक्त विभाजन अवैज्ञानिक एवं अव्यावहारिक है। उन्होंने तर्क दिया है कि पशुओं की माँसपेशियाँ घास खाने से ही बनती हैं। अर्थात् उच्च स्तर का प्रोटीन घास से ही निर्मित होता है तो फिर मनुष्य के लिए वनस्पति-प्रोटीन निकृष्ट कैसे हो गया ?

38. माँसाहार-प्रचार के पीछे पाश्चात्य देशों के आहारीय साम्राज्यवाद के विस्तार का या गरीब मुल्कों के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक शोषण का घिनौना षड़यन्त्र छिपा है। इस तथ्य का पर्दाफाश "डायट फार स्मॉल प्लेनेट्स" पुस्तक में बखूबी किया गया है। लेखिका फ्राँसिस मूर लैप ने लिखा है कि प्रोटीन आवश्यक तत्त्व है लेकिन उसके लिए माँसाहार कोरी मूर्खता है। अमेरिकी जितना प्रोटीन मवेशियों को खिला देते हैं, उतने प्रोटीन से तो गरीब मुल्कों के अभावग्रस्त लोगों की समस्या ही हल हो सकती है। उन्होंने आँकड़ा दिया है कि औसतन एक बछड़ा 16 पौण्ड अनाज खाकर एक पौण्ड माँस देता है और शेष 15 पौण्ड अनाज उसकी हड्डियों, बालों एवं अन्य शारीरिक विकास में खर्च हो जाता है। .... सिर्फ 1973 में अमेरिका के पशुओं ने जितना प्रोटीन खाया, वह विश्व की सम्पूर्ण आबादी की आवश्यकता से छः गुना था। माँस से उच्चतम किस्म का प्रोटीन मिलता है, इस भ्रम में गरीब एशियायी या अफ्रीकी देश आ चुके हैं। एक शोध-सर्वेक्षण के अनुसार एक हैक्टर जमीन से गन्ने के रूप में 153, आलुओं के रूप में 72, चाँवल के रूप में 42 किलो कैलोरी ऊर्जा मिलती है, परन्तु इतनी जमीन में उगने वाले अनाज को मवेशियों को खिला कर दूध के रूप में 11, अंडे के रूप में 3.1 तथा माँस के रूप में मात्र 2.5 किलो कैलोरी ऊर्जा ही प्राप्त होती है। आज की सबसे बड़ी समस्या खाद्यान्न समस्या है। जुलाई, 87 में विश्व की आबादी बढ़ कर पाँच अरब से ऊपर हो गई है। पृथ्वी पर प्रति मिनट 150 शिशु जन्मते हैं। दस हजार वर्ष पूर्व सम्पूर्ण विश्व की आबादी कुल पचास लाख थी। ईसा के समय यह आबादी 20 से 30 करोड़; अठारहवी शताब्दी

के मध्य में एक अरब से उपर, 1930 तक दो अरब से अधिक, 1975 में चार अरब थी। किन्तु अब आशा है कि छः अरब आबादी के साथ हम इक्कीसवीं शताब्दी का स्वागत करेंगे। जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि गरीब मुल्कों में ज्यादा हो रही है। एक आँकड़े के अनुसार 1985 में विकसित देशों की जनसंख्या 1.2 अरब तथा विकासशील देशों की 3.5 अरब थी। विकसित देशों में 1 प्रतिशत, विशेषतः यूरोप में सबसे कम ½% से कम की दर से जनसंख्या बढ़ रही है। सबसे खतरनाक स्थिति 3% अफ्रीकी देशों की है। भारत में 2.4%, पाकिस्तान एवं बांगलादेश में 3% जनसंख्या वृद्धि दर है। वर्तमान में भारत की जनसंख्या 77 करोड़ है। वृद्धि दर ऐसी रही तो संभावना है कि हम एक अरब के साथ 21वीं सदी का स्वागत करेंगे। सिर्फ उत्तरप्रदेश की जनसंख्या ही ब्रिटेन से दुगुनी है। ऐसी जनसंख्या की विस्फोटक स्थिति में जमीन तो बढ़ने से रही। अतः गरीब मुल्कों के लिए अमृत तुल्य अनाज को माँस प्राप्ति के लिए जानवरों को खिला देना मूर्खता ही है। इतना ही नहीं, अमेरिका जैसे कुछ देशों में तो अनाज का कृत्रिम अभाव पैदा करने के लिए उसेसमुद्र में भी फिकवा दिया जाता हैं जबकि अफ्रीका एवं एशिया के गरीब मुल्कों में अनाज के अभाव में दम तोड़ने के हादसे होते रहते हैं।

39. प्रोटीन की किस्म या गुणवत्ता उसमें स्थित एमिनो एसिड तथा उसके अवचूषण एवं सात्मीकरण पर निर्भर करती है। जितना जल्दी जो प्रोटीन पच कर शरीर के काम आता है, वही ऊँची गुणवत्ता का प्रोटीन होता है। दूध, दही, सोयाबिन का दही, मूँगफली, फल तथा अन्य गिरियों के प्रोटीन की पाचन व अवचूषण क्षमता माँस से भी अधिक होती है। लोगों की धारणा है कि शाकाहार में सभी आवश्यक एमिनो एसिड, विटामिन बी$_{12}$ तथा अन्य कुछ खनिज लवणों की पूर्ति नहीं होती है तथा शाकाहार में सभी प्रकार के एमिनो एसिड मिलते नहीं हैं। लेकिन विभिन्न प्रयोग एवं खोजों से यह सिद्ध होगया है कि अंकुरित अनाज में जैव-रसायन किण्वन एवं खमीरीकरण प्रक्रिया द्वारा उच्चतम किस्म का प्रोटीन, विटामिन बी$_{12}$ विटामिन सी, बी$_1$ बी$_2$, बी$_3$ एन्जाईम आदि पैदा हो जाते हैं। एन्जाइम बी$_1$ बी$_2$ इत्यादि

पके माँस में होते ही नहीं हैं। अंकुरित अनाजों का दूध, चटनी आदि विविध स्वादिष्ट व्यंजन बना कर खाया जा सकता है। सभी प्रकार की दालों व अनाजों को अंकुरित करके ताजी सब्जियों व फलों को खाने से सभी प्रकार के एमिनो एसिड की पूर्ति भी आसानी से हो जाती है। माँस मछली में मात्र 20% प्रोटीन होता है जबकि दालों में 21 से 27% प्रोटीन मिलता है। किण्वन तथा खमीरीकरण प्रक्रिया द्वारा विविध आहारों-जैसे दही (सोयाबीन तथा जानवरों के दूध का) इडली, डोसा, ढोकला, तन्दूरी रोटी आदि की पोषकता बढ़ जाती है। उपर्युक्त किण्व शाकाहारों में स्टार्च, कार्बोज, प्रोटीन, लोहा, कैल्सियम तथा विटामिन की गुणवत्ता बढ़ जाने से उनकी अवचूषण क्षमता भी बढ़ जाती है। किण्व एवं खमीरीकरण प्रक्रिया के दौरान अनेक एन्जाइम विटामिन आदि बढ़ जाते हैं जो भोजन को पचाने एवं सात्मीकृत होने मे सहयोगी हैं। दही में स्थित उपयोगी असंख्य सूक्ष्म जीवाणु आँतों के सामान्य स्वास्थ्य के लिए विटामिन बी आदि पोषक तत्त्व संश्लेषित करते हैं। माँसाहार से इतने उपयोगी पोषक तत्त्व किसी भी कीमत पर नहीं मिलते हैं। यही कारण है कि माँसाहारी प्रायः रुग्ण रहते हैं। सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि माँसाहारी अल्पायु होते हैं। जानवरों को लगाये गये एण्टीबायोटिक्स, कीटनाशी घातक औषधियाँ, कृत्रिम हार्मोन जैसे मुर्गी तथा गाय को सिलबेस्ट्रोल (एस्टोजन) दिया जाता है ताकि गाय एवं मुर्गियाँ माँस का सम्वंर्द्धन होकर तगड़ी हो जायें, बीमारी के कीटाणु, औद्योगिक शहरों के आसपास बहने वाले नदी नालों की मछलियों में सीसा, कैडमियम, पारा तथा अन्य रेडियो-सक्रिय तत्त्व हमारे शरीर में जाकर असाध्य चर्मरोग, कैंसर आदि पैदा करते हैं। विश्व में सर्वाधिक भोजन-विषाक्तता की घटनाएँ माँसाहार एवं शराब के कारण होती हैं। माँस का प्रोटीन गुर्दों को भयंकर रूप से क्षतिग्रस्त करता है। मिशिगन विश्वविद्यालय के डॉ. एल. एच. न्यूबर्ग ने चूहों को माँस खिला कर देखा कि उनके गुर्दे भयंकर रूप से क्षतिग्रस्त हो गये। सुप्रसिद्ध आहार विशेषज्ञ डॉ. फ्रेडरिक जे. स्टेर ने भी माना है कि प्रोटीन की दृष्टि से माँसाहार लेना अनुपयुक्त है।

40. ब्रिटिश आहारशास्त्री डॉ. एल. डब्लू. पी. डी. बरसों तक शोध कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि क्लोरोफिल के सभी प्रकार में आवश्यक एमिनो

एसिड प्रोटीन मिल जाते हैं। इन सारे वैज्ञानिक तथ्यों से यह सावित हो हो जाता है कि प्रोटीन की दृष्टि से माँसाहार करना अनेक रोगों को आमंत्रण देना है।

41. माँसाहार के घातक प्रभाव को देखते हुए विश्व में धीरे धीरे जनचेतना जागृत हुई है। शाकाहार आन्दोलन अब अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन वन गया है। आपको जान कर सुखद आश्चर्य होगा कि ब्रिटेन जैसे माँसाहारी देश में विगत तीन वर्षों के दौरान 1.9 करोड़ लोगों ने अर्थात कुल जनसंख्या के तिहाई हिस्से ने माँसाहार छोड़ दिया है। जनसाधारण के आकर्षण के केन्द्र राजकुमारी डायना, प्रिंस चार्ल्स, पॉप स्टार माइकल जैक्सन तथा अभिनेत्री सारा माइल्स व हेल्लीमिल्स जैसे लोग माँसाहार छोड़ कर शाकाहार अपना चुके हैं। इसका बहुत बड़ा कारण स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य है। विभिन्न आयुर्वैज्ञानिक शोधों के अनुसार स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य को अक्षुण्ण बनाये रखने तथा मानसिक तनाव से मुक्ति के लिए शाकाहार एक वेहतर उपाय है। इंगलैंड के रेस्तराओं एवं शिक्षण संस्थाओं की पाकशालाओं में शाकाहारी व्यंजन बढ़ रहे हैं। वहाँ के माँस-उत्पादक एवं विक्रेता अत्यधिक चिन्तित हैं। विगत दशाब्दियों में कैंसर, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप एवं गुर्दे के रोगों से मरने वालों की संख्या में माँसाहारियों का स्थान सर्वोच्च रहा है। अतः इन रोगों तथा मोटापा से मुक्ति के लिए सिर्फ ब्रिटेन ही नहीं, जर्मनी तथा अन्य माँसाहारी पाश्चात्य देशों में भी शाकाहार का प्रचलन बढ़ रहा है। पश्चिमी जर्मनी में हाल ही में हुए एक सर्वेक्षण व तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि वहाँ के शाकाहारी माँसाहारी की अपेक्षा ज्यादा स्वस्थ हैं, उनका वजन रक्तचाप तथा रक्त कॉलेस्टरॉल एवं लिपिड्स सामान्य रहता है। उनमें हृदय रोग का दौरा पड़ने की संभावना 70 प्रतिशत कम हो जाती है तथा वे कैंसर से भी कम पीड़ित होते हैं। माँसाहारियों में गुप्त रोग होने की संभावना अति प्रबल होती है। माँसाहारियों की तुलना में सामान्य कद वाले शाकाहारियों का औसत वजन 6 कि. ग्रा. तक कम पाया गया है। आयुर्विज्ञानियों का मानना है कि रक्तचाप तथा रक्त में चर्वी की वृद्धि कई प्रकार के हृदय रोगों का कारण है और माँसाहारियों में ये दोनों असामान्य रूप से बढ़े हुए

होते हैं। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में हो रही विभिन्न शोधों के आधार पर आइये, आप भी शाकाहार अपनाइये और रोग-मुक्ति, स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य का राज पाइये। अक्टूबर 1987 में प्रकाशित अमेरिका में किया गया एक शोध-निष्कर्ष भी उपयुक्त विचार की पुष्टि करता है।

26 | मीठा जहर : सफेद चीनी

हृदय रोग तथा अन्य कई रोगों का कारण चीनी

चीनी शब्द सुनते ही हम मिठास का अनुभव करते हैं, लेकिन शरीर पर पड़ने वाले इसके दुष्परिणामों से हम अपरिचित हैं। इसलिए वर्तमान समय में चीनी का भाव आसमान पर चढ़ रहा है।

चीनी वास्तव में विशुद्ध शर्करा यानि कान्सेन्ट्रेटेड कार्बोहाइड्रेट है। इसमें शर्करा के अतिरिक्त अन्य कोई भी पोषक तत्त्व नहीं पाया जाता। जब हम चीनी खाना शुरू करते हैं तो यह अपना दुष्प्रभाव डालना मुँह से ही शुरू कर देती है। सर्वप्रथम यह दांतों, मसूड़ों के बीच में फँस कर वहाँ फरमेन्टेशन (सड़ान) शुरू कर देती है। जिससे कुछ जीवाणु उत्पन्न होकर दाँतों को सड़ाने में सहायक होते हैं। इस स्थिति में असमय में ही सारे दाँत खराब हो जाते हैं। यह दुष्परिणाम चीनी को विभिन्न रूपों में खाने से ही होता है। प्रतिवर्ष अमेरिकी लोग दांतों की दवाइयों के पीछे 4 अरब रुपये खर्च करते हैं। स्काटलैंड में जब बच्चा 10 वर्ष का हो जाता है तो उसके दाँत सड़ने लगते हैं। ब्रिटेन में 16 वर्ष की उम्र तक पहुँचते ही बच्चों के एक-दो दाँत अवश्य निकाल देने पड़ते हैं। सिर्फ ब्रिटेन में लगभग 40 लाख दाँत यानि 4 टन दाँत निकाल दिये जाते हैं। इन सबके पीछे कारण रूप में चीनी की महत्वपूर्ण भूमिका है।

विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा किये गये सर्वेक्षणों एवं खोजों से पता चलता है कि 50 वर्ष के अन्दर समस्त संसार में बढ़ते हुए हृदय रोगों के कारणों में चीनी का स्थान सर्वोपरि है। अमेरिकी एवं पश्चिमी देशों में चीनी के धुआँधार प्रयोग से फैलते हुए हृदय रोग को देख कर चिकित्सा-वैज्ञानिक काफी

चिन्तित नजर आ रहे हैं। अभी हाल ही सन् अन्टोनिओं से प्रकाशित होने वाली "डॉ. सेल्टन्स हाइजिनिक रिव्यू" में श्री टी. सी. फ्राइ द्वारा लिखित एक सर्वेक्षण पढ़ने को मिला जिसके अनुसार सिर्फ अमेरिका में प्रति साल मरने वाले रोगियों में 54 प्रतिशत लोग हृदय रोग से सम्बन्धित होते हैं। वहां 30 साल के बाद प्रत्येक अमेरिकी किसी न किसी रूप में हृदय रोग से पीड़ित रहता ही है। भोजन में 2,10,00,000 लोग यानि लगभग सभी अमेरिकी सफेद चीनी किसी न किसी रूप में लेते हैं। वहां 1·25 पौण्ड चीनी की खपत प्रत्येक अमेरिकन द्वारा होती है यानि औसतन 200 से 300 ग्राम चीनी प्रति व्यक्ति प्रति दिन। वहाँ के व्यक्तियों के भोजन में इस हद तक चीनी की अधिकता मानो एक महान व्यसन ही बन गया है। आज हमारे देश में भी बढ़ती हुई चीनी की खपत को देख कर ऐसा लगता है कि वह दिन दूर नहीं, जब यहाँ भी मरने वालों में हृदय रोगियों की संख्या अत्यधिक होगी। वर्तमान समय में हमारे यहाँ भी मरने वालों में हृदय रोगियों की ही संख्या अधिक है। यद्यपि हमारे देश में अभी चीनी से होने वाले हृदय रोग से पीड़ितों की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा कम है, लेकिन अछूता नहीं।

अभी हाल ही में लन्दन के प्रोफेसर युडकिन द्वारा चीनी पर किये गये अन्वेपणों से पता चला है कि चीमी और हृदय रोग में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। अमेरिकी डॉ. कैलीयमेय कून्स तथा डॉ. मेडलिन वोमेक अपनी प्रयोग शाला में 270 चूहों पर चीनी का प्रयोग करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जिन चूहों को 19 प्रतिशत धान्य-तैल (कार्न आयल) तथा 50 प्रतिशत स्टार्च-युक्त भोजन (कार्न स्टार्च) दिया गया उनके रक्त में कोलेस्टराल का स्तर 172 ग्राम था। जबकि अन्य चूहों को जिन्हें 15 प्रतिशत-तैल (कार्न आयल) तथा स्टार्च के बदले 50 प्रतिशत चीनी दिया गया, उनमें कोलेस्टराल का स्तर 356 था जो कि स्टार्च खाने वाले चूहों के रक्त कोलेस्टराल के स्तर के दुगने से भी अधिक था। उन्होंने यह भी अध्ययन किया कि स्टार्च एवं हाइड्रोजेनेडेट आयल (डालडा) खाने वाले चूहों की अपेक्षा चीनी खाने वाले चूहों में रक्त कोलेस्टराल का स्तर ऊँचा है जबकि यह सर्वविदित है कि हाइड्रोजेनेटेड आयल रक्त कोलेस्टराँल का स्तर बढाने में बहुत ही महत्वपूर्ण

भूमिका निभाता है। उपर्युक्त प्रयोग यह सिद्ध करता है कि हाइड्रोजेनेटेड ग्रायल से भी खतरनाक चीनी है, हृदय रोग उत्पन्न करने में। कैलिफोर्निया के कुछ वैज्ञानिक डाक्टरों ने चीनी के विषय में बहुत ही दिलचस्प बात बतलायी है। उन डाक्टरों में है डॉ. जार्ज डवल्यू गॉफमैन पी. एच. डी, एम. डी , एलेक्स बी निकाल्स पी. एच. डी. तथा इ. वीरिजिनिया डोब्बीन। जी. पी. पुत्तनम द्वारा प्रकाशित पुस्तक "डायेटरी प्रीवेन्शन एण्ड ट्रीटमेन्ट आफ हार्ट डिजीज" में इन विद्वान वैज्ञानिक लेखकों का मानना है कि रक्त में दो प्रकार के लाइपोप्रोटीन पाये जाते हैं। ये लाइपोप्रोटीन फैट तथा प्रोटीन के सम्मिश्रण होते हैं। इनकी मात्रा रक्त में बढ़ जाने से हृदय के लिए खतरा उपस्थित हो जाता है। इन लाइपोप्रोटीन के बढ़ने के कारण दो हैं—प्रथम अधिक वसा या फेट खाने से, दूसरा अधिक कार्बोहाइड्रेट या चीनी खाने से। इन वैज्ञानिकों के अनुसार चीनी को खाने से रक्त में कोलेस्टराल अथवा लाइपोप्रोटीन की मात्रा बढ़ने के पीछे दो सिद्धान्त हैं :—

(1) पहला, जब हम अधिक मात्रा में कार्बोहाइड्रेट या चीनी खाते हैं तो वैसी परिस्थिति में हमारा शरीर ऊर्जा या शक्ति प्राप्त करने के लिए फैट की अपेक्षा कार्बोहाइट्रेट अथवा चीनी को अधिक उपयोग में लाता है। फैट का उपयोग शक्ति के लिए न हो पाने के कारण उसकी मात्रा रक्त में स्वतः बढ़ जाती है।

(2) दूसरा सिद्धान्त यह है कि शरीर अपने जैविक रासायनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप कार्बोहाइड्रेट या चीनी को फैट में परिवर्तन कर देता है। रक्त में पहले से ही फैटी एसिड की मात्रा उपस्थित रहती है। लेकिन जब हम अधिक कार्बोहाइड्रेट खाते हैं तो वैसी ही स्थिति में खाई गई अधिक कार्बोहाइड्रेट या शर्करा फैट में परिवर्तित होकर रक्त में फैटी तत्वों (कोलेस्टराल) की मात्रा को बढ़ा देती है।

चीनी संतृप्त या विशुद्ध कार्बोहाइड्रेट होने के कारण इसके पाचन के लिए विटामिन बी. कॉम्पलेक्स की आवश्यकता होती है। वास्तव में चीनी निर्माण के समय रिफाइनिंग क्रिया द्वारा चीनी के सारे पौष्टिक तत्व निकाल दिये जाते हैं। जब यह सफेद दानेदार विटामिन "बी" रहित चीनी छोटी

आँत में पहुँचती है तो वहाँ पर उपस्थित बैक्टोरियल फ्लोरा को समाप्त करना शुरू कर देती है, जो विटामिन "बी" कॉम्पलेक्स का निर्माण करते हैं। इस प्रकार से हमारे शरीर में चीनी खाने से विटामिन "बी" कम्पलेक्स की कमी होने लगती है। बाल्टर एच.ए डी.पी.एच.डी. तथा गिलबर्ट डाल्मडॉर्फ एम.डी. ने अपनी पुस्तक "द एक्टामिनोसिस" में लिखा है कि "थायमिन" जो कि विटामिन "बी" कॉम्पलेक्स ग्रुप का प्रमुख एवं प्रथम सदस्य है, की कमी से विभिन्न प्रकार के हृदय रोग हो जाते हैं। दोनों वैज्ञानिकों ने अपना प्रयोग कबूतरों पर किया है। कबूतरों में हृदय रोग को उत्पन्न कर और पुनः विटा-मिन "बी" को खिला कर उन लोगों ने हृदय रोग को दूर किया। एक अन्य पुस्तक "न्यूट्रिशन एण्ड डायट इन हेल्थ एण्ड डिजीज" में डॉ. जैम्स मैकलेस्टर एम. डी. द्वारा सूअरों पर विटामिन "बी" की कमी के प्रभाव का अध्ययन करके देखा गया कि उनके हृदय के दाहिने भाग में भयंकर दर्द महसूस हो रहा है। विटामिन "बी" की कमी से बेरी-बेरी नामक भयंकर रोग होता है। उसमें हृदय क्षतिग्रस्त हो जाता है एवं रक्तचाप बढ़ जाता है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि विटामिन "बी" रहित सफेद चीनी हमारे शरीर में एक-त्रित विटामिन "बी" कम्पलेक्स को भी विघ्वंस कर, हृदय रोग एव हृदय से सम्बन्धित तथा विटामिन "बी" कॉम्पलेक्स की कमी से होने वाले अन्य रोगों से ग्रसित कर देती है।

शिकागों के डॉ. ओ. पाल दो हजार लोगों का सर्वे कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सफेद चीनी खाने वालों को हृदय रोग की संभावना दुगुनी बढ़ जाती है। अमेरिकन डॉ. फ्रेड डी. निल्लर अपने 35 वर्षों के अनुभव से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि चीनी, मैदा आदि शराब से भी अधिक घातक है।

चीनी के हृदय पर प्रभाव का अध्ययन लन्दन के गुइज अस्पताल के प्रोफेसर इयानमेक्लाइड ने भी किया था। उनका भी मानना है कि चीनी की वजह से रक्त में कोलेस्टराल की मात्रा बढ़ जाती है जो कि रक्तचाप एवं हृदय रोग का कारण है।

जैरूसलम (इजराइल) के डॉ. ए. एम. कोहन ने अपनी शोधों से पता लगाया है कि यमन से आये यहूदियों में मूल इसराइलवासियों की तुलना में

कम दिल के दौरे पड़ते हैं। इनका एकमात्र कारण यहूदियों के भोजन में चीनी की कमी थी। आम लोगों की समझ में चीनी सिर्फ दाँतों के रोग को ही उत्पन्न करती है लेकिन वास्तव में ये आँतें, चर्म, वृक्क एवं मस्तिष्क सम्बन्धी बीमारियाँ भी उत्पन्न करती हैं। उन रोगों में मुख्य रूप से मंदाग्नि, कब्ज, गैस, बदहजमी, चर्मरोग, विटामिन "बी" की कमी सम्बन्धी रोग, सिरदर्द, चिड़चिड़ापन, इत्यादि होते पाये गये हैं। अमेरिकी डॉ इ. एम. अष्टाहमसन ने चीनी को ही "हाइपोग्लेसिमिया नामक रोग का कारण माना है जो इस समय योरोप एवं अमेरिका में काफी व्याप्त है। इसमें रोगी को कम-जोरी महसूस होती है, बार-बार पसीना आता है एवं काफी भूख लगती है।

चीनी हमारे शरीर में एसीडिटी उत्पन्न करती है। इसका एक कारण यह है कि यह "कान्सन्ट्रेट कार्बोहाइड्रेट" है यानि इसमें क्षार तत्त्व तथा खनिज लवण बिल्कुल नहीं होते हैं जो इनके पचाने में सहायक होते हैं। मात्र बच जाता है कार्बन (सी) हाइड्रोजन (एच 2) तथा आक्सीजन (ओ 2)। अतः जब इनकी हमारे शरीर में दहनक्रिया होती है तो उससे विशुद्ध कार्बोनिक एसिड बनाता है। इसे नाक द्वारा निकल जाना चाहिए, परन्तु इसी बीच कुछ रासायनिक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप वह लैक्टिक तथा पायरुविक एवं कुछ अन्य एसिड में परिवर्तित हो जाता है, जिससे इसके निष्कासन का कार्य मन्द पड़ जाता है।

मिठास से चर्मरोग का काफी सम्बन्ध है, इस तथ्य को कुत्ते पालने वाले अच्छी तरह जानते हैं। विशेषत: उन बच्चों में देखा जाता है जो हमेशा चीनी खाते रहते हैं। चीनी हमारी हड्डियों को काफी कमजोर बनाती है, क्योंकि इसके चलते शरीर द्वारा कैलसियम एवं फास्फोरस की चयापचय क्रिया तथा अवशोपण में काफी बाधा पहुंचती है। इसका विषद् वर्णन फ्लोरिडा के डामेलविन पेज डी. डी. एस. ने अपनी पुस्तक "डिजेनरेशन" में किया है। इनका यह भी मानना है कि चीनी का उपयोग गठिया रोग होने का उत्तरदायी है।

लन्दन विश्वविद्यालय के प्रो. प्लीम्नर अपनी खोजों से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सफेद चीनी खाने से शरीर में बी कॉम्पलेक्स की भयंकर कमी हो जाती है फलतः प्रारम्भिक कष्ट शुरू होकर मधुमेह तथा कैंसर हो जाता है।

जी हाँ चीनी का सम्बन्ध आधुनिक सभ्यता के प्रसिद्ध एवं घातक रोग कैंसर से भी है। चीनी एवं कैंसर से सम्बन्ध को लेकर सदियों से खोज होती रही है। इसका विस्तृत वर्णन 1906 में प्रकाशित डॉ. जान सां मैकेन्जे द्वारा लिखित "दि नेचर एण्ड ट्रिटमेन्ट आफ कैंसर" तथा दूसरे डॉ. जे. एल्लिस बारकर द्वारा लिखित "कैंसर हाउ इट इज काज्ड, हाउ इट कैन बी प्रिवेंटेड" नामक पुस्तक में किया गया है। 1923 के मेडिसिन में नोबल पुरस्कार विजेता विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. आट्टोमेयर हाफ—जो कि पेनसिलवानिया विश्व-विद्यालय के मेडिकल स्कूल में प्रोफेसर रह चुके हैं, मानना है कि चीनी के अत्यधिक प्रयोग से कैंसर होने की सम्भावना अधिक बढ़ जाती है।

डॉ. हॉफमैन ने फैंकफोर्ट विश्वविद्यालय के पैथोलॉजिकल इन्स्टीट्यूट के डायरेक्टर डॉ. बर्नाड फिश्चर-वासेल्स का हवाला देते हुए कहा है कि उनका मानना है कि अधिक कार्वोहाइड्रेट यानी शर्करा का अत्यधिक प्रयोग खतरे से खाली नही है क्योंकि इससे कैंसर जैसे घातक रोग के होने की संभावना बढ़ जाती है।

इतना ही नहीं, चीनी खाने का सम्बन्ध मच्छर काटने से भी है। जो अधिक चीनी खाते हैं उन्हें मच्छर अधिक खाते हैं। कारण उनके रक्त में रासायनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप कुछ ऐसे तत्त्व वनते हैं जो मच्छरों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। डॉ. ई. एम. बेयार्ड द्वारा लिखित "डाउन द पीक" नामक लेख में मच्छर एवं चीनी के सम्बन्ध में अच्छा वर्णन किया गया है। वाशिंगटन के डॉ विलियम एम्बर का मानना है कि 75 वर्ष की आयु के बाद चीनी का प्रयोग भूल कर भी नहीं करना चाहिए। डॉ. वेस्टन प्राइस ने अपनी पुस्तक "न्यूट्रिशन एण्ड फिजिकल डिजेनरेशन" में बतलाया है कि चीनी के प्रयोग से साइनस ट्रबल उपस्थित हो जाती है। खुद उनकी पत्नी सदा साइनस ट्रबल से पीड़ित रहती थी। उन्होंने उनके भोजन से चीनी को हटा कर इस भयंकर रोग से छुटकारा दिलाया। वर्जिनिया के डॉ. टी. ए. लम्ब का मानना है कि बच्चों की बढ़ोतरी (ग्रोइंग पीरियड) के समय चीनी का प्रयोग काफी खतरनाक होता है।

टोरंटो के डॉ. होपर और न्यूयार्क के डॉ. काक अपने अपने किये गये

परीक्षणों से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पश्चिम में बच्चों में बढ़ रहे मानसिक रोग के पीछे उनके भोजन में चीनी का प्रचुर मात्रा में होना ही है क्योंकि पश्चिम का प्रत्येक बच्चा प्रतिदिन किसी न किसी रूप में 20-25 चम्मच चीनी खाते हैं। एक अन्य अमेरिकन डॉ. लारेंस का मानना है कि चीनी का दुष्प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर भी होता है। उनका कहना है कि बच्चों में इस दुष्प्रभाव के लक्षण अधिक देखने को मिलते हैं। अभी हाल ही ब्रिटेन के कुछ आयुर्वैज्ञानिक बरसों के प्रयोग के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि चीनी खाने से बच्चों की स्मरणशक्ति कम होती है, मानसिक विकास रुक जाता है तथा वे मेन्टली रिटार्डेड हो जाते हैं। औरतों में इसके अत्यधिक प्रयोग से कमजोरी एवं स्नायुदौर्बल्य उपस्थित हो जाता है। औरतों की माहवारी के समय दर्द का होना चीनी से भी सम्बन्ध रखता है। डॉ. लारेंस ने सीफी जैकावस्का नामक एक महिला का उदाहरण दिया है जो निरामिषाहारी होते हुए भी अपने भोजन में प्रतिदिन 100 ग्राम चीनी लेती थी। 30 वर्ष की अवस्था तक पहुँचने के बाद माहवारी के समय असह्य पीड़ा महसूस करने लगी। जब उसने चीनी की मात्रा कम कर दी तो उसका दर्द भी कम होने लगा।

डॉ. सैण्डलर फारबीड्स का मानना है कि सभी प्रकार की रिफाइंड चीनी से रक्त में शर्करा की कमी (लौ ब्लड शुगर) तथा पोलियो उत्पन्न होता है। रक्त में शर्करा की कमी का सम्बन्ध शरीर के क्रियाविज्ञान से है।

शिकागो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. सिडिनी ए. पोडिश का विश्वास है कि भोजन में चीनी की मात्रा कम करके थके हुए व्यक्ति की थकान दूर की जा सकती है।

काश, कितना अच्छा होता यदि हम डॉ. युडकिन द्वारा वर्षों तक किए गए अन्वेषणों पर आधारित इस वक्तव्यको समझें--"चीनी की हमारे शरीर में कोई भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि शारीरिक पोषण की दृष्टि से जितनी चीनी की शरीर को आवश्यकता पड़ती है वह शरीर साग, भाजी, फल, अनाज इत्यादि से स्वयं ग्रहण कर लेता है।" यदि विवेकपूर्वक विचार कर भोजन में किसी वस्तु का, किस रूप में किस मात्रा में उपयोग किया जाय और सफेद

चीनी का उपयोग टाल दिया जाये तो चीनी से होने वाले रोगों से अच्छी तरह बचा जा सकता है। डॉ. गक्रिशन हुंजा ने स्टेट की पहाड़ी जातियों पर सर्वे व शोध कर पता लगाया कि उनके उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का राज चीनी नहीं खाना है।

यदि चीनी लेने की एक आदत सी पड़ गयी है वैसी स्थिति में चीनी के बदले अन्य शर्करा वाली चीज का प्रयोग करें जो शरीर एवं मन के लिए शक्तिवर्धक एवं स्वास्थ्यवर्धक हैं, क्योंकि इन सारी शर्कराओं में वे सारे पौष्टिक तत्त्व मौजूद रहते हैं जो सफेद चीनी में नहीं पाये जाते है। वे निम्न हैं :—(1) शहद (2) गुड़ (3) राब (4) पीली शक्कर या बूरा (5) किशमिश, काली द्राक्ष अथवा मुनक्का का रस (6) गन्ने का रस या गन्ना (7) नीरा, नीरा का गुड़ या चीनी। उपर्युक्त शर्कराओं का सेवन साधारण स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं होता।

27 | शीतल पेय पीओ : मूर्ख तथा बीमार बन कर जीओ

सभ्य परन्तु मूर्ख समाज की बेवकूफीपूर्ण जीवन-चर्या का ही प्रतिफलन है कि विश्व में विभिन्न शीतल पेयों के नाम पर पानी तथा सेक्रीन एवं कुछ घातक रसायनों का घोल 15 से 20 रुपये प्रति लीटर बिकता है। सिर्फ भारत में प्रतिवर्ष 85 से 90 करोड़ बोतल शीतल पेय की खपत है। इससे 17 करोड़ तक आमदनी भारत सरकार को होती है। इसके अतिरिक्त करोड़ों की आमदनी शीतल पेय बनाने वाली कम्पनियों को होती है। शीतल पेय का सर्वप्रथम व्यापारिक उत्पादन 1809 ई. में ब्रिटेन में शुरू हुआ। भारत या दुनिया के सभी देशों में शीतल पेय के रूप में कोकाकोला काफी प्रसिद्ध पेय रहा है। जनता सरकार के राज्य में कोकाकोला कम्पनी को यहाँ से विदा होना पड़ा, लेकिन पुनः पेप्सीकोला यहाँ आ रहा है। आज पेय के रूप में विश्व में कोकाकोला का ही सर्वाधिक आधिपत्य तथा खपत है। इसका कारण उसका कोई विशेष गुण नही है, बल्कि धुआँधार प्रचार से बुद्धिहीनों के मानसिक एवं शारीरिक शोषण का एक अद्भुत नमूना है। कोकाकोला

इतिहास के अनुसार इसके आविष्कारक फार्मासिस्ट जान स्टीस पेवस्टर्न ने अनोखे ढंग से अकस्मात इसका आविष्कार कर डाला। वे बना रहे थे कुछ और; बन गया कोकाकोला। प्रथम वर्ष इसकी बिक्री से पैवस्टर्न ने 50 डॉलर कमाये, जिसमें 46 डॉलर विज्ञापन पर खर्च किया। दूसरे साल एक हजार गैलन की बिक्री हुई जिसमें मुनाफे के आधे हिस्से को विज्ञापन पर खर्च किया गया। एक आँकड़े के अनुसार सिर्फ 1941 में दस हजार, 1948 में 20 लाख, 1953 में 30 लाख तथा 1959 में 40 लाख डॉलर विज्ञापन पर खर्च किये गये। इस विज्ञापन के फलस्वरूप 1968 में कम्पनी ने दस करोड़ डॉलर का शुद्ध मुनाफा कमाया। विज्ञापन के बल पर ही 145 देशों में कोकाकोला की सर्वाधिक खपत है। सिर्फ अमेरिका में 130 तथा बाहर के देशों में 730 फैक्ट्रियाँ कोकाकोला बनाती हैं। कोकाकोला कम्पनी ने मनुष्य को जन्मजात मानसिक गुलाम बनाने के लिए बच्चों के लिए पाठशालाएँ तथा मनोवैज्ञानिक ललक पैदा करने के लिए खिलौने तथा बस की सेवाएँ मुफ्त देती है। ऐसा कहा जाता है कि कोकाकोला बनाने के फार्मूले का रहस्य विश्व के सिर्फ तीन लोगों के पास है। ऐसी व्यवस्था की गई है कि ये तीनों कभी भी आपस में नहीं मिलें। इनमें से किसी एक की मृत्यु होने पर कम्पनी की कार्यकारिणी काफी खोजबीन के बाद किसी भरोसेमंद व्यक्ति को इसका राज बताती है। राजदार व्यक्ति के साथ शर्त यह होती है कि वह न तो अपनी कम्पनी खोलेगा और न वह कम्पनी छोड़ कर दूसरी कम्पनी में जायेगा। वैसे कोकाकोला का लिखा हुआ फार्मूला-रहस्य अटलांटा के किसी बैंक में सुरक्षित है। यह है दुनिया के एक प्रमुख पेय की दास्तान। वास्तव में सभी प्रकार के पेयों का राज करीब-करीब एक जैसा ही है।

लोगों को मूर्ख बनाने के लिए विज्ञापन के सहारे उन्हें इस प्रकार प्रसारित किया जाता है कि लोग उसके दीवाने हो जाते हैं। प्रतिदिन 3,010 लाख कोकाकोला बोतल पीया जाता है।

सभी शीतल पेयों में कार्बनडाइऑक्साइड को भारी दाब पर घोला जाता है। सर्वप्रथम कार्बनडाइऑक्साइड आविष्कारक जोजफ प्रिस्टले ने गंधकाम्ल में चाक घोली। प्रतिक्रियास्वरूप कार्बनडाइऑक्साइड निकली।

चखने पर स्वादिष्ट थी। इस प्रकार सोडावाटर का जन्म हुआ। बाद में इसे ह्विस्की तथा जिन के साथ पिया जाने लगा। फिर इसे फलों के रस तथा विभिन्न एसेन्स में मिला कर पीने लगे। इस प्रकार शीतल पेयों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। लोगों को आकर्षित कर मूर्ख बनाने के लिए इन पेयों में अनेक सुधार किये गये। पेय का ढ़क्कन खोलने के बाद उसमें बुलबुलों का उफान बना रहे, इसके लिए इसमें इथाइलिन ऑक्साइड पॉलिमर्स जैसे घातक रसायन मिलाये जाने लगे। अत्यधिक मिठास के लिए चीनी से दुगनी मीठी सैक्रिन मिलायी गई। संतरों, नींबू, सेब व अनान्नास आदि स्वादिष्ट खट्टे फलों का स्वाद उभारने के लिए साइट्रिक एसिड, अंगूर के स्वाद के लिए टारटरिक एसिड, कोलापेय में कोला के बदले फॉस्फोरिक एसिड मिलाया जाता है।

अनेक प्रकार के कृत्रिम संश्लिष्ट रंग जैसे स्ट्राबेरी के लिए गुलाबी, नींबू तथा संतरा जैसा रंग दिखाने के नारंगी रंग मिलाया जाता है। प्रारम्भ में विभिन्न रसों के भ्रम में लोग इसे पीते थे। 23 मार्च 1985 को जारी एक अधिनियम के अन्तर्गत बोतलों एवं विज्ञापनों पर यह स्पष्ट लिखना आवश्यक हो गया कि इनमें फलों का रस या गूदा नहीं है। साथ ही बोतलों पर फलों को चित्रित करने पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया। बोतल में लुभावना कुहरे जैसा दृश्य उत्पन्न करने के लिए सिट्रस आयल में ब्रोमिनेटेड वनस्पति तेल के साथ गम अरेबिक (गोंद) मिला कर इसे जोर-जोर से हिलाते हैं। गम अरेबिक में भयंकर विष पी. सी. बी. की उपस्थिति पाई गयी है। आयु-वैज्ञानिकों की दृष्टि में इस प्रकार से सभी पेयों का दुष्प्रभाव भयंकर रूप से होता है। सभी पेय प्यास बुझाने तथा थकान मिटाने के नाम पर सिर्फ ललक पैदा करते हैं। भारी दाब वाली कार्बनडाइऑक्साइड गैस में भी [illegible] पैदा करती है। इन पेयों से भयंकर कुपोषण, कैंसर, दाँत की खराबी, मसूड़ों की कमजोरी आदि रोग होते हैं। अमेरिकी मेडिकल अनुसंधान संस्थान ने कोलापेय के दाँतों पर दुष्प्रभाव का अध्ययन किया है। डॉ. [illegible] तथा उनके सहयोगियों ने पता लगाया कि यह दाँतों की चमक एवं [illegible] को भयंकर रूप से क्षतिग्रस्त करता है। कैल्शियम घुल कर बाहर निकल जाता है। सभी सॉफ्ट पेय शरीर में जाकर [illegible] की कमी

पैदा करते हैं फलतः कुपोषणजन्य अन्य बीमारियाँ होती हैं। इन पेयों में स्थित फॉस्फोरिक अम्ल हाइपरएसीडिटी वालों के लिए अत्यन्त जानलेवा है। ये शरीर में प्रोटीन की कमी पैदा कर यकृत को क्षतिग्रस्त करते हैं। गुर्दों पर घातक प्रभाव डाल कर गुर्दों का कैंसर पैदा कर सकते हैं।

सभी प्रकार की पत्रिकाओं तथा दूरदर्शन पर थम्स अप, डबल सेवन, नोवाकोला, कैंपाकोला, पेप्सी कोला, गोल्डस्पाट, विमटो, लिम्का आदि विभिन्न पेयों की रंगीन तथा मौज मस्ती के दृश्यों का विज्ञापन ऐसे स्वप्नलोक की कल्पना में ले जाता है कि व्यक्ति अपनी बुद्धि व विवेक को खोकर गुलाम मानसिकता का शिकार बन जाता है और अनेक रोगों के चंगुल में फँस जाता है। विवेक को जगा कर इन घातक पेयों से बचना चाहिए।

28 | कोको हानिकारक है

वा. ना. **Erythroxylum Cocalum** अं. **Coca, Cacaine Plant** थियोब्रोमाइको कोआ नामक वृक्ष की फलियों के बीज को पीस कर कोको तथा चाकलेट बनाई जाती है। इसकी खेती जावा तथा ईस्ट व वेस्ट इण्डीज में होती है। इसके पत्ते गहरे हरे, पुष्प पीताभ-श्वेत, फल छोटे कड़े तथा गहरे लाल रंग के होते हैं। इसकी पत्तियाँ कड़वी तथा उत्तेजक होती हैं। यह Erythroxylaceac परिवार का मुख्य सदस्य है। इसकी पत्तियों से कोकेन क्षराभ प्राप्त किया जाता है। सर्वप्रथम कोको के फल से बीजों को पृथक कर खमीरीकरण से इसके तीखेपन को कम किया जाता है। फिर इसे भूनने से सुगन्ध बढ़ जाती है। इसमें 20% वसा होने से भूनते समय वसा पिघल कर निकलने लगती है। वसा का कुछ भाग निकाल कर सूखे द्रव्य को साँचों में जमाया जाता है। फिर इन्हें पीस कर चूर्ण बनाते हैं। जमे भाग को चॉकलेट तथा चूर्ण को कोको पेय के रूप में पिया जाता है। चॉकलेट में 50% तथा कोको चूर्ण में 6 से 35% वसा होती है। कोको चूर्ण में 10% स्टार्च तथा चॉकलेट में 8% स्टार्च, 6% घुलनशील एल्ब्यूमिन, 6% अघुलनशील अल्ब्यूमिन तथा 2.75% क्षार लवण होता है। इसके अतिरिक्त इसमें कैफिन, थिमोब्रोमिन, उड़नशील सुगन्धित तेल तथा टैंनिन (1.9%) होता है।

29 कॉफी और चाय : हमारे स्वास्थ्य के लिए घातक है

कॉफी (वा. ना. Coffea arabicalinn अं. Coffee)

यह रुबियेसि (Rubiaceae) परिवार का प्रमुख मादक सदस्य है। दक्षिणभारत में केफिया अरेबिका नामक 6 से 20 फुट सदाबहार छोटे वृक्ष या झाड़ी से इसके बीजों को प्राप्त कर भून कर पीसा जाता है। यह भूरे रंग का पावडर ही कॉफी कहलाता है। कॉफी की कुछ जंगली जातियाँ हिमालय तथा दक्षिण में होती हैं। कॉफी की प्रचलित जाति अरबों द्वारा एबीसिनिया से लाई गयी है। कॉफी के फूल सफेद तथा फल के अन्दर सेम के बीज के आकार के दो बीज होते हैं। कॉफी के फल को धूप में या कृत्रिम ढंग से सुखा कर हरे रंग वाला बीज निकाला जाता है। हरे कच्चे बीजों में सुगन्ध कम होती है परन्तु भूनने से वह बादामी तथा सुगन्धित हो जाता है। इसमें कार्बनडाइ-ऑक्साइड गैस बन कर बढ़ जाती है तथा कार्बोज लगभग खत्म हो जाते हैं। इस प्रकार कार्बनडाइऑक्साइडयुक्त कॉफी उच्चतम गुणवत्ता की मानी जाती है।

कॉफी में टैनिक एसिड 32.94% कैफिन 1.21% डेक्स्ट्रीन 8.55% जल 19.23% नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ 12.07% वसायुक्त पदार्थ 15% तथा क्षार पदार्थ 5% होते हैं। इसके हरे बीजों में 95% तक प्रोटीन तथा 14 एमिनो एसिड पहचाने गये हैं। इसमें स्थित कैफीन, वाष्पशील सुगन्धित उत्पत तेल, टैनिन आदि उत्तेजक तत्त्व के कारण, यह अति हानिकारक है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन तथा स्नायु-संस्थान पर होता है।

एक कप कॉफी में 100 से 120 मि. ग्रा. कैफिन पाया जाता है। कॉफी में किसी प्रकार का पौष्टिक तत्त्व नहीं पाया जाता। कॉफी में पाया जाने वाला "कैफिन" एक प्रकार का "अल्कालायड" विष है। प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि कैफिन का एक बूंद विष किसी जन्तु के शरीर में प्रविष्ट कराया जाय तो कुछ ही मिनटों में उस जन्तु की मृत्यु हो जायेगी। इस प्रकार हम देखते है कि यह कितना घातक विष है। यदि बहुत ही नाममात्र की कैफिन मस्तिष्क में पहुँचायी जाय तो शरीर में ऐंठन व आक्षेप होने लगते हैं। कॉफी

पीने से लोगों में उसकी आदत भी पड़ जाती है। इसका कारण यह है कि कॉफी पी जाने पर शरीर के तंत्रिका-तन्तुओं एवं रक्तवाहिनियों को उत्तेजित कर स्फूर्ति देती है लेकिन बाद में आदमी की कार्यक्षमता को कम करती चली जाती है। कॉफी से निम्न प्रकार के घातक रोग होते हैं :—

1. पेट का अल्सर :—अमेरिकन डॉ. जे. ए. रोश तथा ए. सी. इवी ने कुछ जन्तुओं पर कैफिन का प्रयोग करके कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला है। (1) कैफिन गैस्ट्रो-ड्यूडिनल अल्सर उत्पन्न करता है (2) कैफिन रक्तवाहिनियों पर स्थायी विषाक्त प्रभाव भी डालता है। आगे चल कर मानसिक उद्वेग जैसे, भय, क्रोध, ईर्ष्या इत्यादि की स्थिति उत्पन्न होती है। (3) कैफिन गैस्ट्रिक जूस के प्रवाह को उत्तेजित करता है।

2. हृदय एवं रक्तचाप :—हाल के अनुसन्धानों से पता चला है कि कॉफी हृदय रोग उत्पन्न करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, हालांकि इस पर खोज काफी अर्से से हो रही है। डॉ. जेम्स एस. मैक्लेस्टर एम. डी. ने भी अपनी पुस्तक "स्वास्थ्य एवं रोग में पोषण एवं आहार" में लिखा है कि कॉफी रक्तदाब को भी बढ़ा देती है और वृक्कीय क्षमता में उत्तेजना लाती है। एच. एम. मार्विन एम. डी. ने अपनी पुस्तक "आप तथा आपका स्वास्थ्य" में बतलाया है कि शराब, तम्बाकू तथा कॉफी का प्रभाव हमारे शरीर पर प्रायः एक सा ही होता है। हृदय की गति कॉफी पीने के बाद बढ़ जाती है। मैक्स एम. रोजनबर्ग एम. डी. अपनी पुस्तक "इनसाईक्लोपेडिया ऑफ मेडिकल हैल्थ" में लिखते हैं कि हृदय रोग, हृत्-शूल उच्चरक्तचाप, पेट व यकृत सम्बन्धी बीमारियों, चर्म रोग, गठिया में कॉफी का प्रयोग भूल कर भी नहीं करना चाहिये।

3. कॉफी और कैंसर :—कॉफी में स्थित "टार" नामक विशेष प्रकार का विष है जो कैंसर पैदा करता है। अमेरिकन वैज्ञानिक डा. ए. च. रोफ्फो ने 1939 में एक प्रसिद्ध पत्रिका "बुलेटिन डेल ईन्स्टीट्यूटो डे मेडिना एक्स-पेरिमेन्टल" भाग 15 में कॉफी के विषय में अपना एक लेख निकाला था, जिसमें बताया गया था कि कॉफी में 'टार' विष भी पाया जाता है। वे अपने प्रयोगों द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि उस 'टार' के गुण ठीक उसी

प्रकार के हैं, जिस प्रकार के तम्बाकू से निकलने वाले टार या कोलटार के हैं। कोलटार को वैज्ञानिकों द्वारा अनेक पशुओं में प्रविष्ट (इन्जेक्ट) कराके कैंसर उत्पन्न किया गया। डॉ. ए. एच रोफ्फो ने अपनी प्रयोगशाला में कॉफी में होने वाले टार विष को कुछ जानवरों में (इन्जेक्ट) प्रविष्ट करा कर देखा कि टार से 73 प्रतिशत जानवरों में ट्यूमर पैदा होकर वही ट्यूमर बाद में कैंसर में परिवर्तित हो जाता है। बाद में उन्होंने अपना कॉफी का प्रयोग चूहों पर भी किया। चूहों को बरावर थोड़ी थोड़ी मात्रा में कॉफी देते रहे और तब अन्त में यह निष्कर्ष निकला कि कॉफी का लगातार प्रयोग पेट और आँतों को क्षतविक्षत कर देता है तथा बाद में वही अल्सर और कैंसर के रूप में परिवर्तित हो सकता है।

एक अन्य पत्रिका केमिकल एकस्ट्रेक्स (1939) भाग 33 में कुछ खरहों पर किये कॉफी के कैंसर सम्बंधी प्रयोग का निष्कर्ष छपा है, जिसमें कहा गया है कि उन खरहों में 70 प्रतिशत पैपीलोमाज (सामान्य ट्यूमर) से ग्रसित पाये गये और यह पैपीलोमाज अन्त में कैंसर ट्यूमर में परिवर्तित हो गये। कैंसर उत्पन्न करने वाले पदार्थों में रसायन पदार्थ (कैमिकल) बेंजापाइरिन भी होता है जो कॉफी की जड़ों में पाया जाता है।

कॉफी में पाये जाने वाले विष कैफिन का घातक प्रभाव हमारे मस्तिष्कीय कोषाणुओं ब्रेन तथा नर्व टिशू पर भी होता है। कैफिन के विषय में डॉ. विलियम सलान्त तथा जे. बी रेजर ने अपनी पुस्तक "द टॉक्सीसिटी ऑफ कैफिन" में कुछ वर्णन किया है। उनका यहाँ तक कहना है कि इसका प्रभाव मार्फिन से भी घातक होता है। कॉफी का प्रभाव हमारे रक्त में उपस्थित शर्करा पर भी होता है जिसका विषद् वर्णन डॉ. अब्रलममन ने अपनी पुस्तक "बाडी, माइण्ड एण्ड शूगर" में किया है। उनका कहना है कि कॉफी में पाया जाने वाला "कैफिन" हमारे शरीर में स्थित अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को भी उत्तेजित करता है। विशेषतः एड्रिनल नामक अन्तःस्रावी ग्रन्थि पर इसका प्रभाव अधिक होता है। एड्रिनल ग्रन्थि के उत्तेजित होने से उसका स्राव बढ़ जाता है। यकृत में स्थित ग्लाइकोजिन ग्लूकोज में परिवर्तित हो जाता है। जब ग्लूकोज रक्त में बढ़ जाता है तो उसके पाचन के लिये पैंक्रियाज के द्वितीय

खण्ड के 'ब' भाग में काफी मात्रा में इन्सुलिन निकलता है। बाद में पैंक्रियाज का द्वितीय भाग (आइलैड्ण्स ऑफ लैंगर-हेन्स) उत्तेजित होते हैं। यह स्थिति लगातार बनी रहने के कारण इन्सुलिन की मात्रा रक्त में बढ़ जाती है। वह बढ़ा हुआ इन्सुलिन रक्त-शर्करा को समाप्त करने लगता है जिसके कारण हाइपोग्लूसेमिया अथवा हाइपरइन्सुलिज्म हो जाता है। इससे रोगी के शरीर में शर्करा की कमी पड़ जाती है जो ऊर्जा का बहुत बड़ा स्रोत होता है और तब रोगी में कमजोरी, आलसीपन नर्वसनेस के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं।

कॉफी पीने से थायरॉइड ग्रन्थि सम्बन्धी बीमारियाँ भी हो जाती हैं। औरतों एवं गर्भवती स्त्रियों पर कॉफी के प्रभाव का अध्ययन करते हुए प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक डा. हिन्ज फिश्चर का मानना है कि गर्भ पर इसका दुष्प्रभाव बहुत ही घातक होता है। इससे भ्रूण का विकास रुक जाता है। गर्भस्थ बच्चों के यकृत, गुर्दों तथा रक्तवाहिनियों के रक्त-भ्रमण में कॉफी के परिणामस्वरूप बहुत वाधा उत्पन्न होकर शोथ एडिमा एवं स्वेलिंग सूजन हो जाती है। गर्भस्थ बच्चे की चमड़ी नष्ट हो जाती है एवं यकृत सम्बन्धी बीमारियाँ भी हो जाती हैं। प्लासेन्टा जिसमें बच्चा ढ़ँका रहता है, सूज जाता है या किसी रोग का शिकार बन जाता है। इसलिये गर्भवती स्त्रियों को सभ्यता या अन्य पार्टी के नाम पर कॉफी का प्रयोग स्वयं एवं होने वाले बच्चों के प्रति खतरे से खाली नहीं है क्योंकि उपयुक्त प्रयोग का परिणाम गर्भवती मादा खरहों पर करके प्राप्त किया गया है।

डॉ. लियो बी. जेनिस एम. डी. अपनी पुस्तक "हैल्थ ईअर बुक" में लिखते हैं कि मोटे आदमियों को चाहिये कि कॉफी पीना बन्द कर दें।

अमेरिकन प्रतिवर्ष करीब 250 मिलियन या एक ट्रिलियन कप कॉफी पीते हैं। समस्त संसार का 62 प्रतिशत कॉफी सिर्फ युनाईटेड सटेट्स खरीदता है। अमेरिकन कॉफी की एक कम्पनी 57 मिलियन डालर सिर्फ प्रचार प्रसार पर खर्च करती है। आप इसी से पता लगा सकते हैं कि कॉफी का प्रयोग अमेरिका में कितना होता है। इसका दुष्प्रभाव हमारे भारत पर भी पड़ रहा है। अमेरिका में बढ़ते हुए रोगों के अन्य कारणों में कॉफी भी

एक महत्वपूर्ण कारण है। हालांकि भारतवर्ष अमेरिका से कॉफी के प्रयोग की दृष्टि से अभी शैशवावस्था में है, लेकिन जिस कदर इसका प्रयोग बढ़ रहा है, उसे देखते हुए कहा जा सकता हैं कि आने वाला समय रोगों की दृष्टि से दुःखद होगा।

येल विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ मेडिसिन के फारमाकोलोजी के प्रोफेसर डा. विलियम टी साल्टर का कहना है कि कैफिन के प्रयोग से अनिद्रा, हृदय गति का बढ़ना, माँसपेशीय कम्पन (मस्कूलर ट्रेमर्स) इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। येल विश्वविद्यालय के ही दूसरे प्रोफेसर डा. बी. ओसबोर्न का मानना है कि कैफिन जो कि कॉफी का प्रमुख तत्त्व है, मस्तिष्कीय एवं स्नायु की थकान लाती है। कॉफी पीने से रक्तचाप बढ़ जाता है। प्रतिदिन कॉफी का प्रयोग हानिप्रद सिद्ध हो रहा है। इसीलिये शिकागो सिटी के स्वास्थ्य आयुक्त डा. डब्ल्यू ए. इवान्स का कथन है कि कॉफी दवा है तथा इसे दवा के ही रूप में प्रयोग करना उचित है, न कि दैनिक पेय के रूप में।

हाल में हमारे यहाँ भी विभिन्न वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा कॉफी के दुष्परिणामों पर खोज की गई है जो चालू भी है। अहमदाबाद के सरकारी अस्पताल का औषधि प्रभाव–विज्ञान विभाग काफी परीक्षणों के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि कॉफी मनुष्य जाति के लिये काफी घातक सिद्ध हो सकती है क्योंकि इसके सेवन से मानव जाति का विकास रुक जाता है, एवम मानव हृदय पर इसका कुप्रभाव पड़ता है। उक्त विभाग ने अपना प्रयोग चूहों से शुरू किया है। अस्पताल के अधीक्षक एम.एन. जिन्दीयाल के अनुसार कॉफी के घातक परिणामों पर प्रयोग अभी महीनों चलेगा, जिसका निष्कर्ष बाद में प्रकाशित किया जायेगा।

चाय (वा. ना. Camelliasinensis अं– Teaplant)

यह Theace (Ternestroemiaceae) परिवार का प्रमुख मादक पौधा है। कुछ वनस्पतिशास्त्री चाय को आसाम का आदिवासी पौधा मानते हैं, तो कुछ इंण्डोचीन तथा यूनान का निवासी बताते हैं। पेय के रूप में इसका उपयोग सर्वप्रथम चीन से प्रारम्भ हुआ। चाय की सूखी पत्ती होती है। चाय की पत्ती 2½ से 5 से. मी. लम्बी तथा 1½ से 2½ से. मी. चौड़ी होती है।

चाय की ताजा पत्तियों को वाष्प से सुखा कर हरी चाय तैयार करते हैं। इसकी तीव्रता कम होती है परन्तु इसमें टैनिन ज्यादा होता है। सामान्यतः चीन की हरी तथा भारत की काली चाय प्रसिद्ध है। चाय में मुख्यतः 6% तक कैफिन या थीन, 0.6% उत्पत तेल, 6-12% टैनिक एसिड, 0.5% क्षार, तथा 5% क्षार लवण तथा नाइट्रोजन युक्त पदार्थ होते हैं। 250 ग्राम चाय में प्रोटीन 0.9 ग्राम, वसा 1·1 ग्राम, कार्बोज 16.5 ग्राम, Ca-0.034 मि. ग्रा., P-0.0·25 मि. ग्रा., वि. ए-15 अ. ई, डी-4 अं. ई. इसके अतिरिक्त इसमें एल्ब्यूमेन सोल्युविल डेक्स्ट्रीन, पेक्टिन, पेक्टिन एसिड तथा न्यून मात्रा में विटामिन P होता है। अर्थात् पोषण की दृष्टि से चाय अति हीन है। चाय में टैनिन, कैफिन, टैनिक एसिड आदि भयंकर उत्तेजक एवं स्वास्थ्यघातक पदार्थ है। टैनिक, एसिड पाचन-संस्थान को कमजोर बना कर कब्ज पैदा करता है। कैफिन स्नायुओं को उत्तेजित एवं क्षतिग्रस्त करता है।

चाय का स्वास्थ्य से सम्बन्ध :—

चाय के मुख्य रूप से तीन घटक होते हैं :—(1) कैफिन (2) टैनिन (3) एक प्रकार का तैलीय द्रव। चाय में 2.5 से 5 प्रतिशत कैफिन तथा 7 से 14 प्रतिशत टैनिन होता है। एक कप चाय में करीब $1\frac{1}{2}$ से 2 ग्रेन कैफिन पाया जाता है। संसार का सबसे प्रथम स्थान चाय का आयात करने में इंगलैण्ड का तथा दूसरा स्थान अमेरिका का आता है।

चाय में रंग टैनिन के कारण होता है। टैनिन का प्रभाव मुंह तथा पेट के म्यूकश-मेम्ब्रेन पर अहितकर होता है। कैफिन नामक विष कॉफी एवं चाय में कॉमन रूप से कमोवेश पाया जाता है। उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। चाय का सम्बन्ध पेट एवं आँतों के रोगों से होता है। वर्षों पूर्व फिलेडेलफिया में जेफ्फरसन हॉस्पिटल के रोगियों पर डॉ. वी. विलमर, बिस्ट, मार्टिन ई. रेफस, विलियम जे. स्नेप तथा पाल सी. स्वेनस द्वारा किये गये अनुसंधानों से पता चला कि खाली पेट चाय पीने से ड्यूडिनल अल्सर तथा पेट एवं आँतों के रोग होते हैं। चाय का प्रभाव स्नायुओं पर भी होता है। चाय का कैफिन एसिड आमाशय तथा आँतों को उत्तेजित करता है। यह आमाशयिक रस पेप्सिन को तोड़ कर भोजन के पाचन तथा स्वयं के पचने

में सहायक होता है। कुछ डॉक्टरों की ऐसी मान्यता है कि यदि चाय एवं कॉफी से किसी रासायनिक या भौतिक विधि द्वारा कैफिन को निकाल दिया जाय तो कॉफी एवं चाय के घातक प्रभाव में काफी अन्तर आ जाता है। अभी कुछ दिन पहले भारतीय वैज्ञानिकों का एक शोधपत्र पढ़ा गया, जिसका सारांश यह था कि कॉफी हृदय रोग के लिये काफी घातक है, जबकि चाय हृदय-रोगियों के लिये लाभदायक है। परन्तु यह सोचने की बात है कि चाय एवं कॉफी में पाया जाने वाला एक ही विष-रसायन कैफिन हृदय रोगी के लिये एक का फायदेमन्द तथा एक का घातक कैसे हो सकता है ? अपच, भूख की कमी, नर्वसनेस तथा हृदय सम्बन्धी बीमारियाँ चाय के अधिक उपयोग से ही होती हैं। चाय का प्रभाव हमारे शरीर पर सूक्ष्म, स्थायी और अन्त में घातक ही होता है।

अभी हाल ही में मियामी विश्वविद्यालय की महिला वनस्पतिशास्त्री डॉ. जूलिया मार्टिन द्वारा विदेशों में गले और पेट के कैंसर के बीच क्या सम्बन्ध होता है, इस पर आठ वर्षों से की गयी शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि केटेचिन टेनिन (जो चाय में पाया जाने वाले टेनिन का ही एक रूप) से कैंसर होता है। अपने शोधपूर्ण सर्वेक्षण के दौरान उन्होंने पता लगाया कि दक्षिण केरोलीन, जहाँ के निवासियों को जो लाल ओक के वृक्षों की छाल तथा बेरी की टहनियों को उबाल कर प्रचुर मात्रा में टेनिन युक्त पेय तैयार करते हैं। गले का कैंसर अधिक होता है।

क्यूराकाओं के लोगों में अन्य पेयों की अपेक्षा अत्यधिक टेनिनयुक्त चाय पीने की आदत है। जिसके पीने से वहाँ के अधिक लोगों में कैंसर पाया गया। टेनिनयुक्त सुपारी खाने वालों (चूसने वालों) को मुँह, होठ तथा गले का कैंसर हो जाता है। डच लोगों की अपेक्षा यहाँ के वासियों को कैंसर से अधिक पीड़ित होना पड़ा है क्योंकि वे प्रतिदिन 20 से लेकर 30 कप तेज चाय पीते हैं। डॉ. मार्टिन का यह भी कहना है कि जापानी लोग जो चाँवल एवम चाय की पत्तियों से बनने वाले (अपनी परम्परागत) पुलाव का अधिक सेवन करते हैं, उन्हें कैंसर होने की सम्भावना रहती है।

व्यक्ति विचारशील प्राणी है अतः उसे यह सोचना आवश्यक हो जाता है कि जिस वस्तु के नहीं सेवन से उसमें कोई कमी नहीं आने वाली है और जिन

वस्तुओं के सेवन से व्यर्थ में परेशानी और अन्य कई अवांछनीय परिस्थितियाँ बनने की गुंजाइश रहती हैं, तो प्रतिकूल गुंजाइश से बचना अच्छा या उसमें फँसना अच्छा।

उपर्युक्त विभिन्न पेयों के मुख्य घटक कैफिन ने सारे विश्व में तहलका मचा रखा है। यह अत्यन्त हानिकारक स्वास्थ्यघातक रसायन है। उपर्युक्त पेयों के अतिरिक्त भूख-नियंत्रक गोलियों, सिरदर्द की दवाओं, सर्दी, जुकाम तथा अलर्जी-अवरोधी औषधियों, शीतल पेयों, जमाये गये दूध से निर्मित विभिन्न आहार, बेकरी, कन्फेक्शनरी तथा संश्लिष्ट आहारों तथा मिठाइयों में कैफिन मिले होते हैं। प्रयोगों से देखा गया है कि एक कप चाय में 50 मि. ग्रा., एक कप कॉफी में 85 मि. ग्रा., इनस्टैंट कॉफी में 60 मि. ग्रा. तथा शीतल पेयों में 54 मि. ग्रा. तक कैफिन होते हैं। इन आहारों के निरन्तर प्रयोग से कैफिन के कारण सिरदर्द, अवसाद, चिड़चिड़ापन तथा उत्तेजना पैदा होती है। व्यक्ति अनिद्रा का शिकार बन जाता है। प्रयोगों से देखा गया है कि कैफिन का सेवन बन्द करते ही उक्त रोगों के लक्षण समाप्त हो जाते हैं। कैफिन से व्यक्ति व्यसनी बन जाता है तथा इसकी लत लग जाती है। यही कारण है कि उक्त आहार प्रारम्भ करने पर छूटे नहीं छूटते हैं। जांस हापिंस यूनिवर्सिटी के स्कूल ऑफ मेडिसिन के डॉ. सोलोमन एच. स्नाइडर तथा उनके सहयोगियों ने खोज की है कि कैफिन तथा मस्तिष्क के संदेशवाहक रसायन (ट्रान्समीटर्स) एडिनोजिन की संरचना में काफी समानता है।

एडिनोजीन के अणु संदेश ग्रहण करने वाली कोशिकाओं में भर जाते हैं। इस स्थिति में मानसिक एवं मस्तिष्क के अन्य कार्य एक लय-ताल में चलते हैं। कैफिन इन संदेशवाहकों में बलात् घुस कर एडिनोजिन के कार्य में अवरोध उत्पन्न करता है। इस प्रकार से मस्तिष्क के उद्दीपन-रसायनों में असंतुलन आ जाता है तथा स्नायविक एवं मानसिक कार्य अस्तव्यस्त हो जाते हैं। मस्तिष्क की कोशिकाएँ व्यसनी हो जाती हैं। ये कोशिकाएँ कैफिन तथा एडिनोजिन दोनों आत्मसात करने के लिए तत्पर रहती हैं। कैफिन बन्द करने की स्थिति में रक्त कोशिकाओं में एडिनोजिन भर जाता है फलतः व्यसनी कोशिकाओं में उथलपुथल मच जाती है, संचार-व्यवस्था अवरुद्ध हो जाती है

और रक्तचाप कम हो जाता है। उद्दीपक घटने से सिरदर्द होने लगता है। अवसाद, क्षोभ तथा चिड़चिड़ाहट पैदा होती है। कैफिन को मिथाइल एंथाइन भी कहते हैं। चाय में स्थित थियोफाइलाइन तथा कोको में स्थित थियोब्रोमाइन भी कैफिन की तरह उद्दीपक की भूमिका निभाता है। कैफिनयुक्त पेय लेने से 15 से 45 मिनट के बाद यह खून में प्रवाहित होने लगती है। इसके दुष्प्रभाव से एड्रिनल ग्रंथियाँ उत्तेजक हार्मोन एड्रिनलिन नारएपिनेफ्रिन आदि छोड़ने लगती हैं फलतः रक्त में शर्करा का स्तर बढ़ जाता है, रक्तवाहिनियाँ सिकुड़ने लगती हैं और रक्तचाप 10 से 20 mm तक बढ़ जाता है। हृदय गति घट कर पुनः तीव्र हो जाती है। श्वास गति बढ़ जाती है। पेशाब की मात्रा बढ़ जाती है। रक्त में पोटाशियम का स्तर कम हो जाता है। मस्तिष्क की रक्तवाहिनियाँ सिकुड़ जाती हैं। बाह्य रक्तवाहिनियाँ फैल जाती हैं। पाचक रस ग्रन्थियाँ उत्तेजित होकर स्राव अधिक छोड़ती है। चयापचय क्रिया तीव्र होने से व्यर्थ ही ऊर्जा की खपत बढ़ जाती है।

इन पेयों का भयंकर प्रभाव हाइपरएसीडिटी तथा अल्सर के रोगियों पर होता है। कैफिन, गैस्ट्रिक एसिड तथा अन्य पाचक स्रावों को उत्तेजित कर अम्लता को बढ़ाता है। तीन कप से अधिक कॉफी पीने वालों में साँस फूलना, तृषा, अधीरता, कान बजना, आँखों के आगे अन्धेरा छाना, चौन्धियाना, माँसपेशियों में तनाव, थरथराहट, तीव्र धड़कन, साँस का तीव्रतम होना आदि लक्षण दिखते हैं। कुछ आयुर्वैज्ञानिक अपनी शोधों से इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पाँच से दस ग्राम कैफिन (करीब 75 कप कॉफी या 125 कप चाय या 200 साफ्ट ड्रिंक) से व्यक्ति की दर्दनाक मौत होती है। इसके दुष्प्रभाव से लगातार उल्टियाँ, चक्कर आना, तीव्रतम हृदय धड़कन, उत्तेजना तथा फेफड़े का कार्य बन्द हो जाता है। सन् 1980 की घटना है। एक अमेरिकी दवा कम्पनी ने विद्यार्थियों को काफी देर तक चुस्ती के साथ अध्ययन करने के लिए 'स्पीड' नामक दवा बनाई। यह कैफिन का एमांइसयुक्त प्रबल उद्दीपक औषधि थी। इसमें सौ से डेढ़ सौ मि. ग्रा. तक कैफिन थी। धुआंधार प्रचार के कारण परीक्षा में अच्छा नम्बर लाने के चक्कर में अनेक विद्यार्थियों ने 20 से 25 कप कॉफी जितनी कैफिनयुक्त 'स्पीड' ले ली। इसके दुष्प्रभाव

से 1980-81 के मध्य वारह किशोर अकाल कालकवलित हुए। एक विद्यार्थी बच गय गया जो तीन टेवलेट लेने के वाद वेहोश हो गया था।

सितम्बर 1980 से अमेरिका के खाद्य एवं औषधि प्रशासन ने चेतावनी दी है कि गर्भवती महिलाऐं कैफिनयुक्त आहारों का उपयोग न करें। इससे गर्भपात हो सकता है और बच्चे विकृत हो सकते हैं। वोस्टन विश्वविद्यालय मेडिकल सेन्टर के डॉ. हर्शल जिक तथा उनके सहयोगी शोधकर्त्ताओं ने खोज की है कि कैफिन से मायोकार्डियल इन्फ्राक्शन (हृत्पेशियों में रक्त अवरोध के कारण दौरा) होता है। कैफिन से रक्त में संतृप्त वसाम्लों, लाइपिडों, ट्राइग्लिसराइड्स तथा कोलेस्ट्रॉल की मात्रा वढ़ जाती है। हार्वर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ के डॉ. व्रायन मैकमाहोन तथा उनके सहयोगियों का शोध पत्र "न्यू इंगलैंड जरनल ऑफ मेडिसिन" 1981 के अंक में छपा है। इसमें बताया गया है कि प्रतिदिन एक-दो कप कॉफी पीने से नहीं पीने वालो की अपेक्षा दो गुना, पाँच कप पीने वालों में तिगुना, पैंक्रियास, यकृत तथा पित्ताशय का कैंसर हो सकता है। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि कैफिनरहित कॉफी पीने से खतरा कम हो सकता है। परन्तु कॉफी को कैफिनयुक्त करने के लिए ट्राइक्लोराइडथिलीन तथा मेथिलीन क्लोराइड मिलाये जाते हैं। ये शरीर में उपस्थित कैंसर कोशिकाओं को उत्तेजित करते हैं। स्वीडन के अपसाला विश्वविद्यालय के आनुवांशिकीविद् डॉ. बैंग्ट ए. किहलमान का मानना है कि कैफिन एरिथिमिया (अनियमित धड़कन) पैदा करता है तथा गर्भवती महिलाओं के भ्रूण पर बुरा प्रभाव डालता है।

30 | बीड़ी सिगरेट सुलगाओ : मौत को गले लगाओ

अभी हाल ही भारत के चार महानगरों के एक सर्वेक्षण में पाया गया है कि कलकत्ता में 40% बम्बई में 32% दिल्ली में 30% तथा मद्रास में 17% लोग सिगरेट पीते हैं। विद्यार्थियों में सिगरेट पीने की लत कलकत्ता में 44% दिल्ली में 35%, बम्बई में 33% तथा मद्रास में 28% है। एक छात्र

औसतन 16 तथा छात्रा 6 सिगरेट प्रतिदिन पीती है। विगत दो दशकों में महिलाओं में सिगरेट पीने की आदत में 400 गुना वृद्धि हुई है। इस दौरान करीब पाँच करोड़ चालीस लाख लोगों ने 200 करोड़ रुपये से अधिक की तम्बाकू फूँक डाली। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार 6% भारतीय लड़कियाँ युवा होते ही सिगरेट पीना प्रारम्भ कर देती हैं। यह तो शहरों के आँकड़े हैं। गाँवों में तो धूम्रपान की लत की और भी बुरी हालत है। ग्रामीण बच्चे अक्सर 8-10 साल की उम्र से ही बीड़ी तथा तम्बाकू लेना प्रारम्भ कर देते हैं। धूम्रपान की यह आदत राष्ट्र को किस कदर खोखला किये जा रही है। आइये इसे समझें।

अब तक सिगरेट में चार हजार किस्म के विषैले रसायन खोजे गये हैं। इनमें निकोटिन, पायरोडिन, पायकौलिन, सायनोजिन, परफोरोल, अमोनिया, कार्बलिक एसिड, यूरिक एसिड, कार्बनडाइऑक्साइड, कार्बनमोनो-क्साइड, एकोलिन, एजोलिन, हाइड्रोजन सायनाइड, कोलिडोन, मार्शगैस, नाइड्रोजन डाइआॅक्साइड, तथा चार दर्जन बेन्जोयपायरेन, यौगिक तथा रेडियोएक्टिव पोलेनियम-210 जैसे कैंसर उत्पादक रसायन मिले रहते हैं। फरफराल तथा पोलिनियम आदि घातक विष सिगरेट जलने से पैदा होते हैं। ये मस्तिष्कीय ज्ञान जन्तुओं को भयंकर रूप से क्षतिग्रस्त करते हैं। पायरोडिन खुश्की, रक्तहीनता तथा कैंसर उत्पन्न करता है। धूम्रपान का प्रमुख एवं सबसे घातक रसायन निकोटिन होता है। सिगरेट का कश लेते ही निकोटिन फेफड़ों तक पहुँच जाता हैं। इसकी एक परत मुँह, नाक, गले तथा फेफड़ों में जमा हो जाती है। फिर इसका दुष्प्रभाव हृदय तथा रक्तसंचार पर होता है। हृदय गति तथा रक्तचाप बढ़ जाता है। मुँह में लार-ग्रन्थियों की सक्रियता बढ़ जाती हैं फलतः लार खूब आती है। पाचनक्रिया अस्तव्यस्त होती है। मिचली तथा दस्त, स्नायविक शिथिलता, त्वचा में खुश्की, रक्त में ऑक्सीजन की कमी तथा पसीना कम आना आदि लक्षण देखने को मिलते हैं।

निकोटिन इतना खतरनाक है कि 50 कि. ग्रा. वजन का व्यक्ति मात्र 50 मि. ग्रा. निकोटिन खा ले तो वह मूर्च्छित होकर गिर सकता है। उसकी मौत भी हो सकती है। विभिन्न परीक्षणों से देखा गया है कि चूहों की त्वचा

पर निकोटिन का लेप करने से वे कैंसरग्रस्त हो गये। मानव कोशिकाएं निकोटिन के लगातार सम्पर्क में रहने से कभी भी कैंसरग्रस्त हो सकती हैं। व्यसनी लोगों में कैंसर होने की संभावना प्रबलतम होती हैं।

वेस्टमीड चिकित्सा केन्द्र (सिडनी) के डॉ. ब्रेन ट्रूडिगर के एक शोध के अनुसार सिगरेट पीने वाली स्त्रियाँ अपेक्षाकृत 300 ग्राम तक कम वजन के बच्चों को जन्म देती हैं और बच्चे अविकसित हो सकते हैं। विश्व के अनेक देशों में गर्भावस्था तथा धूम्रपान से सम्बन्धित खोजें हुई हैं। उन निष्कर्षों के अनुसार गर्भावस्था के समय धूम्रपान करने से बच्चे जन्म से पहले तथा बाद में मर सकते हैं। बच्चों की रोगप्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। उनका मानसिक, स्नायूविक एवं शारारिक विकास अवरुद्ध हो सकता है। बच्चों को हृदय एवं फेफड़ों के रोग हो सकते हैं। बच्चे रिटार्डेड-मस्तिष्क के हो सकते हैं। उनके सीने में तकलीफ हो सकती है।

ब्रिटानी चिकित्सक डॉ. डगलस के अनुसार सिगरेट चेहरे के सौन्दर्य को बुरी तरह नष्ट कर देती है। होठ एवं आँखों के किनारे धारियाँ तथा झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। शरीर, नाखून पीले व काले पड़ जाते हैं। रक्त का मुख्य घटक होता है हिमोग्लोबिन। यह फेफड़ों में ऑक्सीजन से जुड़ कर ऑक्सी हिमोग्लोबिन में बदल कर हृदय द्वारा सारे शरीर में वितरित होकर शरीर को प्राणदान देता है। यह हिमोग्लोबिन ऑक्सीजन की अपेक्षा 240 गुना कार्बन-मोनोक्साइड से तीव्रता से घुलमिल जाता है। प्रतिदिन दस सिगरेट पीने वाले व्यक्ति में 6 से 8 प्रतिशत ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। इस ऑक्सीजन की कमी से धूम्रपायी सायजोसिस, हाइपरवेंटिलेशन, हाइपोक्सिया से ग्रस्त हो जाता है। धूम्रपान से मस्तिष्क की मुख्य खुराक ऑक्सीजन की कमी हो जाने से मस्तिष्कीय कोषायें मरने लगती हैं। धूम्रपान का सर्वाधिक दुष्प्रभाव हमारी उम्र पर होता है। आयुर्विज्ञानियों के अनुसार एक सिगरेट आपकी उम्र को साढ़े पाँच से सात मिनट तक कम कर देती है। 35 वर्ष तक लगातार धूम्रपान करने वाले प्रायः 60 वर्ष तक 40% मर जाते हैं जबकि धूम्रपान न करने वाले में यह औसत सिर्फ 15% ही है। जो धूम्रपायी बच जाते हैं वे जानलेवा बीमारियों दमा, एम्फिसिमा, एन्जाइना, ब्रोंकाइटिस, उच्च रक्तचाप आदि से ग्रस्त एवं त्रस्त रहते हैं। 75वें वसन्त का मुँह कम ही

धूम्रपायी देख पाते हैं। ब्रिटेन की एक रिपोर्ट के अनुसार 1985 में हृदय रोगियों में 60 प्रतिशत तथा बाइपास सर्जरी करवाने वालों में 91% धूम्रपायी ही थे। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार 1979 में ब्राजिल में नब्बे हजार हृदय रोग से मरे। इनका सीधा सम्बन्ध धूम्रपान से था। एक सर्वेक्षण के अनुसार ब्रिटेन में प्रतिदिन 150 व्यक्ति सड़क दुर्घटना से मरते हैं। धूम्रपान के कारण प्रतिदिन सौ व्यक्ति ब्रोंकाइटिस तथा हृदय-धमनी से संम्बन्धित अन्य रोग से मर जाते हैं। प्रति हजार युवकों में 6 सड़क दुर्घटनाओं से मरते हैं तो 250 तम्बाकू के कारण मर जाते हैं।

एक रिपोर्ट के अनुसार वायु प्रदूषण, धुआँ, धूलकण आदि को हमारे फेफड़े वर्दाश्त भी कर लेते हैं परन्तु इन परिस्थितियों में धूम्रपान करने से ब्रोंकाइटिस, एम्फिसिमा, यक्ष्मा, कैंसर आदि घातक रोग होने की संभावना अत्यधिक वढ़ जाती है। एक वैज्ञानिक शोध के अनुसार फेफड़े का कैंसर औरतों की अपेक्षा पुरुषों में तिगुना होता है। यदि वायुप्रदूषण, धुआँ, धूलकण आदि कारण होते तो दोनों में इस घातक बीमारी का अनुपात बराबर होना चाहिए था। एक अन्य सर्वेक्षणात्मक रिपोर्ट में देखा गया है कि फ्रांस के समीप ब्रिटिश द्वीप जर्सी में फेफड़े के कैंसर के रोगी ज्यादा थे जबकि वहाँ सबसे कम प्रदूषण था; परन्तु सिगरेट पीने वालों की संख्या वहाँ सर्वाधिक थी।

. सिगरेट पीने वाले कम टार वाली फिल्टर सिगरेट पीना ज्यादा सुरक्षित समझते हैं, परन्तु खोजों से यह भ्रम ही सिद्ध हुआ है। वास्तव में कम टार वाली सिगरेट जलने से कार्बनमोनोक्साइड काफी मात्रा में निकलती है जो रक्त में अति शीघ्रता से घुल कर ऑक्सीजन की कमी पैदा करती है। इससे हृदय, पैरों तथा मस्तिष्क की तरफ रक्त पहुँचाने वाली धमनियाँ कड़ी तथा क्षतिग्रस्त हो सकती हैं। ऐसी सिगरेटों से थ्रोम्बोसिस तथा धमनी सम्बन्धी रोगों में और खतरा पैदा हो जाता है। प्रयोगों से यह भी देखा गया है कि व्यसनी धूम्रपायी का रक्त निकोटिन टार का इतना अभ्यस्त होता है कि धूम्रपान के समय जब तक पर्याप्त मात्रा में वह नहीं मिले तो उसे चैन नहीं पड़ता। अतः इच्छित खुराक के लिए सिगरेट की मात्रा तथा कश की लम्बाई वढ़ जाती है। हानिरहित फिल्टर सिगरेट भी उतनी ही दुष्प्रभाव डालती है जितनी सामान्य सिगरेट। उसमें कोई अन्तर नहीं है।

धूम्रपान करने वाला व्यक्ति अपनी हानि तो करता ही है, साथ रहने वाले संगी-साथी तथा पत्नि-बच्चे को भी धूम्रपान से दुष्प्रभावित करता है। धूम्रपायी व्यक्तियों की पत्नियाँ फेफड़े के कैंसर से प्रायः ग्रस्त रहती हैं। हाल ही में स्वीडन की बीमा सम्बन्धी मामलों की निपटारा करने वाली एक अदालत ने कैंसर से मरी महिला के पक्ष में अपना अद्भुत निर्णय सुनाया। धूम्रपान से दूर रहने वाली उस महिला की मौत का जिम्मेदार धूम्रपान करने वाले उसके कार्यालय सहयोगियों को माना गया। उन दोषी सहयोगियों को हर्जाने के रूप में महिला के प्रत्येक बच्चे को 19 वर्ष की उम्र तक माँ की मासिक आमदानी की 20 प्रतिशत राशि दिलवाने की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त एक हजार डॉलर उसके अन्तिम संस्कार के लिए देने पड़े। धूम्रपान से गुर्दों की खराबी, श्वेत रक्तता, ल्यूकेमिया, गठिया, नाखून का निर्जीव व काला पड़ जाना, फेफड़े, कंठनलिका, जिह्वा, होठ, यकृत तथा गुर्दे का कैंसर, तीव्र तथा जीर्ण खाँसी, दमा, चर्म रोग, मन्दाग्नि, लकवा, पागलपन, अनिद्रा, बाँझपन, नपुंसकता, दृष्टिमंदता, एम्फिसिमा; हृदय रोग, प्रजनन शक्ति की कमी, शुक्राणुओं की संख्या तथा सक्रियता में कमी, गर्भावस्था के समय पीने से शिशु में मानसिक, शारीरिक तथा मस्तिष्कीय विकृति एवं न्यूनता, संतानोत्पादक जीवाणुओं का दुर्बल तथा विकृत होना, मेनिनजाइटिस, मधुमेह, हार्मोनल अव्यवस्था एवं विक्षुब्धता, उच्च रक्तचाप, टैन्सन व डिप्रेशन, कब्ज, शरीर में विटामिन सी. तथा बी. की कमी, आयुह्रास तथा अल्पजीवन आदि अनेक रोग तथा विकृतियाँ होती हैं।

विश्व में धूम्रपान से मुक्ति के लिए काफी प्रयास किये जा रहे हैं। इटली, अमेरिका, चीन, ब्रिटेन, फिनलैंड की स्वास्थ्य सेवाऐं धूम्रपान से मुक्ति के लिए वृहद् स्तर पर आन्दोलन चला रही हैं। वहाँ सार्वजनिक स्थानों पर सिगरेट पीना दण्डनीय अपराध माना गया है। ठीक इसके विपरित अपने देश में प्रतिदिन ग्यारह करोड़ बारह लाख बत्तीस हजार रुपये की सिर्फ सिगरेट पी जाती हैं। प्रति साल 85 अरब सिगरेट बनाए जाते है। मुनाफा कमाने वाली इन कम्पानियों पर सोलह अरब रुपये का कर बाकी हैं। गरीब किसानों से बकाया वसूलने के लिए उन्हें जेल तक भेजा है तथा जहर के सौदागरों को पुरस्कृत किया जाता है। यह है भारत सरकार की न्याय प्रक्रिया।

31 | शराब और ताड़ी का नशा : आह ! बना दिया पशु जैसा

भारत जैसे गरीब देशों के निर्धन लोगों के जीवन को नरक बनाने वाला सर्वाधिक घातक पेय है—शराब। प्रति वर्ष गरीबों के करोड़ों रुपये तथा उनका जीवन शराब तथा शराब के ठेकेदारों की बलि चढ़ जाते हैं। यदि इस पैसे का उपयोग अपने विकास, बच्चों की पढ़ाई अथवा अन्य सृजनात्मक कार्य में लगाते तो वे आज इतने गरीब नहीं होते और न ही जानवरों जैसा अभिशप्त जीवन जीने के लिए बाध्य होते। शराब, ताड़ी आदि दुर्व्यसनों ने करोड़ों घरों को बर्बाद किया है तथा अज्ञानता के कारण आज भी बर्बाद कर रहा है। भारत में विभिन्न प्रकार की जीवनघाती शराबें बनायी जाती हैं, जो निम्न हैं :—

ह्विस्की सबसे खतरनाक शराब है। इसमें 40 से 70 प्रतिशत मादक अर्क होता है। यह मक्का, जौ आदि तृण धान्यों के पिष्टमय पदार्थ को उध्र्वपातन कर बनाया जाता है। गन्ने के रस तथा राब से खमीर का अर्क उध्र्वपातित कर **रम** बनाई जाती है। इसका रंग, गंध आदि जल तथा शर्करा के कारण बनता है। इसमें 50 से 60 प्रतिशत मादक अर्क होने के कारण स्वास्थ्यघाती है। पियक्कड़ों में पुरानी **ब्राण्डी** उत्तम मानी जाती है। इसमें 40 से 50 प्रतिशत मदार्क होता है। अंगूर के रस को ही सड़ा कर खमीरीकरण द्वारा **वाइन** बनाई जाती है। यह मेव तथा नाशपाती के रस से भी बनती है। इसमें सैक्रीन भी मिलाते हैं। वाइन में जल, कार्बनडाइऑक्साइड, ईथर, वनस्पति तेजाब, लैक्टिक, टारटेरिक, टेनिन तथा एसिटिक एसिड भी होते हैं। यह भी भयंकर उत्तेजक है। जौ, गेहूँ, माल्ट से बनी शराब को उध्र्वपातित कर **जिन** बनाई जाती है। यह एक प्रकार की आसवित स्प्रीट है, जिसमें जुनीपर के सुगन्धित तेल या अन्य सुगन्धित पदार्थ या विभिन्न प्रकार के मसाले मिलाये जाते हैं। इसमें 40 से 50 प्रतिशत मादक अर्क होता है। अंकुरित जौ, शर्करा, बार्ली माल्ट के आन्तरिक भाग को खमीरीकरण कर बीयर बनाई जाती है। इसमें 3 से 7 प्रतिशत मादक अर्क होता है। बीयर का प्रभाव अन्य शराबों की अपेक्षा न्यून होता है।

ताड़ी :—नारियल खजूर ताड़ आदि पेड़ों के तनों को चाकू से छील कर वहाँ मिट्टी के पात्र लटका देते हैं। धीरे धीरे उसका रस पात्र में एकत्रित होता रहता है। सूर्योदय के पूर्व का रस नीरा कहलाता है, परन्तु धूप में पड़ते ही नीरा का खमीरीकरण होने लगता है। 5-6 घण्टे धूप के ताप से नीरा ताड़ी में परिवर्त्तित हो जाती है। नीरा में बी कॉम्पलेक्स, लोहा आदि तत्त्व होने से यह स्वास्थ्य-संरक्षण, गुर्दे, यकृत तथा अन्य सभी रोगों में यह लाभदायक है। परन्तु ताड़ी में 5 से 10 प्रतिशत मादक अर्क पैदा हो जाने से यह स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त घातक एवं मादक बन जाती है।

32 | शराब तथा शरीर : वैज्ञानिक अध्ययन

सर्वप्रथम शराब का दुष्प्रभाव मुँह, गले व पेट पर प्रदाहकारक होता है। इससे स्नायुमंडल की संवेदनशीलता (हाइपरमिया) तथा अवरोध उत्पन्न होने से अल्सर होने की प्रबल संभावना होती है। वमन, मितली तथा उल्टी शुरू हो जाती है। ग्रसनी नलिका में दरारें हो जाती हैं। खून की उल्टी भी हो सकती है और इसके दुष्परिणामस्वरूप व्यक्ति की मृत्यु तक हो जाती है। आदत हो जाने पर जीर्ण हाइपरमिया के कारण पेट से अधिक मात्रा में श्लेष्मा निकलता है। आमाशय की पाचन-प्रणाली अस्तव्यस्त हो जाती है, फलतः जीर्ण गैस्ट्राइटिस होता है। भोजन के बाद पेट भारी हो जाता है। बेचैनी होती है, भोजन ठीक से पचता नहीं है। एस्थेनिया हो जाता है। दस्त, वजन में कमी तथा प्रोटीन एवं विटामिन का अभाव होने से यकृत बढ़ कर मोटा (फैटी) हो जाता है शरीर पर सूजन (ओएडमा) आ जाती है। जीर्ण मदात्य की स्थिति में न्यूराइटिस, एन्सीफेलोपैथी, पेलाग्रा, तथा माइक्रो-साइटिक रक्तहीनता की शिकायत दिखती है। शराब का 90% भयंकर दुष्प्रभाव यकृत पर होता है, क्योंकि उसकी कोशिकाएें अल्कोहल को शीघ्र अवचूषित कर क्षति-ग्रस्त हो जाती हैं, फलतः अल्कोहलिक हिपेटाइटिस, हिपेटिक सिरोसिस तथा यकृत का कैंसर हो जाता है। यकृत, वसा तथा

कार्बोज का मेटाबॉलिज्म नहीं कर पाता है। इन रोगों के दुष्प्रभावों से कमजोरी, रक्तहीनता, सुस्ती, वजन में कमी, सुबह की थकान, भूख घटना, अजीर्ण, यकृत-वृद्धि आदि अनेक रोग लक्षण दिखते हैं। शराब का घातक दुष्प्रभाव हृदय पर भी होता है। हृदय की माँसपेशियों पर डिजेनरेटिव परिवर्तन होने लगता है। विटामिन बी. की कमी तथा द्वितीयक बेरी-बेरी हृद्रोग होता है। फिर इसका दुष्प्रभाव गुर्दों पर भी होता है। शराब से गुर्दों की क्रियाशीलता समाप्त होने लगती है। गुर्दे यूरिक एसिड तथा अन्य घातक तत्त्वों को छान नहीं पाते हैं फलतः रक्त में यूरिक एसिड तथा अन्य विषैले तत्त्व बढ़ जाते हैं, परिणामस्वरूप गठिया आदि के लक्षण भी दिखने लगते हैं। संधियाँ क्षतिग्रस्त होने लगती हैं। शराब का घातक दुष्प्रभाव नाड़ीमण्डल तथा मस्तिष्क पर होता है। इसके दुष्प्रभाव से रक्त एवं स्नायुकोशिकाओं में अल्कोहल बढ़ने से तीव्र नशे की प्रवृत्ति, सान्निपातिक दशा, कोर्साकॉफ्फ साइकोसिस सिण्ड्रोम, निविस एन्सीफेलोपैथी तथा मरचिआफाव सिण्ड्रोम, अल्कोहलिक पॉलीन्यूराइटिस, हाइपोग्लूसेमिया, दृष्टिहीनता, जवान लड़खड़ाना, लैटेरल निस्टगेमस आदि हो जाते हैं। रीढ़ तथा परिधीय नाड़ी मण्डल क्षतिग्रस्त होने से लकवा, कम दिखना, जवान लड़खड़ाना आदि लक्षण दिखते हैं। शरीर में भयंकर रूप से थायमिन की कमी हो जाती है। इस अभाव से भी लकवा हो जाता है या मृत्यु तक हो जाती है। शराब से मस्तिष्क संकुचित होकर उसका क्षेत्रफल कपाल के अन्दर कम हो जाता है। गर्भवती महिलाओं द्वारा शराब पीने से एथनोल सुरक्षात्मक खेड़ी को पार कर गर्भस्थ शिशु के मस्तिष्क एवं स्नायु क्षतिग्रस्त होते हैं। अन्य अंग भी दुष्प्रभावित होते हैं। इससे बच्चे विगलांग तथा मंद बुद्धि के भी जन्म लेते हैं। लेटरल निस्टेगेमस की स्थिति में चलने से व्यक्ति दुर्घटनाग्रस्त हो सकता है। रक्त में 300 मि. ग्रा. अल्कोहल होने से अटैक्सिया, कम्पन, तीव्र पसीना, चेतनाहीनता आदि अनेक मारक लक्षण दीखते हैं। शराब पीने से व्यक्ति का व्यक्तित्व अस्तव्यस्त हो जाता है। वह अपने को अकेला अनुभव करता है। भावानात्मक दृष्टि से वह शराब को नहीं पीता, शराब ही उसे पीने लगती है। शराब पीने से चरम नपुंसकता की स्थिति उत्पन्न होती है। शराबी अपने पुंसत्त्व पर संदेह करने लगता है, इससे ईर्ष्या उत्पन्न होती है और असहयोग के लिए अपना दोष

पत्नी के मत्थे मढ़ता है। सहवास में अक्षम होने के कारण वह सोचता है कि उसकी पत्नी का अन्य कोई प्रेमी है। इस प्रकार से परिवार बिखरने लगते है। शराब के नशे में व्यक्ति अपने को गोपनीय नहीं रख पाता है, इसीलिए अनेक गुप्त सूचनाएें शराब द्वारा ही प्राप्त की जाती हैं। शराबी राजनयिक सुरा सुन्दरी पर अपनी आत्मा तक को गिरवी रख देते हैं। शराब शरीर में पोषक तत्त्वों को असंतुलित करती है। आर्थिक, पारिवारिक एवं नैतिक व्यवस्था छिन्नभिन्न होती है। एक लाख तीस हजार कनाडियन शराबियों पर सर्वे करके ज्ञात किया गया है कि इसमें 65% यकृत सिरोसिस, 22.6% पेप्टिक अल्सर, 19·8% के कंठ कैंसर 12·1% मुँह एवं गले के कैंसर, विषाक्तता से 53% हठात गिरने से 25% तथा आग से 40% लोग मरे। इस प्रकार हम देखते है कि शराब, आदमी को यातनादायी स्थिति में ले जाकर पशुवत् बना देती है और अंत में बेमौत मार डालती है।

यदि कोई शराबी सिगरेट भी पीता हो तो 'करेला और नीम चढ़ा' वाली कहावत उसके जीवन में चरितार्थ होती है। फ्रांस की इन्टरनेशनल एजेन्सी फॉर रिसर्च ऑन कैंसर के डॉ. अल्बर्ट ट्यून्स तथा उनके सहयोगियों ने खोज की है कि जो व्यक्ति एक पैकेट या इससे अधिक सिगरेट पीता है और उसके साथ थोड़ा सा भी शराब लेता है, तो उसे आएसोफेगस का कैंसर होने की संभावना पाँच गुनी वढ़ जाती है। जो सिगरेट के साथ अधिक मात्रा में शराब लेता है उसमें 18 से 44 प्रतिशत कैंसर होने की संभावना बढ़ जाती है। सिगरेट तथा शराव लेने वालों में मुँह, फैरिक्स, यकृत तथा गुर्दे का कैंसर होने की संभावना बढ़ जाती है। अमेरिका के राष्ट्रीय शराबबन्दी संस्थान के अनुसार अल्कोहल तथा तम्बाकू एक साथ शरीर में जाकर कैंसर कोशिकाओं को उत्तेजित कर कैंसर पैदा करते हैं। धूम्रपायी जब धूम्रपान करता है उस समय गले में निकोटिन की परत जमा हो जाती है। वह बेचैनी महसूस करने लगता है, कंठ सूखने लगते हैं, प्यास से तड़पता है और इस अशान्ति को दूर करने के लिए वह शराब का पेग लेता है। फिर प्रारम्भ हो जाता है स्वास्थ्य घातक सिलसिला। शराब का अल्कोहल एक श्रेष्ठ विलायक है। वह सिगरेट के कैंसर उत्पादक टार विभिन्न कारसिनोजिन्स को घुला

कर कोशिकाओं कि झिल्लियों को पार कर अन्दर तक पहुँचा देता है। इस दुष्प्रभाव को शरीर स्वतः समाप्त करने की कोशिश करता है। इन सारे कैंसर उत्पादक विषों को यकृत तथा गुर्दे छान कर बाहर निकाल देते हैं तथा उसके दुष्प्रभाव को उदासीन करते हैं। धूम्रपान तथा शराब का निरंतर सेवन करने से इन दोनों के रसायन आपस में प्रतिक्रिया कर अनेक प्राण घातक रसायनों का निर्माण कर डालते हैं और इनका निष्कासन होना मुश्किल हो जाता है। यकृत तथा गुर्दे क्षतिग्रस्त होने लगते हैं। सारे संस्थान विषाक्त होने लगते हैं। यकृत पाँच सौ से ऊपर रसायनों का निर्माण करता है। यह शरीर का प्रमुख जैविक पावर हाउस है। इसके क्षतिग्रस्त होने से शरीर के अन्य कार्य अस्तव्यस्त हो जाते हैं। विभिन्न उपयोगी जैव रसायनों का निर्माण तथा हानिकारक रसायनों के दुष्प्रभाव को दूर करने के कार्य में बाधा पड़ती जैसे यकृत का एक कार्य है रक्त प्रवाह से "ट्राइग्लाइसेराइड्स लिपिड्स" का उपयोग कर अन्य उपयोगी तत्वों में परिवर्तित करना; परन्तु इसका उपयोग नहीं होने से इस अतिरिक्त वसा से रक्ताहिनियाँ सँकरी हो जाती है। धूम्रपान के रसायन, रक्त में थक्का बनाने की प्रक्रिया को तेज कर देते हैं। सूक्ष्म रक्तवाहिनियों में रक्त संचार की क्रिया अवरुद्ध होने लगती है, फलतः उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, यकृत कैंसर होने की संभावना बढ़ जाती है। वसा प्रोटीन तथा कार्बोज की चयापचय क्रिया अस्तव्यस्त होने से सिरोसिस, हिपेटाइटिस, पीलिया, प्लीहा वृद्धि आदि रोग होते हैं। रक्त में ऑक्सीजन की कमी, कार्बन मोनोक्साइड की वृद्धि तथा रक्त-वाहिनियों के सँकरी होने से कोशिकाओं को ऑक्सीजन तथा पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाता है, फलतः मस्तिष्क तथा अन्य कोषाएँ मृतवत् होने लगती हैं। शराब तथा सिगरेट का संयुक्त दुष्प्रभाव हृदय एवं फेफड़ों के अग्र भाग पर अत्यधिक घातक होता है। प्रयोगों से देखा गया है कि जो लोग मात्र 60 सी. सी. अल्कोहल प्रतिदिन लेते हैं, उन्हें उच्च रक्त-चाप तथा हृदय रोग का दौरा पड़ने की संभावना अधिक रहती है। शराब पीने से थायमिन या बी$_1$ और नायसिन या बी$_3$ की अत्यधिक कमी हो जाती है। सिगरेट शरीर में स्थित विटामिन बी$_{12}$ तथा विटामिन सी को नष्ट कर देता है।

धूम्रपान तथा गर्भनिरोधक औषधि लेने वाली महिलाएँ प्रायः मायोकार्डियल इन्फ्राकशन, मस्तिष्कीय विकृति (Subarachonoid) तथा रक्त-प्रवाह व रक्तवाहिनियों में थक्का बनने की प्रवृत्ति (थ्रोम्बोएम्बोलिस्म) से ग्रस्त रहती है। अल्सर से ग्रस्त रोगियों के लिए शराब तथा सिगरेट जानलेवा सिद्ध होती है। विलायक अल्कोहल तम्बाकू के टार को घोल कर आमाशय की पाचक ग्रंथियों को उत्तेजित कर तीव्रता से अम्ल छोड़ने की लिए प्रेरित करता है। अमेरिका के डॉ. इरविन ब्रॉस तथा डॉ. जीने काम्ब के खोज के अनुसार जो महिललाएँ शराब तथा सिगरेट दोनों लेती हैं वे मुँह, गुहा तथा जिह्वा के कैंसर से अधिक ग्रस्त होती हैं क्योंकि ये दोनों एजेन्ट कॉर्सिनोजेनिक प्रक्रिया को तीव्र कर सामान्य कोशिकाओं को कैंसर कोशिकाओं में रूपान्तरित कर देते हैं। अन्य अमेरिकी शोध आयुर्वैज्ञानिक डॉ. एन्ड्रियू केल्लर तथा डॉ. केनेथ रॉथमैन के शोध के अनुसार प्रायः मुँह का कैंसर शराब तथा सिगरेट के लगातार एक्सपोजर से होता है। हिन्दुस्तान में सर्वाधिक मुँह एवं गले के कैंसर के रोगी उड़ीसा में हैं और उसका बहुत बड़ा कारण लगातार पान तथा तम्बाकू चबाना है। शराबी तथा धूम्रपायी गर्भवती महिलाओं में ऑक्सीजन की बेहद कमी होने से गर्भस्थ शिशु को पर्याप्त ऑक्सीजन तथा अन्य पोषण नहीं मिलता है। हाल ही में हुए एक शोधपूर्ण अध्ययन के अनुसार जो दम्पति शराब एवं सिगरेट लेते हैं उनका सेक्सुअल तथा दाम्पत्य जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। इनके दुष्प्रभाव से सेक्स हार्मोन का स्राव तथा उनका चक्र अव्यवस्थित हो जाता है। रक्त में टेस्टोस्टेरॉन सेक्स हार्मोन का स्तर काफी कम हो जाता है फलतः शीघ्रपतन बन्ध्यत्त्व, पौरुष की कमी तथा नपुंसकत्त्व की स्थिति आने लगती है। स्वस्थ शुक्राणुओं के आकार प्रकार में परिवर्तन हो जाता है। वे विकृत हो जाते हैं फलतः स्वस्थ बच्चे नहीं जन्मते। अतः इन सारे दुष्प्रभावों को देखते हुए होश के साथ इन दुर्व्यसनों को छोड़ देना चाहिए।
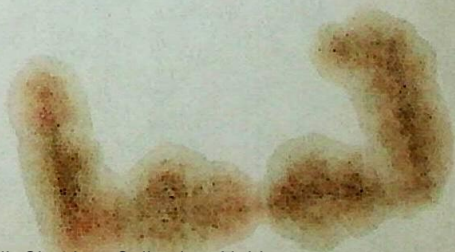
:: लेखक परिचय ::

प्राकृतिक चिकित्सा क्षेत्र का एक जाना-पहचाना नाम है डॉ. नागेन्द्र कुमार 'नीरज'।

प्राकृतिक चिकित्सा अध्यापन, विभिन्न कैम्प, केन्द्र व राष्ट्रीय सम्मेलनों में तकनीक सत्रों का सफल संचालन का कार्य युवा प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्विज्ञानी डॉ. नीरज ने बखूबी किया है। सौ से अधिक आयुर्वैज्ञानिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय स्तर की आयुर्वैज्ञानिक पत्रिकाओं में हुए है। प्राचीन अर्वाचीन ज्ञान शोध एवं अनुभव की त्रिवेणी डॉ. नीरज के विभिन्न प्रकाशनों में दृष्टिगोचर होती है। डॉ. नीरज ने प्राकृतिक एवं योग चिकित्सा को एक मिशन की तरह लिया है। इसलिए उन्होंने अपने प्रकाशनों की अबतक कोई रॉयल्टी नहीं ली है तथा संस्थान के प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ कर उसे समृद्ध किया है। एक तरफ चिकित्सा संस्थान के संचालन की जिम्मेदारी दूसरी ओर लेखन प्रकाशन का कार्य अबाध गति से चल रहा है। इसके अतिरिक्त जन-जन तक प्राकृतिक चिकित्सा को ले जाने के लिए विभिन्न क्लबों, संस्थाओं, गोष्ठी व सभा सम्मेलनों में अपनी शोधपूर्ण व्याख्यानों द्वारा लोगों में चेतना जगा रहे है। अनेक राष्ट्रीय, राज्यस्तरीय एवं क्षेत्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संगठनों से जुड़े डॉ. नीरज के इस महत्ती स्वास्थ्य चेतना आन्दोलन में उनके प्रकाशनों का प्रचार-प्रसार तथा व्याख्यान का आयोजन कर आप भी सहयोग करें। डॉ. नीरज अनेक प्रा. चि. संस्थाओं के परामर्शदातृ मण्डल के सदस्य रहे हैं। अनेक चिकित्सा केन्द्रों की स्थापना में भी सहयोगी रहे हैं।

"जागरूक आत्माएं ही प्राकृतिक योग चिकित्सा के महत्व को समझ सकती हैं"। डॉ. नीरज की यह उद्घोषणा जन चेतना को आन्दोलित कर रही है। सेवा, लेखन, साधना, ध्यान, भक्ति और वैज्ञानिक प्रयोग, शोध व चिन्तन से ओत-प्रोत डॉ. नीरज की प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान पर दर्जनों अनूठी एवं बेजोड़ कृतियों की समीक्षा अनेक पत्र-पत्रिकाओं तथा विद्वानों द्वारा की गई है। इनकी पुस्तकें अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद दिल्ली, गाँधी स्मारक प्राकृतिक चिकित्सा समिति, नई दिल्ली तथा सत्येश्वर प्राकृतिक चिकित्सा प्रशिक्षण केन्द्र रतलाम आदि कई शिक्षण संस्थाओं द्वारा संचालित प्रा. चि. परीक्षाओं में पाठ्य पुस्तक के रूप में पढ़ाई जाती है। राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने इनकी पुस्तक "प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग" को जनस्वास्थ्य की दृष्टि से अनुपम कृति मानते हुए सन् 1986 में मान्यता प्रदान की है। त्रस्त मानवता एवं प्राकृतिक चिकित्सा को समर्पित धन एवं पद की मूर्च्छा एवं मद से मुक्त डॉ. नीरज की कामना है "भारत के कोने-कोने में स्वास्थ्य स्वावलम्बन का विज्ञान प्राकृतिक योग चिकित्सा का जन-गण में व्यावहारिक प्रचार-प्रसार हो।" "अनासक्त कर्म ही जीवन का सौरभ है।"